1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-6, अंक-4, फरवरी-मार्च 2023, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

सफलता के पथ पर निरंतर अग्रसर
सांस्कृतिक अनुष्ठान का 26 वाँ वर्ष...

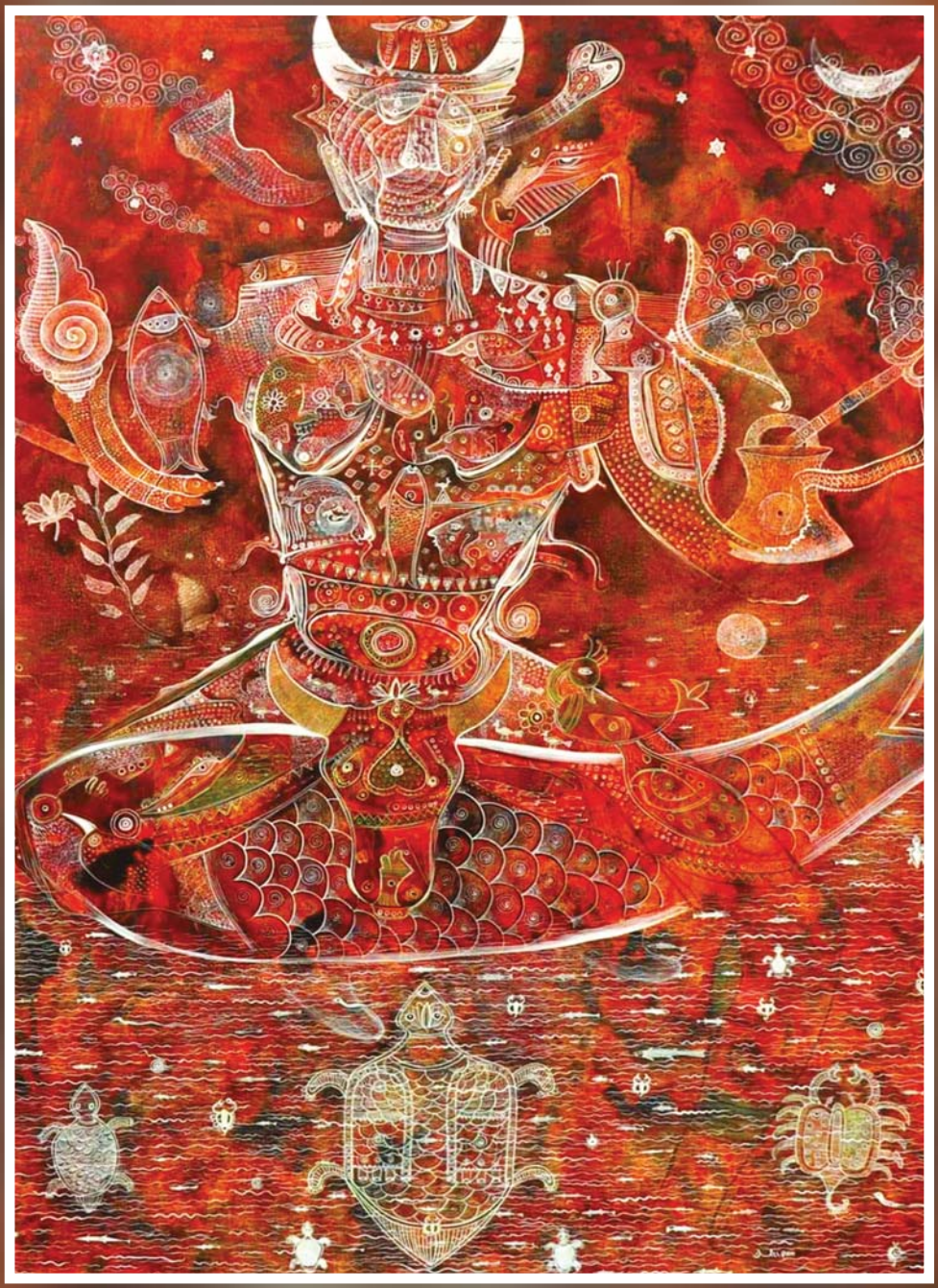

अतिथि संपादक : लक्ष्मीनारायण पयोधि

जनजातीय संस्कृति में अद्वैत विशेषांक

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

कला समय प्रकाशन

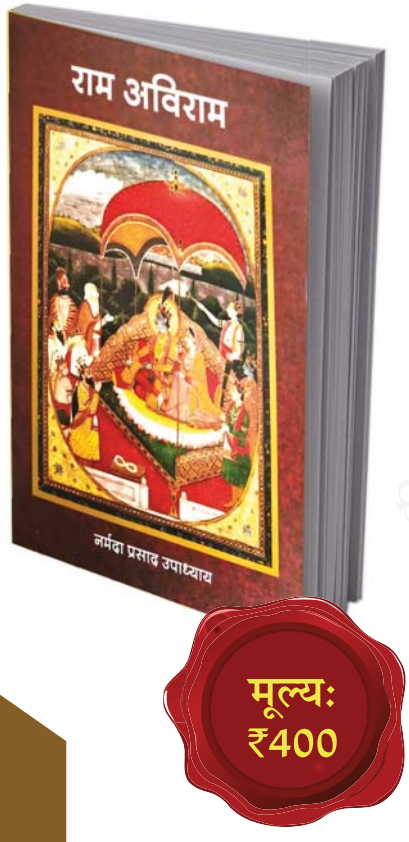

मूल्य: ₹400

कला समय का प्रतिष्ठापूर्ण प्रकाशन

राम अविराम

राम अविराम हैं। वे समाधि में गति का अनुभव हैं, ध्यान की स्थिर सतह पर उनकी स्मृति नृत्य करती है, उनका स्मरण मानस की सपाट धरती पर दौड़ता है और उनकी लीला हरिण की कुलांच और पंछी की उड़ान बनकर पुतलियों में अवतरित होती है। राम की कथा युग युग से गाई जाती रही है, उसका गान कभी थमा नहीं, उसके इतने आख्यान हुए जितने किसी दूसरी कथा के नहीं हुए और इसका परिणाम यह हुआ कि राम अविराम हो गए। इस अविराम की कथा का क्या औचित्य? इसलिए कि राम को देखने की दृष्टि का औचित्य है और वह दृष्टि यह है कि राम प्रतीक नहीं विश्वास व्यक्तित्व हैं, राम यात्री नहीं जीवन की यात्रा हैं। वे मर्यादा के मौन हैं। मर्यादा स्वयं नहीं बोलती, जग बोलता है। लक्ष्मण रेखा की मर्यादा भंग हुई तो जग बोला, राम नहीं बोले। इसलिए राम मर्यादा के अलंकार हैं। मर्यादा उनसे शोभा पाती है। राम जीवंत हैं। जिन्होंने अपने पांव के स्पर्श से पाषाण को मानवी रूप में परिवर्तित कर दिया हो वे कैसे पत्थर के हो सकते हैं? इसलिए हमारी आस्था राम को सजीव स्वरूप में पूजती है। रूप जड़ हो सकता है, स्वरूप नहीं। राम इसलिए अविराम हैं क्योंकि वे सतत यात्री हैं। उनकी यात्रा कभी विराम नहीं पाती, उनके पांव कभी नहीं थमते और पथ राम को आगे नहीं ले जाता वे उसे आगे ले जाते हैं। इसलिए राम पथ भी हैं, पथिक भी और पाथेय भी...।

लेखक : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

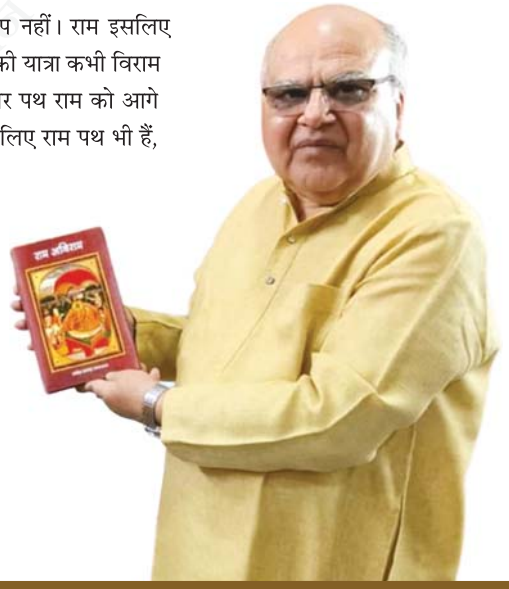

0755-2562294, 9425678058
kalasamayprakashan@gmail.com
कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+06=26) पूर्णांक-121

वर्ष-6, अंक-4, फरवरी- मार्च 2023, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तांतेड
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

रेखांकन : मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य
अरुण तिवारी
समसामयिक
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

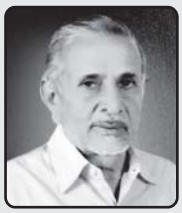
डॉ. भगवानदास पटेल

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

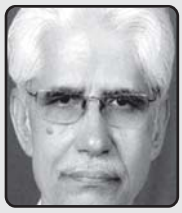
प्रभुदयाल मिश्र

डॉ. सुरेश मकवाना

वसन्त निरगुणे

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

डॉ. सुमन चौरे

डॉ. सरोज गुप्ता

डॉ. महेन्द्र भानावत

इस विशेषांक के अतिथि संपादक

लक्ष्मीनारायण पयोधि

लेखक साहित्यकार एवं जनजातीय संस्कृति के वरिष्ठ अध्येयता है।

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से...** 05
  जनजातियों का पारंपरिक अद्वैत-दर्शन
- **संपादकीय** 08
  जनजातीय संस्कृति में अद्वैत
- **आलेख**
  भील आदिवासी लोक-जीवन और.../ डॉ. भगवानदास पटेल 10
  आदिवासी चित्र शैलियों में अद्वैत दर्शन / डॉ. सुरेश मकवाना 12
  जनजातीय जीवन और प्रकृति का अद्वैत / वसन्त निरगुणे 17
  जनजातीय दार्शनिकता: मध्यवर्ती.../ नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 23
- **अद्वैत-विमर्श**
  श्री रामचरित मानस का आधार.../ प्रभुदयाल मिश्र 29
- **आलेख**
  भारत की लोक संस्कृति में शिव / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 34
  आर्य जनजाति में अद्वैत की अनूठी.../डॉ. अद्वैतवादिनी कौल 41
  बनारस घराना: श्री संकट मोचन स्तुति... / गिरीन्द्रचन्द्र पाठक 44
- **साक्षात्कार**
  श्री भालू मोंढे से भँवरलाल श्रीवास की बातचीत 45
- **छाया-वीथि**
  पद्मश्री भालू मोंढे जी के कैमरे से क्लिक छायाचित्र 55
- **आलेख**
  जनजातीय संस्कृति में अद्वैत / डॉ. सरोज गुप्ता 59
  जनजातियों का अद्वैत दर्शन / डॉ. सुमन चौरे 61
  आबू के अग्नि कुंड से जुड़े... / डॉ. महेन्द्र भानावत 64
  जनजातीय संस्कृति बहुदेवतावादी ... / शिव कुमार पाण्डेय 68
- **भाषांतर**
  अफ्रीकी जनजातीय कविता / अनुवाद-रमेश दवे 71
  अफ्रीकी देश नाइजीरिया की जन-कविता / अनुवाद-रमेश दवे 72
  कविता : धर्मपाल महेंद्र जैन की कविताएँ 73
  क़विता : सुबोध चतुर्वेदी की कविताएँ 74
- **आलेख**
  आदिवासी जन समुदायों की ललित कलापूर्ण.../ डॉ. पूरन सहगल 75
  आदिवासी सृष्टि, संस्कृति और जीवन-दर्शन / मनोहर काजल 80
  पिठौरा कथा में कथा-प्रतीक / डॉ. राजेश राठवा 84
- **कला-अक्ष**
  कलाएँ साखी हैं नैरंतर्य की / चेतन औदिच्य 89
- **जनजातीय संस्कृति**
  गोण्ड संस्कृति: सृष्टि की अवधारणा .../ लक्ष्मीनारायण पयोधि 91
- **संगीत-चिंतन**
  जनजातीय संस्कृति में संगीत / डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 96
- **सिनेमा**
  शृंगार और वियोग के अद्भुत शायर / अश्वनी कुमार दुबे 98
- **सांस्कृतिक समाचार** 83
  आयोजन : भाषा, साहित्य व कला पर आधारित 'मेला' आयोजित 103
  समवेत : सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन शोधपीठ भोपाल का प्रथम वार्षिक अलंकरण समारोह सम्पन्न 106
- **साक्षात्कार**
  कोकिल कंठी गायिका लक्ष्मी शंकर / जगदीश कौशल 107
- **समय की धरोहर**
  लक्ष्मी शंकर 108
- **पत्रिका के बहाने**
  कला समय के नवीन अंक पर टीप 110

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र एवं अंतिम आवरण पेंटिंग** - संदीप कुमार मेघवाल | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन :** मनोहर काजल
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

अतिथि संपादक की कलम से...

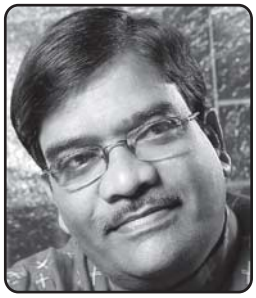

जनजातियों का पारंपरिक अद्वैत-दर्शन

भारतीय कलाओं को समर्पित द्वैमासिक पत्रिका 'कला समय' पच्चीस वर्षों की यात्रा पूरी कर छब्बीसवें वर्ष में अपनी समस्त वैचारिक ऊर्जा को समेटकर निष्ठापूर्वक आगे बढ़ रही है। यह आश्वस्ति और गौरव-बोध का प्रसंग है। इस पत्रिका की निरंतरता के नेपथ्य में सक्रिय प्रकाशक-संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास की इच्छाशक्ति और परिश्रम का अनुमान लगाया जा सकता है।

'कला समय' के विशेषांकों की शृंखला में श्रीवासजी ने इस पत्रिका को एक सर्वथा अभिनव विषय पर केन्द्रित करने का संकल्प किया है। विषय है, 'जनजातीय संस्कृति में अद्वैत'। मुझे लगता है कि इस विषय पर पहले कभी विचार नहीं किया गया। भारत में सात सौ से अधिक जनजातियाँ हैं,जिनमें से अधिकांश की अपनी-अपनी जीवनशैली और सांस्कृतिक परंपराएँ हैं। उनकी आस्था के अनेक स्वरूप हैं। देवी-देवताओं से संबंधित मान्यताओं में भी वैविध्य है। ऐसे में 'जनजातीय संस्कृति में अद्वैत' विषय संबंधित अध्येताओं और शोधार्थियों को चौंकाता तो है,परंतु विचार करने के लिये प्रेरित भी करता है।

मेरा बचपन बस्तर के सघन जनजातीय परिवेश में बीता है। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण मैं उस परिवेश की छोटी-बड़ी गतिविधियों का न केवल साक्षी बनता,बल्कि द्रष्टाभाव से उन्हें समझने का प्रयत्न भी करता।धीरे-धीरे यह मेरा स्वभाव बन गया और मैं उनके बारे में संबंधित समुदाय के बुज़ुर्गों से गहरी चर्चा कर बारीक जानकारियाँ भी हासिल करने लगा। इस प्रकार शोध-अध्ययन करते आधी सदी कब बीत गयी पता ही नहीं चला।

श्रीवासजी ने जब विश्वासपूर्वक 'कला समय' के इस विशेषांक का दायित्व मुझे सौंपा तो मैं जनजातीय सांस्कृतिक यात्रा के अपने अनुभवों की परतें खोलने लगा। सौभाग्य से जनजातीय कार्य विभाग के शोध-संचालनालय 'आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्था' और प्रकाशन-संस्था 'वन्या',भोपाल के अपने सेवाकाल में वर्तमान मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की जनजातीय संस्कृति को उसमें समरस होकर देखने-समझने का मुझे अवसर मिला,जिससे उसके वैविध्य को भी एक सीमा तक मैं देख और समझ पाया। यहाँ 'जनजातीय संस्कृति में अद्वैत' विषय पर मैं अपने उसी 'ऑब्जर्वेशन' और अनुभव के आधार पर विचार करने का प्रयास कर रहा हूँ।

'जनजातीय संस्कृति में अद्वैत' विषय के वस्तुगत रूप में दो भाग हैं - (1) जनजातीय संस्कृति और (2) अद्वैत। जनजातीय संस्कृति की चर्चा से पहले हम 'संस्कृति' की अवधारणा को समझने का प्रयास करते हैं।

'संस्कृति' शब्द अपने व्यक्तित्व की समग्रता में एक व्यापक अर्थबोध के साथ परिदृश्य में उपस्थित है। यह शब्द किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि समुदाय अथवा समाज की जीवनशैली,खानपान, परिधान, रहन-सहन, मान्यता, परंपरा, लोकविश्वास, धार्मिक आस्था, अनुष्ठान, पर्व-त्योहार, सामाजिक व्यवहार, नियम-बंधन, संस्कार, आजीविका के उद्यम आदि की विशेषताओं को प्रकट और रेखांकित करता है। इस पारिभाषिक स्थापना को जनजातीय संस्कृति के माध्यम से समझा जा सकता है।

अगर आपने कभी किसी जनजातीय क्षेत्र का प्रवास किया हो,वहाँ कुछ दिन ठहरने का अवसर

मिला हो,या फिर आप किसी जनजाति बहुल गाँव के निवासी हों ? तो आपकी स्मृति में यह मोहक दृश्य अवश्य अंकित होगा : ढोल की गमक के साथ निनादित मादल का उल्लास... टिमकी, ठिसकी, चुटकुलों, कुंडी, घंटी या थाली की संगत में दिशाओं को गुँजातीं बाँसुरी की स्वर-लहरियाँ....पाँवों में हवा के घुँघरू बाँधकर नृत्य-भंगिमाओं के साथ वृक्षों से लिपटतीं विभोर लताएँ....जंगल-पर्वत, नदी-झरनों का सम्मोहक संसार....रहस्यमय घाटियों से क्षितिज तक जातीं टेढ़ी-मेढ़ी अनगढ़ पगडंडियाँ और इन सबके बीच धड़कता जनजातियों का संघर्षमय जीवन। अधिकांश जनजाति समुदाय प्राय: वनों के निकट निवास करते हैं। प्रकृति की रागात्मकता और लीला-मुद्राओं से उनका गहरा संबंध है। निसर्ग के लगभग सभी जीवनोपयोगी उपादान उनके आराध्य हैं। वे प्रकृति की छोटी से छोटी शक्ति में सर्वशक्तिमान की छवि पाते हैं। यहीं से जनजातीय आस्था की प्रकाश-यात्रा आरंभ होती है।

अब हम इसी यात्रा के आलोक में अद्वैत-दर्शन की संक्षिप्त चर्चा करते हैं। भारतीय दर्शन में 'वेदांत सर्वाधिक प्रसिद्ध है,जिसमें भौतिकवाद के साथ-साथ अध्यात्मवाद प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। वेदांत दर्शन में 'जीव और ब्रह्म के परस्पर संबंध' पर विचार किया गया है, जो निष्कर्षत: अद्वैत-दर्शन की तरह स्थापित हुआ।इसे एक प्रमुख अध्यात्म-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आदि शंकराचार्य को दिया जाता है।

उनके अनुसार जीव यानी आत्मा और ब्रह्म यानी परमात्मा अलग-अलग यानी दो नहीं, बल्कि एक ही हैं। उन्होंने बताया कि आत्मा परमात्मा का अंश है, अर्थात् दोनों एक ही सत्ता हैं। आदि शंकर ने इस अवधारणा को समझाने के लिये 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् 'मैं ईश्वर हूँ' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसका गूढ़ार्थ यह है कि समस्त ब्रह्माण्ड में ऐसा कुछ भी नहीं, जो मुझसे अलग हो। इसलिये जीव या आत्मा और ब्रह्म अथवा ईश्वर एक ही हैं। इसके दो रूप हो सकते हैं-निर्गुण यानी निराकार और सगुण अर्थात् साकार। जनजातीय संस्कृति में दोनों स्वरूपों की उपासना प्रचलित है। इस तरह प्रकारांतर से 'अद्वैत दर्शन' का आभास इस संस्कृति में मिलता है।

जनजाति समुदायों की परंपरा में धरती, आकाश, सूरज, चंद्रमा, मेघ, वर्षा, नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु, पक्षी, सर्प, केकड़े यहाँ तक कि केंचुआ भी उनकी श्रद्धा का पात्र है, क्योंकि महादेव को धरती के निर्माण के लिये उसी के पेट से मिट्टी मिली थी। पशु-पक्षी और वनस्पतियों में भी अनेक उनके गोत्र-देवता के रूप में पूज्य हैं ही। आस्था का यह निश्छल रूप ही अनुष्ठानों की प्रेरणाभूमि है। पर्व-जात्रा, मेले-मड़ई, नृत्य-उत्सव,गीत-संगीत-सब परंपरा के रूप में आदिम आस्था का पीढ़ी-दर-पीढ़ी संतरण ही है।

भील जनजाति समूह में हरहेलबाब या बाबदेव,मइड़ा कसूमर, भीलटदेव, खालूनदेव, सावनमाता, दशामाता, सातमाता आदि, गोंड जनजाति समूह में महादेव, पड़ापेन या बड़ादेव, लिंगोपेन, आँगापेन ठाकुरदेव, चंडीमाई, खैरमाई आदि, बैगा जनजाति में बूढ़ादेव, बाघदेव आदि, भारिया जनजाति के आराध्य दूल्हादेव, नारायणदेव, भीमसेन और सहरिया जनजाति में तेजाजी महाराज, रामदेवरा आदि की पूजा पारंपरिक रूप से प्रचलित है।

जनजातीय संस्कृति में शिव यानी आदिदेव महादेव की अवधारणा आस्था के महावृक्ष का मूल है। इसी महावृक्ष की शाखाओं-प्रशाखाओं की तरह उनके अन्य विविध स्वरूप हैं। शिव के साथ शक्ति की आराधना भी जनजातीय संस्कृति में समान रूप से प्रचलित है। विभिन्न समुदायों में शक्ति के विविध रूपों और नामों की चर्चा हम कर चुके हैं। निष्कर्ष रूप में जनजातीय संस्कृति और आस्था के केन्द्र में प्रकृति और पुरुष, यानी अर्द्धनारीश्वर के अद्वैत दर्शन का आभास हम कर सकते हैं।

'मूला' और 'मूलाई' कोरकू जनजाति के प्रथम पुरखे माने जाते हैं। मान्यता के अनुसार इनकी रचना महादेव शिव ने रावण के आग्रह पर विन्ध्य-सतपुड़ा प्रांतर में की थी। मूला-मूलाई के पुतले बनाने के लिये महादेव ने कामदूत कौए से मिट्टी साँवलीगढ़ और भँवरगढ़ से मँगायी थी। इसलिये कोरकू इन क्षेत्रों को अपनी मूल जन्मभूमि मानते हैं। एक पारंपरिक गीत है :

''आले नी साँवलीगढ़ा, कोरो डे राण्डे।''

यानी, हम साँवलीगढ़ से आये हैं। हम कोरकू हैं।

कोरकू मानते हैं कि शंकर भगवान जिस पर्वत पर विराजमान हैं,वह उनके गले में लिपटे शेषनाग के फण पर रखी धरती पर स्थित है। गीत है :

''धरती शेषनागे न फन लियेन टेगेन
शेषनागो शंकर गलाहार आरूकेन...।''

भील जनजाति समूह में प्रचलित एक पारंपरिक कथा के अनुसार पृथ्वी पर वनस्पतियों की उत्पत्ति शिवशंभू की जटाओं से हुई है। इसलिये भील वृक्षों में ही ईश्वर का वास मानकर उनकी पूजा करते रहे हैं। उनके समस्त देव-देवियाँ महादेव और शंभूमाता के ही रूप हैं।

कोल जनजाति के लोगों की मान्यता है कि पहचान के लिये कोल स्त्री के माथे पर पहला गोदना महादेव ने ही त्रिशूल से

गोदा था। बैगा महादेव को उत्पत्तिकर्त्ता मानते हैं। कथा के अनुसार मानव-सृष्टि का आरंभ करने के लिये केंचुए के पेट से मिट्टी निकाल कर महादेव ने जो पहला पुतला बनाया वह बैगा था। उसे महादेव ने कुल्हाड़ी दी थी,जिसे लेकर वह जंगल चला गया। दूसरा पुतला बनाकर महादेव ने उसके हाथ में हल दे दिया था, जो खेती करने लगा, वह गोण्ड कहलाया। दोनों अपने को महादेव की संतति बताते हैं। शिव को बैगा लोग बूढ़ादेव कहते हैं और गोण्ड पड़ापेन।

गोण्ड पुनेम यानी जनजाति समूह यह मानता है कि ''मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो यानी शिव ने इस पंचखंड धरती की रचना की है और वे ही सृष्टि यानी चराचर जगत् के स्वामी हैं।'' अर्थात् अद्वैत दर्शन के अनुसार वही 'ब्रह्म' हैं।

गोण्डी भाषा में यह पारंपरिक स्तुति इसी दर्शन पर आधारित है : **ओ ऽऽऽ इद मावा सिरडी सिंगार संयुंग द्विपता सब पेन सर्वशक्तिमान अना सुमरन किया।**

पेनतल पुरखाल्क स्यानो-बुढ़ो मुठवल्क पुयनेम, मुठवल्कुन सेलाड गौरा दाई नू मुठवाल कुपार लिंगो, जंगो माई, काली कंकाली ता मावा गोण्डीयाना सगा समाज कोयतुर खण्डाक कोयामूरी इम्मा सारुंग, एरुंग सगा समाज सयमाल अयामीका गुट्टा दीपता कोरता।

नालूंग इदात, नालूंग भिडीते पाडिंग सेरगीते सगा इर्राकी इमाट माकुन तल्लात पेर्रा आशीर्वाद सीम। इद बती इदाल, इम्मा गुनना, नरगोदा इदाल इद /निकून बेनाते कुपार लिंगो पुनेम पडापेन सजोरपेन पूजन सुमिरन लाई शुरू आइता।

(हे चराचर जगत् के स्वामी! पंचद्वीपों के अधिपति! देवों, पुरखों, गुरु, धर्मगुरु-सबका हम स्मरण करते हैं। हे योगिराज शंभूसेक महादेव! माई गौरा सहित हे मुठवा कुपार लिंगो! कोया पुनेम (गोण्ड समुदाय) की जन्मदात्री हे जंगो माई कंकालिन! कोयमूरी द्वीप के उम्मोगुट्टाकोर, सयमाल गुट्टाकोर, अयफोकागुट्टाकोर और येरुगुट्टाकोर खण्डों के चारों वंशों के बारह सगा देवताओं, आशीष दो! तुम सबका स्मरण कर मैं कुपारलिंगो पडापेन आदि देवताओं का आह्वान कर रहा हूँ, साक्षी बनो!)

कोयतूर शिवस्वरूप लिंगोपेन को समस्त कलाओं का नायक मानते हैं। इसलिये बस्तर में घोटुलगुड़ी का अधिष्ठाता लिंगोपेन माना जाता है। इस गुड़ी (मंदिर) में लिंगोपेन को गुरु मानकर ही कलाओं का अभ्यास किया जाता है,क्योंकि वही इनका ज्ञाता है। मान्यता के अनुसार लिंगो का अवतरण गुफ़ा में बंद कोयतूर बंधुओं की मुक्ति के लिये लोहागढ़ में हुआ था। सोलह खण्ड धरती, नौ खण्ड आकाश, स्वर्ग और पाताल के अधिपति नादस्वरूप शिव के साकार रूप माने जाते हैं लिंगोपेन। मुठवा, रायलिंगो, पहांदी पारी कुपार लिंगो,पडापेन,आँगापेन-सब महादेव के रूप, जो कोया पुनेम के आराध्य हैं, आस्था के प्रतीक हैं।

गोण्ड यानी कोयतूर जनजाति **पडापेन**, यानी बड़ादेव, यानी शंभू (स्वयंभू) को सृष्टिकर्ता मानते हैं। पडापेन का वास पेनकडा (देवखला) में होता है। पडापेन को कच्चीवेन भी कहा जाता है। इस देवता का प्रतीक कच्चे लोहे से गढ़ा जाता है। कोयतूर समुदाय द्वारा शंभू महादेव के साथ **गवरा दाई** अर्थात् गौरी माता की भी पूजा की जाती है। इस जनजाति की मान्यता के अनुसार गवरी दाई सृष्टि की स्वामिनी है,इसलिये कोयतूर की अधिष्ठात्री भी।

गोण्ड जनजाति समूह की मान्यता के अनुसार पडापेन के छह भिन्न स्वरूप हैं, जो परसापेन, मटियापेन, गागरापेन, पालोपेन, सल्लेपेन और चंबरपेन के नाम से पूजे जाते हैं। यह मान्यता अवतारवाद तो नहीं, परंतु अद्वैतवाद की ओर ज़रूर संकेत करती है। गोण्ड स्त्रियाँ शिव अर्थात पड़ापेन के प्रति आस्था व्यक्त करने के लिये प्रतीकस्वरूप मस्तक पर अर्द्धचन्द्र का चिह्न गुदवाती हैं। इस चिह्न को अत्यंत शुभ माना जाता है।

यह मान्यता कि आत्मा में अंकित होने के कारण मृत्यु के बाद गोदना अलंकरण परमात्मा के साथ एकाकार होता है। विभिन्न जनजाति समुदायों में जीवात्मा की यात्रा और परमात्मा से मिलन की मान्यता और मौखिक परंपरा में उसका रोचक वर्णन मिलता है। कलश, मचिया, गाछ आदि प्रतीक इसलिये गुदवाये जाते हैं कि जीवात्मा जब यात्रा में थक जाये तो गाछ की छाया में मचिया पर बैठकर विश्राम कर ले और कलश के पानी से अपनी प्यास बुझा ले।

प्राय: सभी जनजातियाँ मृतक पुरखों को देवकुल में शामिल कर लेती हैं,जिसका अर्थ यह है कि उनकी परंपरा में जीव (आत्मा) और ईश्वर (परमात्मा) अलग नहीं हैं।

प्रस्तुत अंक में शामिल आलेख प्रत्यक्ष रूप से तो 'जनजातीय संस्कृति में अद्वैतवाद' को प्रमाणित नहीं करते हैं, परंतु विचार का एक वातायन तो खुलता ही है। प्रसन्नता इस बात की है कि यह विशेषांक अध्येताओं और शोधार्थियों का ध्यान 'जनजातीय संस्कृति में अद्वैत' विषय की ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य में सफल रहा है।

शुभकामनाओं के साथ,

लक्ष्मीनारायण पयोधि

संपादकीय

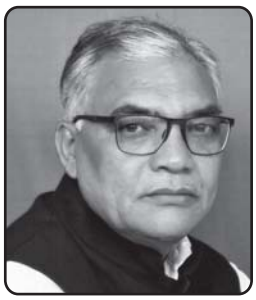

जनजातीय संस्कृति में अद्वैत

''ज्ञान कहै अज्ञान बिन् तप बिनु कहै प्रकाश।
निर्गुण कहे सगुण बिन, सो गुण तुलसीदास।।''

प्रकृति की पूजा जनजातीय संस्कृति की अनन्यत्म विशेषता है। इसका कारण यही है कि प्रकृति और जनजातीय जीवन का अविभाज्य सम्बन्ध रहा हैं। जंगल और उसकी प्राकृतिक सम्पदा के साथ उनका सम्बन्ध भोजन, सुरक्षा, कृषि, औषधि, जलावन, चारा, मनोरंजन आदि विभिन्न स्तरों पर जुड़ा है। इसलिए हर जनजातीय समाज की धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं में जंगल और प्रकृति के प्रति इतना अटूट सम्बन्ध है। जंगल के अन्दर ही जनजातीय का एक पूरा समाज हैं, इतिहास और संस्कृति है, उनके सुख-दुख और सपने हैं। इन जनजातीयों के जीवन और, परम्पराओं, कला और संस्कृति, साहित्य के सर्वेक्षण को सहज नहीं समझा जा सकता हैं जनजातीयों के जीवन और संस्कृति को समझने के लिए जनजातीयों के बीच जाना और उनसे साक्षात्कार के माध्यम से ही उनकी संस्कृति को जाना जा सकता है। मनुष्य और प्रकृति के रूपों का अन्तर्सम्बन्ध और अन्तर्निर्भरता पुरातन हैं। मानव अपने आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य को शिल्प के माध्यम से अभिव्यक्त करता आया है। इसमें काष्ठ शिल्प प्रमुख हैं। लकड़ी, बाँस, धातुओं को मनचाहे आकार-प्रकार से कई रूपाकारों की सम्भावनाओं की तलाश कर पत्थर, काष्ठ की मूर्तियाँ, अलंकरणों सहित गोदना कला को कलात्मक आकार देने में सफल हुआ है। प्रकृति के साथ रहते-रहते जनजातीय चेतना ने जीवन जीने की जो सुगम्य राहें बनाई जिसे हम मानव की सर्जना शक्ति ही कह सकते है। आज भी जनजातीय लोग अपने समुदाय में ही जीना चाहते है। सामूहिकता में रहकर अपनी संस्कृति के साथ रहना चाहते हैं। जनजातीय समूदायों में ही नृत्य, वाद्ययंत्रों, देवी-देवताओं, अनुष्ठान, मान्यताओं के बीच विभिन्न संस्कार और इसी के साथ-साथ झाड़-फूँक, टोना-टोटका, तारण-मारण, जादूमंतर और पितर पूजा जैसे अनुष्ठान शामिल हो गये। इनकी अपनी वाचिक परम्परा के माध्यम से भाषा-बोली का संस्कार रचा। जनजातियों ने देश-विदेश के अध्येताओं को अपनी ओर आकर्षित किया है। किन्तु इन जनजातियों में उत्पन्न और उसी प्रकार का जीवन जीने वाले विद्वान बहुत कम हैं।

एक ही चेतना स्वरूप मनुष्य मात्र में, पशु-पक्षियों और कीट-पतंगों में व्याप्त हैं। पर्वत, पहाड़ और नदियाँ, समुद्र और तारों में हमे अद्वैत बोध होता है। जैसे हर नदी सागर में जाकर मिलती है उसी सिद्धान्त में एकात्मकता निहित है। सब कुछ एक से बना है और एक में ही जाकर समाहित होगा। अद्वैत वेदांत ही हमें संकल्प शक्ति और ईश्वरीय सत्ता में पूर्ण विश्वास के साथ जोड़ता हैं हमें यह समझना होगा कि हर चीज हमें एक-दूसरे से जोड़ती है। ईश्वर ने कहा है कि हम सब एक ही धागे के मोती हैं। ''ब्रह्म सत्य हैं जगत मिथ्या है। का अर्थ पूर्णत: सत्य है। बाकी सारी माया है माया की रोशनी हमें ईश्वर तल से साक्षात्कार कराने में बाधित करती है। हमें हमेशा आत्मबोध होता है कि मैं कभी नहीं मिटने वाला आत्मा अजर अमर है जीव और ब्रह्म का एकात्मक रूप ही अद्वैत हैं। इसलिए हमें जाति और पंत से ऊपर उठकर सभी में ब्रह्म हैं, सभी में ईश्वर है यह मानकर हमें यह सोचना पढ़ेगा कि सारा संसार का सूत्र एक ही है। यही

एकात्मकता का सिद्धान्त है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' है। दुर्भाग्य को भाग्य में बदलने का एक मात्र मार्ग हैं सद्विचार हमें अपने जीवन में धारण करना होगा। आदिवासी समुदायों में कोई ठोस देवालय का स्वरूप नहीं मिलता, समूची प्रकृति ही पूजनीय है। जनजातीय देवलोक, वह देवलोक है, जिसकी धुंधली झलक, पताका, डाँड, खंभ, त्रिशूल, टेराकोटा, हाथी-घोड़े इत्यादि आकृति के रूप में हैं, देवालय प्राय: नदारद है। सुख हमारे अन्दर हैं बहार तो दुख ही दुख हैं। इसलिए कहा गया हैं कि चलना परिक्रमा है, भोजन भजन है और सोना ही समाधि है। हमें माया रूपी संसार के पुजारी नहीं बनना है। यह सब सुविधा सम्पन्न है सत्य नहीं है। जनजातीय समुदाय प्रकृति, जल, जंगल, जमीन, पंच तत्व का पुतला पंच तत्व में विलिन होगा। यह भाव हमेशा जनजातीय समुदाय में रहता है। जनजातीय हमारे पूर्वज हैं। उन्हीं की प्रेरणा और परम्परा से हमने दृश्य, रूप, रंग, स्वाद और सुगन्ध, नृत्य, मनोरंजन के साथ रहना और जीना सीखा तथा विज्ञान के माध्यम से हमने एक समझ पैदा की जो सामाजिक विकास के लिए नितांत आवश्यक है तेरे मेरे में जो भेद नहीं करता वह जनजाति समुदाय है। जो एकात्मक और सद्भाव के समुदाय में रहकर एकात्मकता का संदेश देती जनजाति समुदाय अद्वैत की पराकाष्ठा पर खरी उतरती हैं। जो अनुकरणीय है।

सम्पूर्ण विश्व एक कुटुम्ब है मनुष्य ही नहीं बल्कि धरती, जल, अग्नि, वायु, अंबर, नक्षत्र सहित मिट्टी चर-अचर और प्राणी मात्र इस जीव-जगत में अनेक रूप रंग अलग-अलग है। पर सभी उस एक ही ब्रह्म में समाये हुए हैं। मिट्टी से सब कुछ बनाया जा सकता है, पर फिर भी मिट्टी, मिट्टी ही है। मिट्टी का बर्तन टूटकर मिट्टी ही बनेगा, आत्मा अमर है शरीर बार-बार मरेगा और बार-बार जन्म लेगा। आत्मा और परमात्मा एक ही एकाकार रूप है। जब हमारे जीवन में अद्वैत आ जाता है, तब हमें सभी उस एकात्मक सत्ता के अधीन ही पाते है। हम प्रकृति प्रदत्त नदी, पर्वत, वृक्ष, संत, गुरु, माता-पिता सबको ब्रह्म का ही रूप मानते है। वही आत्मा रूपी ब्रह्म हमारे अंदर है, जो अमर है। जो देता है, लेता नही है। प्रकृति भी हमें देती है लेती नहीं है।

सभी में वही शिव है। पूरी सृष्टि शिवमय है। जनजाति के बूढ़ादेव, बड़ादेव, लिंगों अथवा महादेव इसी प्रकार का एकल देवता की कल्पना है, जिसे नकारा नहीं जा सकता है। इस अनेकता में एकता का अनुभव वही कर सकता है, जिसने अपने अन्दर में आत्मा रूपी ब्रह्म को जाना और समझा है।

मैं अपने सभी लेखकों के प्रति विशेष आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस विशेषांक के लेखक की तरह ही नहीं बल्कि 'कला समय' परिवार के अंग की तरह मुझे बढ़-चढ़कर सहयोग दिया। साथ ही मैं अपने अतिथि विद्वान और जनजातीय अध्येता श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि को हृदय तल से धन्यवाद देता हूँ कि शायद पहली बार ''जनजातीय संस्कृति'' के अद्वैत जैसे गूढ विषय पर अपनी कृपापूर्वक सहमति देकर भरपूर सहयोग प्रदान किया। जनजातीय विषय के विद्वान लेखकों से मेरा पहला परिचय कराने वाले जनजातीय संस्कृति के ख्यात विद्वान श्री वसन्त निरगुणे जी का हृदय से आभारी हूँ। इनका भी मुझे पूर्ण सहयोग और मार्गदर्शन मिला। ये जनजातीय संस्कृति में रचे-बसे और विषय के अधिकृत विद्वान भी हैं। दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। साथ ही संगीत विषय पर डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' अपने नये स्तंभ संगीत-चिंतन की शुरुआत हमारे आग्रह पर की है। हम श्री रजक के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं।

अत: सभी लेखकों और सुधी पाठकों से मेरा निवेदन है कि आप सब आगे भी ''कला समय'' में अपना रचनात्मक एवं अपनी विशिष्ट क्षमता के अनुरूप हर संभव सकारात्मक योगदान देते रहें।

महापर्व होली और नवसंवत्सर की हार्दिक बधाई और मंगलमय शुभकामनाएँ।

।। शुभम अस्तु ।।

- भँवरलाल श्रीवास

■

आलेख

भील आदिवासी लोक-जीवन और प्रकृति के साथ अद्वैत

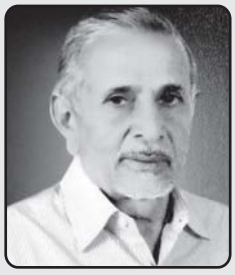

डॉ. भगवानदास पटेल

पूर्वकाल में 'आर्नत प्रवेश' के नाम से प्रसिद्ध उत्तर गुजरात के अरावली पहाड़ी प्रदेश में भील आदिवासी निवास करते हैं। इस प्राचीन पर्वत की शिखरावलियों की तलहुटियों में अनेक वर्षों से बसे भील आदिवासीयों की वैदिक युग से भी पूर्वकालीन दीर्घ एवं समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा है। अत: वर्ष के ऋतुचक्र के अनुसार आते उनके सामाजिक-धार्मिक पर्वो पर अरावली प्राकृतिक प्रदेश का लोकजीवन गीत-संगीत-नृत्य-कथा एवं नाट्यमय बन जाता है। यहाँ हमारा विषय 'भील आदिवासी लोक-जीवन और प्रकृति के साथ अद्वैत' है। आदिवासी निसर्ग समाज में मात्र मनुष्य ही अकेला नहीं है। उसमें प्रकृति, पशु, पक्षी,जंतु, आदि भूचर, जलचर और खेचर सृष्टि भी शामिल है, सहभागी और सहपंथी है। उसके मन में वह भी लोक है तथा वह भी सह-जीवन जीती है।

एक सांस्कृतिक छत्र में रहते लोक-समुदाय का जीवन परंपरागत होता है। वह प्रकृति के प्रत्यक्ष परिचय में होता है। अत: आदिवासी लोक-परंपरा पृथ्वी-प्रकृति को जीवन से निरपेक्ष नहीं मानती। प्रकृति और स्वयं की देह को आधार देती पृथ्वी के प्रति भील समाज के मानस में आरंभ से ही अद्वैत और पूज्य भाव जाग्रत हुआ है। इसी वजह से महामार्गी भील आदिवासी साधु प्रात: काल उठकर सोचता है: जिसके ऊपर जीवन-यात्रा का आज का दिन आरंभ करता हूँ, वह पृथ्वी माता श्याम वर्ण (रंग) की है परंतु कमल -देही है। उस पर पैर रखते ही उसे दु:ख होगा। अत: उससे क्षमा याचना का मंत्र बोलकर वह पृथ्वी पर पैर रखता है।

ऐसा संवदनशील भाव उसे वृक्ष-वनराजि के प्रति भी है। दातुन लेने के लिए जब वह वृक्ष के पास जाता है तो साधु विचार करता है: वृक्ष में प्राण है। उसकी पतली डाली उसका सजीव अंग है। दातुन करने के लिए उसे काटने पर उसे दु:ख होगा। अत: उससे माफी माँगने का मंत्र बोलकर, उसके बाद एक ही टहनी काटकर दातुन करता है।

ऐसा ही भाव जलचर सृष्टि के साथ भी होता है। सुबह स्नान करने के लिए जलाशय के किनारे जाने पर साधु सोचता है: जलाशय में जल सो रहा है। जल में जीव-जन्तु भी अभी सो रहें हैं। स्नान करने से वे समय से पहले ही जाग जायेंगे। जिससे उन्हे दु:ख होगा। अत: उनसे क्षमा-याचनापूर्ण मंत्र बोलने के बाद वह स्नान करता है।

जिससे जीवन बना है, उस जीवन निर्माता के प्रकृति-तत्व-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का गौरवगान करना तथा उनके प्रति कृतज्ञता एंव पूज्य भाव व्यक्त करने का जीवनदर्शन, धर्मदर्शन, भील आदिवासी निसर्ग समाज का है। जल की वर्षा करने वाले मेघ को इंद्र(एंदर)मानकर उसकी उपासना करना, फल-फूल एवं हरियाली(घासचारा)प्रदान करने वाले तथा ऋतु के अनुसार अनेक रूप धारण करने वाले पहाड़ को देवता मानकर पालतू पशु के बीमार होने पर उसकी मन्नत मानना, प्रकृति के रौद्र रूप वंटोल (चक्रवात) को अन्न का रक्षक देवता मानना तथा उसकी पूजा न की जाए तो खेत में तैयार हुए अनाज को उठा ले जाएगा, ऐसी धार्मिक आस्था दृढ़ होना आदि बातें आदिवासी लोक जीवन को प्राकृतिक तत्वों के साथ ओत-प्रोत होने के संकेत देती है। इन लोक देवताओं की मन्नत मानकर उन्हें प्रसन्न करने हेतु असंख्य धार्मिक गीतों-नृत्यगीतों, लोकाख्यानों-लोकमहाकाव्यों, मिथकों (पुराकथाएँ) आदि का उद्भव हुआ है। उनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा के कारण अनेक व्यक्ति-पशु स्वस्थ और ठीक हुए हैं। पृथ्वी के इन प्राकृतिक देवताओं ने परिवर्तित प्रकृति के अनुसार अनेक रूप धारण करके लोक जीवन में आंनद और आस्था के भाव जागृत करते हुए 'वंधामणां'(मन्नत), 'गोर' (गौरी)जैसे उत्सवों का सहज रूप में विकास किया है। जिसके आधार पर ये प्राकृतिक देवता स्थिर रहे हैं। इस धरती, पृथ्वी, जमीन की ओर भी भील समाज में पूज्य भावना है तथा उसकी माता के रूप में पूजा की जाती है।

अथर्व वेद का ऋषि भी कहता है,''माता, भूमि: पुत्रोंऽहं पृथिव्या:''-भील भी पृथ्वी माता की ओर इसी तरह की पूज्य भावना का अनुभव करते है।

भील समाज की सृष्टि की पृथ्वी की उत्पति की पुराकथा (धरण नं मनखा अवतार) के अनुसार यह पृथ्वी माता प्रथम जल प्रलय (जलुकार) के समय जल में थी। पृथ्वी की उत्पति कथा में जल प्रलय की भी एक जीवंत चरित्र के रूप में कल्पना की गई है।

भील समाज जल को भी जीवंत तत्त्व के रूप में देखता है। आदि पौराणिक देवी-देवता -जलुकार भगवान, उमिया(पार्वती) एवं शिव जल से ही पैदा हुए हैं।

भीलों का निषादों के साथ संबंध है तथा निषाद इस पूर्वकालीन देश में दस हजार वर्ष पूर्व-प्रागैतिहासिक काल से रहते थे। भीलों के भोपा (ओझा) और साधु द्वारा कही जाने वाली पुराकथाएँ (मिथकों), मंत्रों एवं गाए जाने वाले लोक महाकाव्यों में प्रकृति और मानव का घनिष्ठ तादात्म्य एवं अद्वैत देखा जा सकता है। यह बात मेरे द्वारा संपादित 'धरण नं मनखा अवतार', मोतीचरा की वारता, 'देवरां की वारता' जैसी पुराकथाओं और 'राम सीता माँ की वारता' (भीली रामायण), भीलों का भारथ' (भीली महाभारत), गुजरां का अरेला', 'राठोरवारता' जैसे भीली लोकमहाकाव्यों की जाँच करने से सहज रूप में समझ में आ सकती है। विद्वानों के मतानुसार पुराकथा की रचना उस समय हुई जब आदि मानव (प्रागैतिहासिक मानव) और प्रकृति के बीच विभाजक रेखाएँ नहीं थी। दोनों एक अद्वैत-सार्वभौम जीवन में सहभागी थे तथा चेतन मावन का मन अज्ञात रूप में प्रकृति की घटनाओं को अपने जीवन की घटनाओं एवं अनुभवों के माध्यम से समझने का प्रयास करता था। समष्टि मन द्वारा प्रकृति के तत्वों और घटनाओं के मानवीकरण की यह अचेतन प्रक्रिया ही मिथ (पुराकथा)की रचना मूल है। इससे भील आदिवासियों की पुराकथाओं और लोक महाकाव्यों में आने वाले प्रकृति के जलचर, भूचर और खेचर तत्व, यथा-मछली-कछुआ, वासुकीनाग, बाघ, घोड़ा, पक्षी आदि मानव के समान व्यवहार करते हैं। मानव सदृश क्रिया-कलाप करते हुए सृष्टि के ये निसर्ग तत्व देवी-देवताओं और मानवों को चमत्कारिक रूप से सहायता प्रदान करते हैं। प्रकृति की सचेतनता के विश्वास के कारण ही 'राम-सीता माँ की वारता' में बाघ सीता को सप्तर्षि के आश्रम में छोड़ आता हैं। प्रकृति के साथ अद्वैत के कारण मेरे द्वारा संपादित 'करमीरा के अरेला' भीली लोकाख्यान में करमीरा धोबी को मछला भविष्य में होने की प्रलय की कथा कहता है तथा उसे प्रलय से बचाता हैं। आगे बढ़ते हुए यही कथा 'मत्स्यपुराण' में मनु और मछली की धार्मिक कथा के रूप में परिवर्तित हुई हैं। इसके अतिरिक्त जल, वायु, सूर्य, चंद्र जैसे प्राकृतिक तत्वों का देवीकरण हुआ है। ऐसे प्राकृतिक तत्वों से ही भीलों की अंबाव, चामुड़ा, कुंवारका, टुटी-टावरी, खाँड़ी-खापरी जैसी आदि-दैविक देवियाँ तथा आगे जाकर द्रौपदी, कुंती जैसी मानव देवियाँ तथा जलुकार भगवान, गुणका (गणपति), भैरव, महामार्गी पंथ के धूला के ठाकुर, देवरां के ठाकुर एवं कोंबरिया ठाकुर जैसे भावात्मक देवताओं का आविर्भाव हुआ है। निषाद कृषक थे जिससे प्रकृति के साथ अद्वैत एवं घनिष्ठ संबंध रखने वाली कृषि की देवी सीता का आविर्भाव प्राकृतिक तत्वों से माना जाता हैं।

भील आदिवासी समाज की पुराकथाएँ, लोकाख्यानों लोक-महाकाव्यों में प्राकृतिक तत्वों के मानवीकरण के साथ अद्वैत के कारण मानव का भी प्रकृतिकरण हुआ है। यह प्रकृतिकरण मानव पात्रों को विराटता प्रदान करता हैं। मेरे द्वारा संपादित भील समाज की पृथ्वी की उत्पत्ति कथा में उमिया सात पाताल नीचे जल में रहने वाले वासुकीनाग के फन में रहे पृथ्वी के बीज मानव जैसे रूप से प्राप्त नहीं कर सकती। अत: वह जल में कछुई का रूप धरण करके पृथ्वी के बीज प्राप्त करती है। यहाँ उमिया का प्रकृतिकरण रूप देखा जा सकता है। कई बार लोकनायकों के चरित्रों में मानव के प्रकृतिकरण के कारण लोकोत्तर या दिव्याता का पक्ष इतना प्रबल बन जाता हैं। कि जिससे ये लोकनायक ही लोकोत्तर अवतार बन जाते हैं। तथा वे स्वयं प्राकृतिक शक्तियों का नियमन करते हैं। मानव के प्रकृतिकरण के कारण ही 'गुजरां का अरेला' का लोकनायक भोजा गुर्जर केसर घोड़ी पर सवार होकर स्वर्ग तक उड़ सकता हैं। उसकी मूँछों की ताकत से उछाली गई दारू से बैकुंठ का आसन डोलने लगता है। तथा वैकुंठ से वापस आती दारू से पृथ्वी पर गरियोरकोट में दारू के मेघ बरसने लगते हैं। सामूहिक लोग कल्पना में निहित मानव के प्रकृतिकरण के कारण ही महान लोकनायक स्वयं प्राकृतिक शक्तियाँ बन जाते हैं। तथा उनका इस हद तक प्रकृतिकरण और उदात्तीकरण हो जाता है कि अद्वैत स्थापित करके वे स्वयं देवता बन जाते हैं। उनके इस गुण के कारण भीलों के जलुकार (जलप्रलय) के देवता काले-गोरे भैरव के स्थान पर मानव मेहो एवं भोजो देवता के रूप में परिवर्तित होकर देवरां के मंदिर में स्थान प्राप्त करते हैं। मानव के प्रकृतिकरण के कारण दिव्यता प्राप्त करके तथा फूल से प्रगटित देवनारायण गायों की सहायता से गूजरों से लड़ाई करते हैं। तथा वे भील समाज के देवालय में जलुकार भगवान के स्थान पर देवरां के ठाकुर बन कर विराजित होते हैं।

इस तरह, आरंभिक प्रकृति तत्वों से पैदा हुए देवी-देवताओं की छोटी-बड़ी पुराकथाएँ मानव सृष्टि के साथ अद्वैत स्थापित करके लोक आस्था के कारण मानव से लोकोत्तर देवी-देवता बनकर उनके वीरतापूर्ण एवं मानवतावादी कार्यो से विकसित होकर, पर्व-उत्सव के अवसर पर सामाजिक-संस्कारों एवं धर्मिक अनुष्ठानों के वातावरण में आख्यानों-महाकाव्यों का रूप धारण करके नए-नए युगों की सामूहिक आस्था को समाहित करते हुए आगे बढ़ती हैं।

- लेखक वरिष्ठ साहित्यकार है।
304,मिथिला अपार्टमेंट,सविता एन्कलेव के सामने, जजिझ बंगल चार रास्ता, बोड़कदेव, अहमदाबाद- 380015, फोन: 9428109579

■

शोध आलेख

आदिवासी चित्र शैलियों में अद्वैत दर्शन

डॉ. सुरेश मकवाना

आदिकाल से चली आ रही एक विशिष्ट जीवन शक्ति और ज़मीन पर तैरती एक शानदार यात्रा का नाम लोक संस्कृति है। सृष्टि पर प्राकृतिक और भौगोलिक रूप से अथाह वैविध्य भरा पड़ा है। मनुष्य समष्टि पर अनेक प्राणियों में सब से बुद्धिजीवी है तो उसका कारण उसकी सोचने और असीम चेतना से अलौकिक व्यवहार करने की क्षमता है। मनुष्य अनादि काल से तकनीक से परिचित रहा है। क्योंकि चाहे वह पत्थर हो लकड़ी हो या बांस तीर का सिरा गुलेल या धारदार हथियार का अनुप्रयोग भी एक तकनीक है। इस मायने में हमारे आदिवासी एक सच्चे आविष्कारक भी हैं। एक कहावत है अनुप्रयोग मानव के लाभ के लिए विज्ञान का प्रयोग सिध्द होता है। आदिवासियों की जीवन जीने की अपनी अद्भुत कला रहीं है। उनकी परंपराओं में मूर्त और अमूर्त में कोई अंतर नहीं है। यहां जीवन को नृत्य, गायन और मस्ती के साथ जोड़ा गया है । कोई प्रेक्षक नहीं हैं केवल नर्तक हैं। जिनसे अनहद आनंद और मस्ती प्राप्त होते हैं। ऐसा अद्भुत गौरवमयी आनंद हमेशा बहता रहता है। वे ध्वनियो चित्रों रेखाओं नृत्यों और गीतों के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। हजारों वर्ष पहले से पेट के लिए शिकार करना उनका कर्म रहता है लेकिन अब कृषि खेती के साथ पेड़ की पत्तियाँ बुनी जाती हैं। वह फल और जड़ी, बूटियाँ एकत्र करता है। यह सब पारंपरिक व्यवसाय है। यह नहीं बदला है। यही उसका स्वभाव है। यहाँ जंगल का सहारा है। प्रकृति से निकटता है। प्रकृति के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण है। आपस में सहयोग की भावना होती है। वही उसकी सर्वव्यापकता है। जैसे रेगिस्तान में पानी नहीं है लेकिन मिट्टी के बर्तन हैं। नाच, गाने वाले कलाकार हैं। स्वरों की प्रतिध्वनि होती है। जहां मिट्टी और अंगारे चित्रों का माध्यम बनते हैं। जो अद्भुत जीवन की धरोहर है। इसी तरह विभिन्न अनुष्ठान से चित्र शैलियाँ आविर्भाव हो कर जन्म लेतीं है।

जनसंस्कृति की यही खासियत है कि वह अपनी कलाओं को

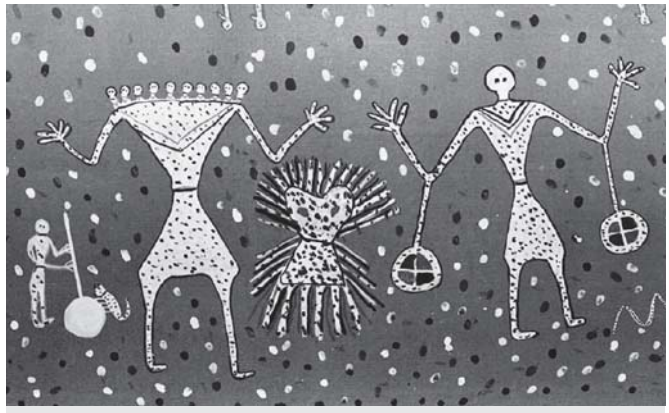

पिथौरा, पेमा फत्या, झाबुआ

बाहरी रूप से निर्देशित नहीं होने देतीं । नि:संदेह इसी से ही हृदय जीवनराग लय, ताल और मस्ती से धड़कता है और एक विशेष रचनाकार बन जाता है। यहाँ से चित्र सर्जन होता हैं। शुरुआत में चित्र मौखिक रूप से अंतरमन में शुरू होते हैं। इसका एक कारण यह है की अधिकांश जनजातियां गीत गाती हैं नृत्य करती हैं और समूहों में काम करती हैं। ये उनकी स्वाभाविक गतिविधियाँ हैं। स्वरों और थापों के आधार पर एक अनूठी लोककथा अस्तित्व में आती है। जो चित्रों में समाहित होकर एक अव्यक्त सौन्दर्य का बोध बन जाती है। यहाँ कूँची सात रंगों या रेखाओं का बहुत कम या कोई महत्व नहीं है लेकिन यह जरूरी नहीं ऐसा भी नहीं है। इस शोध पत्र में हम आदिवासी चित्र शैलियों की चर्चा करेंगे। जो मध्यप्रदेश और गुजरात से जुड़ी है। ये दोनों राज्य भारत के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में स्थित हैं। यहां की आदिवासी संस्कृति में अद्भुत विविधता है। लोकचित्रों की भरमार है। प्राचीन, पौराणिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों वाली चित्र शैलियाँ आदिवासी पहचान और आदिम गौरव की बात करती हैं । हमारी सनातन संस्कृति का एक विशिष्ट दर्शन अद्वैतवाद है। जिसे वेदादि उपनिषद से जन्मा और आदि शंकराचार्य से पुन: प्रस्थापित माना गया है उसका तात्विक चिंतन और दर्शन के साथ आदिवासी चित्रों से संबंध की चर्चा करेंगे । किस प्रकार आदिवासी संस्कृति के चित्र अलौकिक दर्शन को सहज स्पर्श करते है यह भी सोचेंगे। इससे पहले हम अद्वैत दर्शन

और उसके विभिन्न आयामों को संक्षिप्त में देखेंगे ।

अद्वैत का अधिष्ठान: भारतीय संस्कृति में हमेशा से अद्वैत कि गूँज रही है। अद्वैत का अर्थ है निर्भयता और यह देखना कि दुनिया में सब के साथ अपनापन बनाए रखना । सभी मेरे ही है और मेरे जैसे जीव है ऐसी भावना। यह प्रसिद्ध श्लोक पढ़े,

सहनाववस्तु सहनौ भुनक्तु सह वीर्य करवा वहै।
तेजस्वी नावधीतमस्तु मा विद्विषा वहै।

अर्थात इस संसार के सभी मनुष्य साथ में आए साथ में कर्म करे और सर्वत्र दिखाई देनेवाले द्वैतभाव रूपी अंधकार को ज्ञान के प्रकाश के दीप जलाकर अज्ञान दूर करे। अद्वैत का मर्म है कि मेरे जैसा दूसरा भी है । हमारे सुख, दुख का जो अनुभव होता है उसे दूसरों के सुख, दुख जैसा समझना भी अद्वैत है। हम सभी मानवों और पृथ्वी के जीवों कि चिंता करे। सूत्र है वसुधैव कुटुंबकम अर्थात समग्र वसुधा एक परिवार जैसी है। सबके कल्याण कि भावना करना अद्वैत दर्शन है। सभी जातियों में जो विभिन्न कर्म करनेवाले मानव है उनके प्रति सम्यक भाव अद्वैत है। कण, कण में ईश्वरीय चेतना की अनुभूति करना अद्वैत है । यह सभी बात हमारे सनातन धर्म में कही गई है। पाँच तत्व आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु और जल जिसकी चेतना से हमारा अस्तित्व है वह सभी जीवों में भी निराकार रूप में मौजूद है। यह समज और ज्ञान अद्वैत है और इसे आदि शंकराचार्य द्वारा पुन: प्रस्थापित किया गया है। कबीर का निर्गुण दर्शन अद्वैत वाद से ही निर्मित हुआ है। संत रैदास भी अद्वैत मार्ग के राही है। वेदवाक्य है सर्वे सन्तु सुखीन: सर्वे सन्तु निरामया: सब सुखी हों सब स्वस्थ हों। यह मूल्य अद्वैत का मूल ध्येय है। सभी मानवों और पशु, पंखी से प्रेम करना और उनका संरक्षण करना यह अद्वैत है। अद्वैत का निश्कर्ष है. समर्पित भाव अर्थात खो जाना, जिसे हम स्वयं की मृत्यु भी कहते है। जब तक हम अपने अहंकार को मिटा कर सारे जगत को परमात्मा रूप नहीं मानेंगे तब तक हम अद्वैत को नहीं समझ सकते। अद्वैत का आचरण अपने सारे सुखों इच्छाओं और मोह, ममता को त्यागना है और सभी में परमार्थ रूपी चेतना के साथ एकत्व लाना है। यह ज्ञान ही ब्रह्म स्वरूप है। अहं ब्रह्मास्मि को अहम और ज्ञानं ब्रह्मं जैसे सूत्र अद्वैत दर्शन का आधार है। ब्रह्म सचराचर है। इसी से एकात्मवाद उत्पन्न हुआ होगा। शायद अद्वैत दर्शन को समझने के लिए इतना पर्याप्त होगा। हाँ हमारे यहाँ अद्वैत जो कि निर्गुण निराकार है और द्वैत सगुण, साकार ईश्वर कि भी कामना कि गई है जैसे भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते है। अथवा बहु नैतेन कि ज्ञातेन तवाअर्जुन। इन सारे चराचरों में मैं ही व्याप्त हूँ। संसार के सभी जीवों में समाया हुआ हूँ। वास्तव में सगुण, निर्गुण एक सिक्के के दो पहलू है। दोनों एक दूसरे के पूरक है। इस चर्चा के बाद हम अद्वैत दर्शन और हमारी आदिवासी कलाओं और जीवन का दर्शन करेंगे जहां हमेशा अद्वैत का परोक्ष या प्रत्यक्ष निर्वाह हुआ दिखाई देता है ।

जब भाषा का जन्म नहीं हुआ था तब मानव ने छोटी, छोटी लकीरों को खींच कर धूल, मिट्टी, पत्ते तथा शिलाओं पर आसपास में रहे प्राकृतिक तत्वों का अनुकरण कर के चित्र बना शुरू किया होगा। कभी सलामती के लिए गुफ़ाएँ पेड़ शिलाए उपयोग में ली होंगी। जिसे आज हम शैल चित्र गोदना और भित्ति चित्र से पहचानते है। मध्य प्रदेश में भीम बैठिका उदयगिरि और अंजन्ता गुफाओं में शैल

पद्मश्री से सम्मानित भूरी बाई अपने निजानंद में

चित्र पायें जाते है। ध्वनि, प्रकाश, आवाज, संकेत और हावभाव की क्रियाओं से शैल चित्र बने है। यदि आदिवासी चित्रों की विषयवस्तु की बात करें तो यह बहुत व्यापक है। हमारी श्रुति परंपरा कहती है की आदिम मनुष्य बिजली की गड़गड़ाहट में संगीत और ताल को बारिश की बूंदा बांदी की आवाज़ को सुनता था और आग की तेज लपटों को महसूस करता था। आदिवासी लोकचित्रों की रचना में प्राकृतिक संसाधनों जैसे नदियां, झरनों, झीलों, पहाड़ों, जंगल की आग और जानवरों और पक्षियों की आवाज़, पेड़ों और टहनियों से घर्षण से हुई ध्वनि के रूप आदि है। जीवन.व्यवहार में आहार, पहनावा, आभूषण, शिष्टाचार, विश्वास, कृषि, वन, उपवास, उत्सव, मेले, त्योहार और सांस्कृतिक अनुष्ठान, वाद्ययंत्र, नृत्य, चित्रकारी और पौराणिक कथाओं जैसे विभिन्न विषयों को अलग.अलग तरीकों से निर्वाह किया जाता है। जिसे सर्वांग लोकवांगमय के नाम से जाना जाता है।

आदिवासी संस्कृति, प्रकृति पूजक रही है। उनके देवी-देवता बहुधा प्रकृति से हैं। वे सूर्य, चंद्रमा, तारे, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, वन, पहाड़ी, नदी, वृक्ष और नक्षत्र आदि के ऋणी हैं। जिसको वह

सूरज देव, चाँदडियो देव, जल देव, डोंगरदेव लिंगादेव, खत्री, देव, कंसरी देव, बाघ देव, नागदेव, पीठोरा देव, गोंड देव, बड़ा देव, गोंदर्यादेव, बराम देव आदि को अनेक निराकार आकार रूप में मानते है और पूजा अर्चना कहते है। यह सभी देवता श्रद्धा और विश्वास के प्रतीक है। इसलिए उनकी पूजा और आस्था स्वाभाविक रूप से उनके चित्रों और लोकगीतों में घुलमिल जाती है। सर्वहारा चित्र मुख्य रूप से धरती माता की कृतज्ञता, श्रम के गीत-चित्र, त्योहारों के बारे में बनाया जाता है। तदउपरांत दैनंदिन अनुष्ठान विवाह-शादी के प्रसंग पौराणिक गाथाएं जन्म और मृत्यु के प्रसंग के देवी-देवताओं और समुदाय के चित्र भी पाए जाते हैं। जिसे संकेतों में भील पिथौरा, वारली, बैगा और गोंड शैली के चित्र कहा जाता है। चित्र करने वालों में महिला और पुरुष समभागी होतें है। भीलों में कलाकार चितारा अथवा लिखन्दरा से जाने जाते है।

एक मत है की आदिकवि वाल्मीकि ने गन्ना के खेतों में काम करने वाली आदिवासी महिलाओं को रामायण की रचना करने से पहले रामायण गाते हुए सुना था। एक परिकल्पना के अनुसार प्रकृति की पूजा के गीतों और चित्रों की रचना ऋग्वेद की संहिताओ से पहले हो सकती है। लोकगीत गाते हुए। हल चलाते किसान, एक नाविक गीतों की सरसराहट के साथ जीवन नैया पार करता है। जहां एक मजदूर कुदाल से उत्पन्न संगीत पर चिल्लाता है, वहीं एक महिला पत्थर की घंटी पर अनाज पीसती है और लोक-धुन गाती है। इस तरह की लोक कलाओं में लोकचित्र सहज रूप से बनते गए है। जो अव्यक्त आनंद है, सौन्दर्य है, और प्रकृति में व्याप्त परम चेतना है वह कला रूप बनती है । चित्रों में समय रहते गाथा, और आख्यान जुडते गए। कुल मिलाकर विचारों कि अभिव्यक्ति हेतु चित्र, गीत, नृत्य और भाषा बनीं।

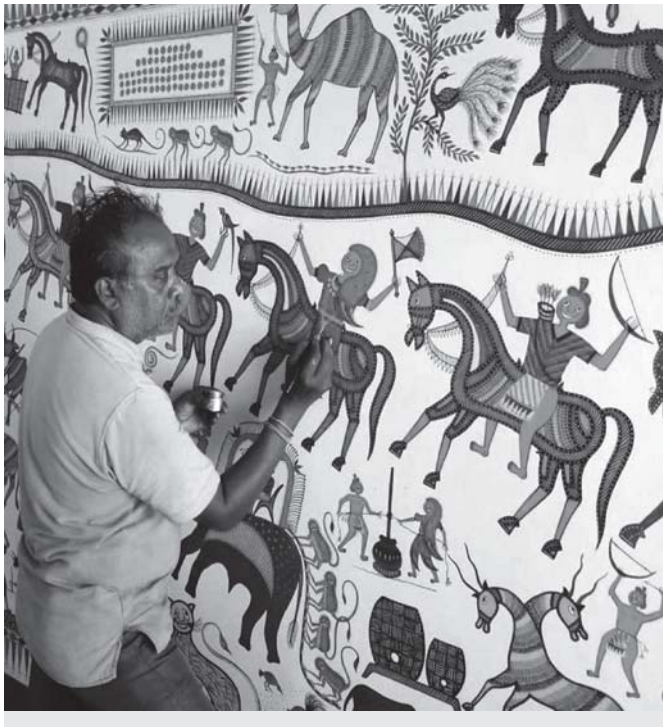

पिथौरा लिखते पद्मश्री से सम्मानित परेश राठवा, छोटा ऊदेपुर

भील संस्कृति में पीठोरा बाबा की पूजा अनुष्ठान होता है। मध्य प्रदेश और गुजरात में पीठोरा शैली मिलती है । गाथा के अनुसार एक तरफ बड़वा झाड के लिए नीम के पत्ते मँगवाता है और अन्य साथी खर खासिया पर खड़-खड़ ध्वनि के साथ पूजा कि विधि आरंभ करता है। ठीक उसी समय लखेरा अपनी कूँची लेकर मिट्टी से लिंपि हुई दीवार पर पिथौरा उकेरता जाता है । जिसमे भीलों कि दुनिया के अनेक रहस्यों को जैसे जीवंत कर देता है। यहाँ प्रकृति के अद्वैत तत्वों के साथ जंगल, डूंगर, पेड़, नदियां, तारे, आदिवासी जीवन का निरूपण होता है। सभी के बीच अलौकिक सायुज्य जुड़ता है। सभी जीव एक दूसरों के सहारे जीवन यापन करते है, प्रेम से रहते है और आनंद का महोत्सव निर्माण होता है। पिथौरा पूजा में एक गीत है जिसमे उस परम चेतना के प्रति समर्पण भाव और चित्रों को पीठी देव जो कि अमूर्त है उसकी प्रार्थना व्यक्त हुई है।

'ये सत्तर देव तन आलू हे पीठी राणो देव ।
ये टिपणा हमार ले ले हे पीठी राणो देव ।
छमा करो सब गलती हे पीठी राणो देव ।
दिया करो हम सब पर हे पीठी राणो देव ।

यह चित्रकारी नहीं पर एक अनुष्ठानिक गाथा है जल के देवता को रिजाने की जल बचाने की ये पूजा अपने प्रकृति में जलनायक को धन्यवाद करने की है। जल और भूमि मूर्त है पर उनके देवता अमूर्त है। प्रकृति के तत्वों को सच्चे साथी देव मानकर आदिवासियों ने साधना की है। लिखंदरा रंग भरता है और बड़वा गाता है। रानी काजल काडया कहीं हाँके हो, काड़यो कुँवर ओय दिन बोले रे, रानी काजल। यहाँ रानी काजल बादलों की रानी, जल के देव मेघी राजा की बेटी हैं। कितनी अद्भुत परिकल्पना है! यह एक सांस्कृतिक अनुष्ठान से आधारित चित्र शैली है। वर्तमान में 2022 में पद्मश्री पुरस्कृत श्री परेश राठवा कहते है पिथौरा देव की चित्र शैली दिव्य चेतना से बात करने की एक सांकेतिक लिपि है जिससे भील समुदाय अपने आराध्य देव से भीलों में शांति रखना विपदा से रक्षा करना और पिथौरा देव सभी को बचाये रहे यही कामना करते है। जो अद्वैत के चिंतन से कतई भिन्न नहीं है ।

श्रीमदभगवद्गीता में कृष्ण अर्जुन को कहते है, हमें कर्म से क्या समझना है। एक अधिकर्म होता है, जिससे हम सत्य का आश्रय लेते है। धर्म का आह्वान करते है और उसके लिए जो भी कार्य करते है वह कर्म है। आदिवासी चित्र शैली हमे उसी कर्म की याद दिलाती है । जो अहेतुक, निष्काम और चिदानंद के लिए होता है। एक सगुण चेतना है, दूसरी निर्गुण चेतना है। चित्रों को उकेरना, उसकी गाथा गाना, आनंदित होकर नृत्य करना आदि कर्म की सगुण क्रियाएं है। लेकिन पिथौरा बनाते वक्त निर्गुण निराकार की तपश्चर्या और प्रकृति तथा पराप्रकृति के अनेक अलौकिक तत्वों की सहज निर्मिती होती है वह निर्गुण है । जल, जंगल, प्राकृतिक सृष्टि और समुदाय को अधिभूत है वह कर्म होते हुए भी अकर्म बन जाता है। जहां आकार की सीमाएं निराकार अद्वैत कहलाती है । जनचित्र इस मायने में अद्वैत अवधारणा से अभिन्न रूप से जुड़े है । हमारे वेदान्त में हिरण्य गर्भ का उल्लेख है।

हिरण्य गर्भः समवर्ततागे्र भूतस्य जातः पतिरेक आसीत।
सदाधार पृथिवी ध्यामूते माँ कस्मै देवाय हविषा विधेन।

अर्थात, वह ईश्वर जो हर गर्भ में निवास करता है, सूर्यादि तेजस्वी तत्वों का जो जगत आधार है और आगे भी रहेगा उसका आधार परमात्मा जगत की उत्पत्ति के पहले भी था। जिसने पृथ्वी, आकाश, सूर्य-चंद्र और तारों का सृजन किया उस देव की हम भक्ति करते है। यह रोचक है की हमारे गोंड चित्रों, वरली, चित्रों, बैगा और भील चित्रों में हिरण्य गर्भ बार-बार आता है। जो अद्वैत दर्शन का ही चित्र फलक है। दार्शनिकों, ज्ञान सर्जकों और भक्तों ने तो किसी सिद्ध सद्गुरु के मार्गदर्शन में ज्ञानप्राप्ति का लक्ष्य हासिल किया होगा किन्तु आदिवासी चितेरों ने अपनी कला के माध्यम से अखंड ब्रह्म का ही दर्शन किया है। यही बात बहुत बाद में शंकराचार्य द्वारा प्रबोधित अनंत ब्रह्म का कलात्मक चिदानंद रूप है। आदिवासी चित्रों से यह समज मिलती है कि सगुण और निर्गुण दोनों ही परमचेतना की खोज के लिए उपलब्ध है। जिसे सामान्य लोक समुदाय ईश्वर, अल्लाह, वाहे गुरु और शिव, शक्ति कहता है वह आदिवासी लोककलाओं में परम आनन्द स्वरूप परिब्रह्म के रूप में मौजूद है।

वेदों में सोलह कलाओं और शिल्प संहिता में चौसठ कलाओं का उल्लेख मिलता है। सोलह कलाओं को देखा जाए तो प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इंद्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक और नाम इसके कई और नाम भी मिलते है। इन कलाओं से परमात्मा या स्रष्टा और ब्रह्म युक्त है जो हमारे आदि चित्रों में अमूर्त या मूर्त बनकर आए है। आचार्य हजारीप्रसाद का यह कथन ध्यानार्ह है, जहां कहीं मनुष्य के चित्त में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है, सौन्दर्य रचना की प्रवृति है, सौन्दर्य के आस्वादन का रस है वहाँ महामाया का यह चिन्मय विलास विद्यमान है। आदिवासी तो आदिकाल से अपनी चित्र सृष्टि के सर्जक है। गोंड चित्र (चित्रकार, मंगरु, उईके) का अवलोकन करे तो यह पाते है कि एक वृक्ष पर सभी जंगली और पालतू, प्राणी एक साथ रहते है। डाली-डाली पर पंखी बैठें है। पेड़ भी जीवंत रूप से उकेरा गया है और प्रकृति कि परम सत्ता मानो एक परिवार कि तरह दिखाई देती है। गोंड चित्र के जनगढ़ सिंह श्याम हो दुर्गा बाई हो रामसिंह उरवेती हो या युवान स्त्री-पुरुष कलाकार हो अपनी चित्र शैली के प्रति उनका सम्मान है, समर्पण है और साधना का ही फल है कि उनको भारत के महा महिम राष्ट्रपति के द्वारा सर्वोच्च पद्म श्री सम्मान मिलता है। पुरस्कार प्राप्ति और प्रचार-प्रसार एक लौकिक उपादान है किन्तु अपनी चित्र शैली से जो सौन्दर्य अनुभूति होना और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का सुख तो वो ही जानते होंगे। क्या यह निर्गुण-निराकार परमात्मा की सहज उपस्थिति नहीं है। आदिवासी लिखंदरा ब्रह्म को नहीं समझते या कोई दार्शनिक चिंतन का प्रतिरूप है यह भी नहीं जानते लेकिन उनकी अनुभूति संतोष के मर्म तक पहुँचती है। सर्जन का पूर्णत्व है और आसपास कि संपदा से उनका अटूट संबंध जुड़ जाता है, जो निर्गुण अद्वैत कि पुष्टि करता है। उनकी चित्र शैली कलाकार के साथ साथ आसपास के समुदाय को भी शांति, गांभीर्य और कलात्मकता प्रदान करती है।

हमारे आदिवासी चित्रों में कल्पना के साथ कहीं व्याकुलता है, प्रकृति से जुदाई का दर्द है फिर भी सौन्दर्य बोध और चिरंतन उपस्थिति का बिगुल है। यहाँ सौन्दर्य की महिमा है तो रूप का प्रादुर्भाव भी है। पद्म श्री भूरी बाई मध्य प्रदेश के पिटोल जो की झाबुआ जिले के छोटे से गाँव से चालीस वर्ष पहले भोपाल मजदूरी के लिए आती है। अपनी रोजमरा की जिंदगी को लकीरों से उकेर कर आज वे भील चित्रकारी की शिखर बन चुकी है । ऐसे ही लाड़ो बाईए दुर्गा बाई, शांति बाई और पेमा फत्या जैसे लिखंदरा ने अपनी चित्र शैली को जिंदा रखा है । वरली चित्रकारी महाराष्ट्र और गुजरात में पायीं जाती है। महेश वारली और कई अन्य कलाकार आज वरली को वैश्विक स्थान दे चुके है । हमने जब भी देखा है यह कलाकार अपनी कलाओं के साथ परम चेतना का एकत्व महसुस करते होंगे। जो केवल आँखों और हाथों का विषय ही नहीं बल्कि पंचतत्वों से संलग्न होता है। यह सौन्दर्य आदिवासी कलाकार को सहृदयता

प्रदान करता है। यहाँ कभी आतंक नहीं है या नक्सलवाद नहीं है, बस कलात्मक जीवनराग बहता रहता है। यहाँ लिखंदरा का रंग संसार के रंगों के साथ बाते करता है जो सौन्दर्य का मूल रस है। यह विदित है कि ध्वनि, आवाज, हावभाव, नृत्य और संकेतों से वरली जैसी विश्व प्रसिद्ध चित्र शैली अपने को मोह लेती है। एक विचार यह भी है कि वेदों की तुलना में चित्र-कथा का प्रचलन काफी प्राचीन माना गया है। इसीलिए आदिवासी चित्रों का माहात्म्य और बढ़ जाता है। आज भील चित्र शैली में अनेक युवा लिखंदरा अपनी परंपराओं का निर्वाह कर रहे है। जिसमे शांता भूरिया सविता बारिया, कामता ताहेड, शरमा, कस्सू बारिया, सीता मेड़ा और रमेश बारिया प्रमुख है तो गोंड चित्रकारी में पद्मश्री दुर्गा बाई के अलावा मोहन श्याम, वेंकटरमन, मंगरु उईके, पद्मश्री रामसिंह उरवेती, छोटी टेकाम, धनैया बाई श्याम आदि प्रमुख नाम है जो अपनी अपनी विशिष्ट चित्र शैली को आगे बढ़ा रहे है।

आदिवासी चित्र शैलीयां और अद्वैत पर विगतपूर्ण चर्चा के बाद हम कुछ निष्कर्ष की बात करते है जो आवश्यक है।

- आदिवासी चित्र कलाएं अंतस: और बाहर की साथ में यात्रा करती है। जो छवि मूलक बहुलता से जुड़ी हुई है।
- आदिवासी चित्रों में दृश्य विधान द्रश्य के पार और अलौकिक स्पंदन का अनुभव कराता है, जो चित्रों कि आत्मा बन जाता है। एक प्रकार का उद्दात भाव और सौन्दर्य बोध निष्पन्न होता है।
- आदिवासी चित्र शैली में अपना समाज, सृष्टि, प्रकृति के तत्व, आकाश, सूर्य, चंद्र, तारें और अन्य प्राणी-पशु, पंखी मूलभूत रूप से आते है लेकिन वह सांकेतिक रूप में और अमूर्त अर्थ को लिए आते है।
- एकोहम बहुस्याम, एक से अनेक की अन्त: संवेदना उनके केन्द्र में है। चित्रों का चेतो विस्तार सर्वमय बन कर दिखता है।
- लोकचित्रों में आदिवासी संपदा उभरकर आती है जैसे इतिहास, परंपरा, साधना, मंत्र, तंत्र, ध्वनियाँ, गाथाएं, व्रत और अपनी पहचान विस्तृत होती है।
- चित्रित कलाएं ऊर्ध्वरोहण करती है जिसमे असीम का दर्शन है, जो कभी मूर्त तो कभी अमूर्त लगती है। नव्य रूपों का प्रतिवादन होता है ।
- अपनी संस्कृति का विखंडन, बाहुल्य और लगाव के निरूपण के साथ राष्ट्रीयता की भावना भी चित्रों में दिखाई देती है जो अद्वैत का दर्शन कराती है ।
- आदिवासी चित्रों में नर-नारी की अभिन्नता एक अपूर्व सामूहिक विभावना, भौगोलिक आकारों से ऐक्य और समानता की दुनिया सहजता से दिखती है। रंग संगति में भी प्रकृति के अनुकूल और विरोधी रंग उपयोग में लेते है।
- चित्र संयोजन के साथ ज्ञान, रस, विचार प्रक्रिया भी चलती रहती है। साथ ही जीवंत चेतना का बिम्ब बार-बार दिखता है।
- आदिवासी चित्रों में सद्रश्यता का सिद्धांत भी कार्य करता है, क्यूंकि चित्रों में जो जैसा है वैसा नहीं है। सांकेतिक रूप है जिसे प्रतीकों से रचा गया है। सुंदरता, रमणीयता-लावण्य और आत्म-आनन्द बंधे रहते है। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा है। मुझे चित्र की हर रेखाओं में परमात्मा का दर्शन होता है। यह उक्ति आदिवासी चित्रों के अमूर्त संसार को यथा बयान करती है।

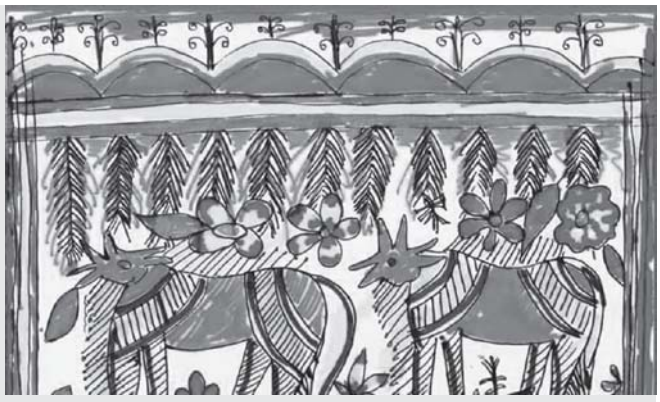

भील चित्र, लेखक

(लेखक एनसीईआरटी के क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल में गुजराती भाषा के प्राध्यापक है। आपने आदिवासी लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य पर लगभग पंद्रह शोध पत्र और दो पुस्तकें लिखीं है तथा भारतीय भाषाओं में लोकसाहित्य पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की है। पश्चिम भारत की अनेक कलाओं और हस्त कलाओं पर स्रोत केन्द्र के अन्तर्गत डिजिटल दस्तावेज का कार्य कर रहें है। आपकी पाँच लघु फिल्मों को राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार प्राप्त हुए है। आप लेखक कवि और विवेचक के रूप में गुजराती एवं हिन्दी में सक्रिय है।

-लेखक - सहअध्यापक,
भाषा एवं सामाजिक शिक्षा विभाग,
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, श्यामला हिल्स, भोपाल, मो.9826815720

■

आलेख

जनजातीय जीवन और प्रकृति का अद्वैत

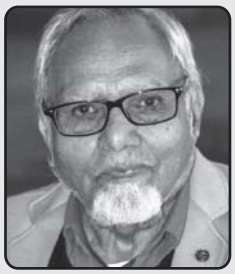

वसन्त निरगुणे

जनजाति जीवन की शुरूआत पृथ्वी पर जीवन के आगमन के साथ हुई है। पृथ्वी के बनने की अनेक कहानियाँ जनजाति मिथकों में मिलती हैं। सारी पृथ्वी पर उसके बनने की कथाएँ प्रचलित हैं। मध्यप्रदेश की जनजातियों में पृथ्वी के प्रारम्भ की अनेक कथाएँ कही जाती हैं, जिनका स्वरूप वाचिक है। एक बैगा कथा के अनुसार पृथ्वी एक रजस्वला लड़की के पहले रक्त से बनी हैं, इसलिए बैगा आज तक पृथ्वी को पुत्री मानते हैं और उसकी छाती पर हल नही चलाते। उस रजस्वला लड़की के शरीर से निकलते रक्त को बैगाओं ने पानी पर थपथपाया, जिससे वह कड़क होकर सुखता गया और जल पर पृथ्वी तैरने लगी। (पूरी कथा देखिए- लेखक का बैगा मोनो ग्राफ- 1986) आज बैगा भूमि पूजक 'भूमिया' कहलाते हैं। इस कहानी से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति (फर्टिलाइजेशन) का संकेत मिलता हैं। जिस प्रकार एक स्त्री राजस्वला होने पर मातृत्व धारण करने की क्षमता में आ जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी के गर्भ में उर्वरा होने की अपार शक्ति समायी है- का संकेत है। दूसरा पृथ्वी का जीव और प्रकृति से रक्त या जीवन रस से सम्बन्ध है। पृथ्वी पर जो हवा-पानी वनस्पति, आदि पैदा होती हैं, उसी के खाने से मनुष्य क्या जीवमात्र के तन में रक्त बनता हैं, जो उसकी नसों में दौड़ता हैं, जिससे मनुष्य जीवित कहलाता हैं, शरीर तंत्र में यदि सबसे बड़ा संचार का जाल बिछा है तो वह रक्त संचार का जाल है। त्वचा की बारीक से बारीक धमनियों तक रक्त के संचार का जाल होता हैं। यह कोई नई बात नहीं, जनजातियाँ इसे बहुत पहले जीवन के आरंभ में ही समझ गई थी। यह रक्त आगे चलकर गोत्र (क्लोन) में बदलता है, जो प्रकृति और जीवों के सम्मान में प्रचलित और पूजित होता हैं। पूरी प्रकृति इस रूप में हमारे शरीर में दौड़ती रहती हैं। जिसे बाद में 'संचार तंत्र' के नाम से अभिहित किया है। इस संचार को सुनने, बोलने और लिखने पढ़ने तक जीवन में उतारा ताज्जूब यह है कि जनजातिजन आज तक जीवन और प्रकृति जैसे बाहरी शब्दों से परिचित ही नहीं हैं। उनका होना ही सब कुछ हैं। जीवन जीना नहीं, केवल स्त्री पुरूष को जानते हैं। जन्म और मृत्यु को जानते हैं। सन्तति उत्पन्न करना जानते हैं। भूख प्यास मिटाना जानते हैं। अन्न उगाना जानतें हैं। उसे खाना जानतें हैं। वनस्पति के फल और बीजों को पहचानते हैं। धरती और आकाश को जानते हैं। सूर्य और चाँद से उनकी पहचान हैं। मौसमों को वह जानते हैं। नदी, पहाड़, हवा, आँधी, पानी, आग, धूप उसके घर के आसपास हैं। पेड़-पौधे उसके मित्र हैं- उनसे रोज बतियाते हैं। पशु-पक्षी उसके सहचर हैं। देवी-देवता उनके साथ रहते हैं। हम इसे आदिवासियों का जीवन कह सकतें हैं। वे जीवन को जीवन नहीं 'मनख' कहते हैं। अथवा मानुस जिन्दगी का उपहार कह देते हैं। जीवन और प्रकृति एकमेक है। अद्वैत है।

जीवन का यथार्थ

जनजातिजन भले ही जीवन शब्द और उसके अर्थ को नहीं जानते हैं, लेकिन जीवन वे भरपूर जीते हैं। आदिवासी जीवन परिभाषा से परे हैं। यह यथार्थ से भी मुक्त हैं, ऊपर हैं। आदिवासियों के जीवन को परिभाषा में बाँधने जाओंगे या यथार्थ को ढूँढते फिरोगें तो हाथ कुछ और ही लगेगा। मेरी दृष्टि में आँखों से दिखने वाला जनजातीय भौतिक जीवन बहुत कुछ भिन्न हैं। जनजातियाँ मिथकों में जीती हैं। मन की दुनिया में जीती हैं, इसीलिए उनका जीवन आज भी हमसे अलग लगता हैं। किसी भी बोली-भाषा में उनके जीने के अन्दाज का उनकी सांसों के हिसाब का नाम नहीं हैं। जैसे लिखे - पढ़े हम लोग इन सांसों का जीवन या जिन्दगी नाम देते हैं। सांसों के अमूर्त को हम मूर्त रूप देते हैं। जिसे यथार्थ का जामा देते हैं। पर जनजातियों के लिये जीवन और यथार्थ अलग नहीं हैं। ये जिन्दगीनामा नही रचते हैं। जीवन रचते हैं और जीते हैं।

एक वृद्ध बैगा महिला अंधियारो बाई से चालीस साल पहले मैंने जब उनके गाँव धुरकुटा में पूछा था-माई ! जीवन का क्या अर्थ हैं ? उसने तपाक से जवाब दिया था-'हम आदिवासी है, जंगल के वासी। हम जीवन को नहीं जानते। जीना जानते हैं। हम जीते हैं तो ये जगल पहाड़ दिखाई देते हैं। यह सुनकर उस समय दंग रह गया था। माई ने कितनी सुगमता से उसके आदिवासी होने का स्वाभिमान बता दिया था। साथ ही जीवन और प्रकृति का अद्वैत भी बता दिया था।

इतना पढ़ने-लिखने के बाद भी जो अभेद नहीं समझ पाया था। जिसे हम जीवन कहते है, उसे हम 'होना' जिन्दगी भर नहीं समझ पाते। कैसी बेबाक अभिव्यक्ति हैं ? जीने का जिस जीवन को वे 'जीना' कहते हैं, वास्तव में वह जीना मनुष्य से ऊपर कतई नहीं हैं। जीवन शब्द आदिवासियों के लिये आयातीत हैं। जिन्दगी शब्द को भी उन्होंने बहुत बाद में लोक जीवन से ग्रहण किया गया हैं। 'जीवन' और 'जिन्दगी' दोनों जनजातियों के जीने से ही निकले शब्द हैं। 'जीना' जन्म और मृत्यु के बीच का वह बहुमुल्य समय है, जिसमें मनुष्य अनुभव से गुजरता हैं। जिसमें सुख-दुख से लगाकर लौकिक एवं अलौकिक आभास भी शामिल होते हैं। जो भाषा से परे होते हैं। जिन्हें केवल गूंगे के गुड़ सा महसूस ही किया जा सकता हैं। मुझे जहाँ तक आदिवासियों के सानिध्य में अनुभूति हुई, उनका जीवन अतीत और वर्तमान में आज भी वैसा ही हैं। भविष्य में भी जनजातियों के जीने के ये चिन्ह बचे रहेंगे। ये तीनों कालों को एक साथ जीतें हैं। ऊपर से आदिवासी कितने भी बदल सकते हैं।, लेकिन भीतर से वे वही बने रहते हैं, यही मूल है। जनजातियों का एक मजबूत तथ्य यह हैं कि कोई भी आदिवासी अपने जीने या जीवन को परिभाषित करने की कोशिश नहीं करता। इसलिए वह भाषा के जंजाल में भी नहीं उलझता। यही कारण हैं कि आदिवासी के पास 'शब्द सम्पदा' की बहुत थोड़ी सी पूँजी होती हैं, उसी से वह वाचिक रूप से जीवन भर काम चला लेता हैं। यही दायित्व आगे आने वाली पीढ़ियों को वाचिकरूप सौंपता चलता है। एक और रहस्यपूर्ण बात मैंने आदिवासियों के जीने में देखी, वह यह कि अपने आपको शब्दों में नहीं बाँधना चाहते। वे शब्द के रहते हुए भी सदैव शब्द से बाहर रहते हैं। यह करिश्मा उन्हें सहज रूप से प्राप्त है। जैसे वे प्रकृति में भी है और प्रकृति से बहार भी हैं। शायद आदिवासियों ने यह गुण प्रकृति से ही लिया हैं। यही कारण है कि आदिवासियों और प्रकृति में एक तादारम्य है, एक अद्वैत है।

जीने की राह

आदिम मनुष्य ने अपने जीने की राह स्वयं ने बताई। इसे सिवाय इसके सामने कोई दूसरा चारा भी नहीं था। जो सामने है, वही उसका यथार्थ था। संभवतया इस पृथ्वी पर पहली बार आँखें खोली होगी, तब उसके सम्मुख जंगल पहाड़ नदी-नाले, पेड़-पौधे, वनस्पति, धरती-आकाश, सूर्य-चाँद-और नक्षत्र आदि दिखाई दिये होंगे। थलचर के साथ नभचर और जलचर दिखाई दिये होंगे पृथ्वी पर प्रकृति मनुष्य से बहुत पुरानी है। पुरूष के साथ एक देहधारी स्त्री भी रही होगी। भूख लगने पर पेड़-पौधों के पत्ते-फूल और फल खा लिये होंगे। प्यास लगने पर नदी-नाले झरने पर जाकर अपनी प्यास बुझा ली होगी। पशु-पक्षियों को बच्चे पैदा करते देख खुद भी बच्चे पैदा करने लगे होंगे। इसके कई साक्ष्य जनजाति मिथकों में मिल जाते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे मनुष्य में जीने की चाह पैदा हुई।

जीने की आवश्यकता

भूख-प्यास-नींद मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। यही जीने की अनिवार्य शर्ते भी हैं। मनुष्य को प्रारम्भ में जीने की जी तोड़ कोशिश की आवश्यकता थी। इसलिये उसने जीने की हर संभव चेष्ठा की। बीहड़ जगंल के कष्ट सहें। जगंली जानवरों के उत्पात सहें। सघन वनों में सरल राह बनाई। ऋतुओं के ताप पूरित वर्षा के झोंके सहे। प्रारंभ में पेड़ों के पत्ते और छाया ही उसका आश्रय बनी। पहाड़, चटट्ानों की कंदराएँ ओट बनी, फिर गुफाएँ उसके सुकून भरे ठिकाने बने। जब जीवन में थोड़ी स्थिरता आई। ठहराव आया। तब पति-पत्नी से कुनबा बढ़ा। पशु-पक्षियों का शिकार किया। कच्चा मांस खाया। जंगल की किसी भी वनोपज फल-फूल पत्तियों से लगाकर जड़ी-बुटियाँ तक को मनुष्य खाने से नहीं चूका। उसे स्वाद के खटटे-मीठे, तीखे कड़वे कसैले अनुभव हुए। इन अनुभव के आनंद के उसने जश्न मनाये। नाचा-कूदा। गुफाओं में चित्र बनाएँ। मन की उड़ानों की रेखाएँ खींची। संभवतया आदिम मनुष्य के जीने की राह इसी तरह प्रशस्त होती चली गई। इसमें प्रकृति के हर हस्तक्षेप ने उसे आगे बढ़ने का हौसला दिया। उसकी अनुभूति का संचय बढ़ता गया और ज्ञान के समझ-झरोखें खुलते गये टंगिया-कुल्हाड़ी और आग ने उसे जीने के नये आयाम दिये। कुल्हाड़ी से जंगल काटकर उसने खेती करना सीखा। निवास के लिए घर बनाये। जंगल-पहाड़ों पर बस्तियाँ बनाई। परिवार बसाये। ऋतु और काल का बोध हुआ। नदियों का महत्व समझ आया। पहली बार कृषि संस्कृति की शुरूआत हुई। धरती पर पहली बार हल-चला धरती ने पहली बार अपनी छाती को चीरकर उसमें संचित खनिजों को दोनों हाथों से मनुष्य के लिये लुटाया। मनुष्य ने धरती में खाने योग्य बीज डाले। मेघों ने उसे सींचा। बीज अंकुरित हुए। प्रकृति मुस्कराई और एक नई सामूहिक संस्कृति कि शुरूवात हुई। जिसमें आदिम मनुष्य के आदिकालीन अनुभव भी शामिल थे।

परिवार की अवधारणा

जीवन परिवार की इकाई में बंध गया तो कई परिवारों ने साथ में निवास करना चालू किया। सुख-दुख में एक-दूसरे की मदद करने की भावना पनपी। इस तरह से सामुदायिकता और सहअस्तित्व की नीव पड़ी। एक-दूसरे के बिना जीना दुर्भर हुआ। तब 'समाज' का संज्ञान आया।

यह सर्वमान्य सच है कि मनुष्य को अन्य जीवों से मिले

नैसर्गिक ज्ञान से कही अधिक विकसित मस्तिष्क मिला। जिसे विवेक का नाम दिया जिसका अर्थ हुआ मनुष्य आगे-पीछे के परिणामों की निष्पत्ति को सोच सकता था। समझ सकता था। जो मेधा उसे अन्य प्राणियों से अलग शिखर पर बैठाती है। एक बैगा मिथक से यह बात समझ में आ सकती हैं। यह कथा पृथ्वी के निर्माण की सबसे पहली कहानियों में एक है, जिसमें मनुष्य के विवेक, प्रतिभा अथवा मेधा (स्कील skill)की प्रारंभ में ही जरूरत महसूस हुई। कथा है- 'नागा बैगा ने जल पर पृथ्वी तो बना दी थी लेकिन वह बहुत हिल-डुल रही थी, स्थिर नही हो पा रहीं थी। नागा बैगा और नागा बैगिन परेशान हो गये। अब क्या करें ? नागा बैगा ने एक आदमी बनाया, जिसका नाम अगरिया रखा। वह लोहकार था। वह लोहा, पत्थर को पहचानता था और वह लौहा बनाना जानता था। (इस पहली कथा में 'लोहयुग' के प्रारंभिक संकेत भी छिपे दिखाई देते हैं।) नागा बैगा ने उससे कहा-तुम लोहे की चार कीले बनाओं। नागा बैगा ने उसे सारे औजार दिये। भट्टी दी। तब पहले अगरिया ने पत्थर से लोहा बनाया और चार कीलें बनाई, उन्हें हिलती पृथ्वी के चार कोनों पर ठोक दी। तब से पृथ्वी मनुष्य के रहने लायक स्थिर हों गई। कहते है ये तब ही से चारों कीलें पृथ्वी की चार दिशाएँ गिनी गई। संभवत: 'दिक' के साथ 'काल' का बोध भी यहीं से शुरू हुआ। यह मिथक बहुत से संकेत करता हैं। मनुष्य की अस्मिता को भी रेखांकित करता हैं। भगवान नागा बैगा मनुष्य तो बता सकता था, ऐसी शक्ति उसके पास थी, लेकिन लोहे बनाने की कला (skill) को मनुष्य ही जानता था, इसलिए नागा बैगा को मनुष्य बनाने की आवश्यकता पड़ी। पृथ्वी पर सब जीवों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है इसकी घोषणा भी मिथक करता हैं। उसके बिना कोई सृजन अधूरा ही हैं। इससे मनुष्य की न केवल महत्ता सिद्ध हुई, बल्कि उसके जीवित रहने के माईनें भी स्पष्ठ हुए। अकेले सृष्टि कर्ता भगवान यह संसार नहीं चला सकता। उसे आदमी की जरूरत थी। आदिम आदमी ही वह 'पुरुष तत्व' था जो मनुष्य बीज के रूप में संरक्षित था। उसे बचाये रखने की तजबीज में 'जीने' का क्रम निश्चित हुआ। उसे ही जीवन की संज्ञा हमारे पूज्य मनीषियों ने दी। पिता के पश्चात् पुत्र घर परिवार का दायित्व संभालने लगा। बस यहीं से परिवार की एक 'इकाई' की तरह नीव बनी। यह बात यहाँ कदापि नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य को महत्वपूर्ण बनाने में एक स्त्री की भूमिका प्रारंभ से रही हैं। इसका सबसे बड़ा कारण स्त्री की 'बीज' को नैसर्गिक रूप से धारण कर पल्लवित करने की आधार क्षमता हैं। जिसे बाद में मातृत्व शक्ति के रूप में पहचाना गया। जो केवल 'मादा' को प्राप्त हैं। वह पुरूष बीज के सहारे अपने जैसी सर्जना कर सकती है, इसीलिये प्रारंभ में एक स्त्री कुटुम्ब कबीलाई युग में परिवार की मुखिया हुआ करती थी। समाज में उसी के बनाये गये नियम-कानून पालन किये जाते थे।

कृषि युग में मनुष्य कठोर परिश्रम के कारण घर-परिवार और समाज का 'मुखिया' गौटिया, पटेल,सरपंच आदि बनता चला गया। स्त्री घर की साज-संवार में लग गई। पुरूष ने अपने हाथ में हल की मूठ संभाल ली। तब से सृष्टि का रूप बदलता गया। सृष्टि के केन्द्र में पुरूष समाता चला गया। जीने के अर्थ बदले। जीवन विकास की गति तेज हुई। ज्ञान और समाजविज्ञान के नये द्वार खुले। आदिम चेतना से मनुष्य ने एक नई लोक चेतना में करवट ली और लोक संस्कृति का सुत्रपात हुआ।

जाति-समाज

बैगा मिथ के अनुसार एक तुम्बे से पहले बैगा और बाद में गोड़ निकला। इस प्रकार बैगा और गोंड जाति का प्रादुर्भाव हुआ। जातियों से समाज बना। समाज में कई जातियो का समावेश होता हैं। एक जाति को भी समाज ही गिना जा सकता हैं। जब काम के आधार पर जातियाँ बनी, तब एक बस्ती में किसान, मजदूरों के साथ नाई, कुम्हार, धोबी, लोहार,सुतार (काष्ठशिल्पी) बुनकर, तेली आदि गाँव की ईकाई बनकर उभरे इन लोगों के बिना गाँव के बसाहट की कल्पना भी नहीं कर सकते। आज भी गाँव अथवा शहर की स्थापना में इन शिल्पजीवियों का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं।

गोत्र समाज

परिवार गोत्र की देन हैं और परिवार समूह से समाज अैर गांव का हैं। समुदाय हैं। एक जाति का समुदाय और कई जातियों का समूह समाज कहलाने लगता हैं। एक कुटुम्ब गोत्र से बंधा समूह होता हैं। जो भाई-बंध कहलाते हैं। गोत्र से रक्त के रिश्ते कायम होते हैं। एक समगोत्री लोग आपस में भाई-भाई होते हैं। समगोत्री विवाह प्राय: वर्जित होते हैं। जाति रिश्तों से बनती हैं। रिश्ते आपस दारी से प्रगट होते हैं। जातीय रिश्ते रक्त से निर्मित होते हैं। बिरादरी और गैर बिरादरी के रिश्ते सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक सदस्यों से बनते हैं। राष्ट्र के रिश्ते देश भक्ति से बनते हैं। जीवन की यात्रा में आदिम मनुष्य को इन पहाड़ो को पार करना पड़ा होगा। तभी तो आज की शब्द सम्पदा तक मनुष्य की यह लोकव्यापी कथा पहुँची।

बोली-भाषा

बोली-भाषा आदि काल का मनुष्य जब इन गलियों के अनुभव से पहली बार गुजरा होगा, तब उसकी अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त शब्दों की आवश्यकता हुई होगी और उसकी मेघा ने

उपयुक्त शब्द को गढ़ने का काम किया होगा। परिणाम स्वरूप बोली, भाषा का शब्द स्वरूप बनता चला गया होगा। आज हजारों बोलियों और भाषाओं के पास दुर्लभ से दुर्लभ अभिव्यक्ति के लिये महीन से महीन शब्द उपलब्ध हैं। जरूरत पड़ने पर पड़ोस की लोकप्रिय अन्य भाषाओं के शब्दों का लेनदेन भाषा संसार में प्रारंभ से ही चल रहा है। इससे बोली–भाषा की उदारता का स्वभाविक लोकतंत्र भी दिखाई दे जाता हैं। कोई भी बोली या भाषा बड़ी या छोटी नहीं होती हैं। बल्कि अपनी–अपनी आंचलिकता में हर बोली भाषा में सर्वथा मौलिक शब्दों को गढ़ने की शक्ति होती हैं। नित नयें शब्द गढ़ने की प्रक्रिया की मूल जड़े समाज की वाचिक परम्परा में ही होती हैं। और यह प्रक्रिया भाषा के गर्भ में निरंतर घटित होती रहती हैं। बोली भाषा के सम्बन्ध में जनजातियों ने इस बात को भाषा के जन्म के समय से ही अच्छी तरह से समझ लिया था।

जीने के लिये बोली–भाषा मनुष्य की क्रान्तिकारी खोज कही जा सकती हैं। बोली या भाषा के आने से मनुष्य अपने मन मस्तिष्क के सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार व्यक्त कर सकता हैं। इस रूप में बोली भाषा मनुष्य के लिऐ वरदान सिद्ध हुई हैं। अतीन्द्रीय भावों तक भाषा पहुँच सकती हैं। जनजातियों के तंत्र–मंत्र की अमूर्त भाषा इसका उदारहरण हो सकती हैं। संवेदना और सौन्दर्य बोध के लिये बोली–भाषा मनुष्य की सबसे बड़ी सहायक है।

संकेत भाषा का मूल हैं

आदिमानव पहले अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करने के लिये संकेत का प्रयोग करता था। संकेत कब शब्द के रूप में प्रकट हुआ, उस समय और मुहूर्त की कालगणना मुश्किल है, पर इतना जरूर है कि प्रकृति अपने विराट रूप में मनुष्य में समा गई होगी, तब ही बोली ने आकार लिया होगा। ध्वनि में अर्थ मिल गया होगा तब ही शब्दार्थ फूटा होगा। प्रकृति और पुरूष का मिलन हुआ होगा। तब वह क्षण मनुष्य सभ्यता के लिये सबसे मूल्यवान रहा होगा। जब मनुष्य को संप्रेषण के 'वाक्' का माध्यम मिला। वाक् से 'बोलने की कला' का विकास हुआ। तरह–तरह की आवाज निकालने की शक्ति मनुष्य के कण्ठ में पहले से मौजूद थी। सबसे बड़ी शक्ति उसके पास मस्तिष्क में विचारने की थी, जिसने उसे जिज्ञासु बनाया। कार्य के पीछे के कारण को जानने की तलब ही उसे 'ज्ञान' लहरों के समीप ले गई। और वह बोली–भाषा के सहारे ज्ञान–सरोवर में डुबकी लगाने लगा। धीरे–धीरे उसके आसपास ज्ञान की अनेक सरणियाँ खुलती चली गई। इस तरह से उसके अनुभव की पूँजी बढ़ती गई। मनुष्य का यही अनुभव एक दिन 'विज्ञान' की पंक्ति में बैठ गया। जिसमें केवल और केवल जीवन और प्रकृति के रहस्यों की पहली व्याख्याएँ हैं।

प्रकृति

जीवन को रचने में प्रकृति ने जितनी उदारता से मनुष्य की सहायता की, शायद ही कोई दूसरा तत्व हमें दिखाई देता है। जीवन की हर गतिविधि में प्रकृति का सक्रिय हाथ है। प्रकृति के पाँचों तत्व भूमि, जल, वायु, प्रकाश और आकाश ने मनुष्य के भीतर और (निर्व्याज) बाहर की सृष्टि को संचालित करने में पहली भूमिका निभाई। आदिम मनुष्य के रोम–रोम मे प्रकृति बस गई। तब उसने उसकी पूजा का उपक्रम किया। मनुष्य के भीतर और बाहर उसे कोई 'दिव्य शक्ति' का एहसास हुआ। जिसे उसने रोम–रोम में 'राम' (आदि बीज) आत्मा–परमात्मा, भगवान, बड़ा–बुढ़ा, और महादेव का नाम दिया। यहाँ जिस मनुष्य के बारे में लिखा जा रहा हैं। वह उस प्रारम्भिक आदि मनुष्य की कहानी हैं। जो पहली बार हर चीज के रूप रंग रस, गंध, स्पर्श, स्वभाव, गुण, दोष, प्रभाव से गुजर रहा था। और वस्तुओं के बारे में उसकी अवधारणा को पक्की कर रहा था। उसके सामने पदार्थ का अर्थ खुलता जा रहा था। उसके अभिज्ञान का संसार विकसित और विस्तृत हो रहा था। वस्तुओं के नामकरण की प्रक्रि या सुनिश्चित होती जा रही थी। भाषा में अभिप्राय, विशेषण, अलंकार, प्रतीक प्रकट हो रहे थे। कर्म और ज्ञान में कोई अन्तर नहीं रह गया था। अनुभव संज्ञान बनता जा रहा था। संचार (comunication) दायरा बढ़ता जा रहा था। शिल्प और वास्तु का निर्धारण हो रहा था। कहने का मतलब संस्कृति का प्रारंभिक रूप गढ़ा जा रहा था। एक साथ मनुष्य कई नये–नये अनुभवों से गुजर रहा था। सामुदायिकता की सृजनात्मक पहल हो रही थी। बाहरी प्रकृति को अपने भीतर अनुभव कर रहा था, उसे ज्ञात हो रहा था। उसके भीतर तो वही प्रकृति है, जो नियति से संचालित हो रही है। उससे अलग कुछ भी नही है। वह ऋतुओं के आवर्तों को पहचान रहा था। धरती के परिवेश की अनेको छवियों को अपने में सहेज रहा था। उसके अनंत संस्तरों को समझ रहा था। उसके आनंद आस्वादों और हस्तक्षेपों में अपने आपको विगलित कर रहा था। और उसमें अपनी प्रतिभा मेधा और प्रज्ञा को तेज कर रहा था। इन सबको वह आदि मानव इन्हें 'प्रथम सृजन' की तरह हो रहा था। और जीवन सौन्दर्य को सृजित कर रहा था। जीवन प्रकृति की लयबद्धता में बंधता जा रहा था। मनुष्य प्रकृति का साधक बन गया था। प्रकृति भी और किसके लिये प्रसरित थी। सब जीवों के लिये खासकर मनुष्य उसकी व्याख्या कर सकता था। उसकी तह तक जा सकता था, उसकी उपयोगिता को अपने लिये सुनिश्चित कर सकता था। इसका निकष यही निकला कि प्रकृति और जीवन एकमेक हैं।

प्रकृति बनाम संस्कृति

जीवन और प्रकृति की लयकारिता से परम्परा का जन्म हुआ। परम्परा कोई एक दिन में प्रकट नहीं हुई। उसके बनने में सदियाँ लगी हो सकती हैं। पहले परिवार एक परम्परा बना। प्रकृति पुरूष नजदीक आये। जिससे संतति बढ़ी और परिश्रम का आकार बना। जीवन में इसकी एक परम्परा बन गई। परिवार में अनेक संस्कारों को जगह मिली। जन्म से पूर्व और मृत्यु के उपरान्त तक संस्कारों का ताना-बाना बनता चला गया। जीवन एक परम्परा का नाम हो गया। प्रथा, परम्परा, रीति, रिवाज, संस्कार मिलकर कब संस्कृति का रूप धारण करती चली गई और मनुष्य के चेतना का अटूट हिस्सा बन गई, समय के पास कोई निश्चित तिथि नहीं है। पर इतना जरूर हैं संस्कृति की महीन चादर मनुष्य बुनता और ओढ़ता चला गया। प्रकृति धरती पर संस्कृति के रूप में मनुष्य जीवन का पर्याय बन गई। प्रकृति जीवन और संस्कृति के त्रिकोण में आदिम मनुष्य का समय समाता चला गया। जनजातियों की पूरी संस्कृति प्रकृति परम्परा के अनुभव का सार है। जंगल जीवन के स्मृतियों से गढ़ा गया एक प्राकृतिक पुल हैं। जीवन और प्रकृति को जोड़ती हैं। और समय की जीवन्त नदी निरन्तर बहती है।

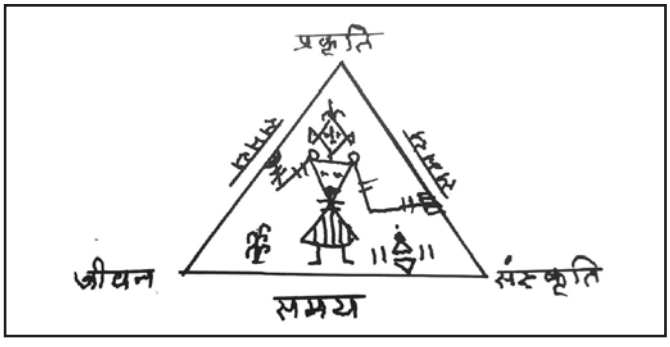

जंगल जीवन

आदिम मनुष्य का जीवन जंगल की विरासत रही है। आज भी दुनिया की कुल आबादी में आधा प्रतिशत से अधिक जनजातियों की आबादी हैं। मध्यप्रदेश में तो जनजातियों का 21 प्रतिशत है। मध्यप्रदेश को इसीलिये 'जनजाति प्रदेश' कहा जाता हैं। यहाँ 43 जनजातियों का निवास हैं, जो प्राय: वन-प्रान्तरों जंगलों में रहती हैं। प्रदेश में 89 आदिवासी खंड (Tribal Blocks) हैं। कहने का तात्पर्य यह हैं कि मध्यप्रदेश के आदिवासियों का जंगल-जीवन से आज भी अटूट रिश्ता हैं। प्रकृति के निकट जनजातियाँ आज भी खुश रहती हैं। वे लोग अपनी आवश्यकता की हर वस्तु जंगल यानी प्रकृति से लेते हैं। केवल, तेल, नमक, शक्कर, जैसी चीजें गाँव, कस्बे और शहर से लेती हैं। जनजातियाँ जंगल में उगे फलदार नैसर्गिक पेड़-पौधो से वनोपज इकट्ठा करती हैं और निकट गाँव शहर के हाट-बाजारों में बेच देते हैं। जिससे उनकी आजीविका भी चलती हैं। अधिकाश: जनजातियों का आर्थिक आधार भी वनोपज ही हैं। पर सरकारी प्रतिबंध की तलवारें उनके सिर पर हमेशा लटकी रही हैं। आदिवासी अपने पारंपरिक संज्ञान के आधार पर जंगल की दुर्लभ जड़ी-बूटियों को पहचानते हैं। संकलित करना और उनका वैद्यकी उपयोग करना भी जानते हैं। उनके पास जड़ी-बूटीयों के संकलन का पूरा पारंपरिक विज्ञान है। कृषि में अन्न उपजाने का प्रभूत अनुभव आदिम जनजातियों के पास है। उतना आज की आधुनिक वैज्ञानिक पीढ़ी को भी नहीं हो सकता। पर उनके उस अनुभव का पूरा लाभ जनजातियों को किसी समय नहीं मिल पाया है। गाँव के छुटभैये दलाल उनके गाढ़े परिश्रम का फल ओने-पोने भाव में खीचतें हैं। मैने स्वयं कई जनजातियों के हाट-बाजारों में आदिवासियों के सिर से जबरन वनोपज और अनाज की पोटलियाँ खीचते हुए पल्ली बिछाकर क्रय करने वाले गाँव के उन व्यापारियों को देखा है। आज भी स्थिति आदिवासी गाँवों में सुधरी नहीं है। प्रशासन का कोई नियंत्रण ही नही है। बल्कि ऐसे लोग गेंग बनाकर आदिवासियों को लूटने का कार्य करते हैं। तब मुझे लगता है, हम पढ़े-लिखे लोग आदिवासी जीवन और प्रकृति के ताने-बाने के कोमल तारों को तहस-नहस कर रहें है। यह बहुत शर्मनाक स्थिति है। आदिवासियों की रक्षा में कानून जरूर बनते हैं, लेकिन उनकी अनुरक्षा में यथोचित पालन नहीं दिखाई देता है। फिर भी इल्जाम जनजातियों के मत्थे मढ़ा जाता है। ये तो है ही ऐसे ?

लेकिन मेरी दृष्टि में आदिवासियों को उतना सम्मान कभी नही मिला, जितने वे इसके हकदार रहें हैं। वे ऐसे-वैसे नहीं है। भारत के मूल निवासी हैं। उनकी हजारों साल पुरानी संस्कृति है, सबसे पहले उन्होंने ही प्रकृति को समझा है। और समझकर उससे तादात्म्य करके अपनी परम्पराओं और संस्कृति को साकार किया है। जीवन में पहले प्रकृति में जगह बनाई। फिर संस्कृति ने आकार लिया। इस प्रक्रिया ने जनजातियों ने न जाने कितने पहावों के उतार-चढ़ावों के तनावों को पार किया होगा। वे कितनी बार गिरे होंगे, संभले होंगे और चले होंगे कहने की जरूरत नहीं हैं। उस समय की सारी सफलताएँ-असफलताएँ, सत्य-असत्य आदिवासी जीवन के विषय बन गये और बाद में अनुभव के ज्ञान की सारणी बनी। जिसमें खटटे-मीठे, कड़वे-चरपरे, सुख-दुख, खुशी-गम आदि के सभी अनुभव होंगे। उसी में प्रकृति के जंगल जीवन के सब हस्तक्षेप भी शामिल हैं, जो प्रकृति की तरफ से स्वभाविक रूप से आयें होंगे। प्रकृति के इस स्थिति को कोई बदल नहीं सकता। और जबरन उसे

बदलने की कोशिश की गई तो मनुष्य को मुँह की खानी पड़ी हैं। प्रकृति के विपरित चलने के कड़वे अनुभव भी जनजातियों के पास हैं। और मीठे अनुभव भी हैं। बल्कि यह कहना अधिक अच्छा होगा कि आदिवासी प्रकृति के रहस्यों के नैसर्गिक प्रवक्ता है। उनका जीवन ही प्रकृति और प्रकृति ही जीवन हैं। ऐसे में जनजातियों के जीवन को जंगल से, जो प्रकृति का प्रतिनिधि हैं, अलग नहीं कर सकते। जंगल के बिना जनजाति जीवन नहीं और जंगल आदिवासियों के बिना सूना हैं। बियाबान हैं। प्रकृति जीवन के लिये कभी प्रयोग शाला नही रही। बल्कि चिरसहचरी रही, प्रकृति से जीवन का विद्रोह भी नहीं है। एक तरह से गहरा आपसी सामन्जस्य है।

आदिवासियों का इस प्राकृतिक अनुभव को जब शहर में आजमाया जाता है, तब वह फैल हो जाता है और जीवन दु:ख-तकलीफों से भर जाता हैं, क्योंकि वहाँ प्रकृति गायब हो जाती हैं। निरन्तर प्रकृति के सानिध्य में रहने वाले आदिवासी शहरों में उगे सीमेन्ट, कांक्रीट के घरों में प्रकृति के अभाव में सफोकेशन (घुटन) महसूस करते हैं। उन्हें शहरी जीवन बिल्कुल रास नहीं आता। इसलिये शहरों में या गाँवों में ईंट सीमेन्ट के जनजातीय आश्रयों के घर बड़ी-बड़ी योजनाएँ फैल हो जाती हैं। या तो ऐसे आश्रय पजेशन के बाद खाली पड़े रहते हैं। और खाली धीरे-धीरे खंडहर में बदल जाते हैं। इस प्रकार बिना सोचे समझे अच्छी योजनाएं भी असफल हो जाती हैं। जनजातियों को इसका लाभ नहीं मिल पाता। ये लोग अपने पारम्परिक आवासों ढाना, सहराना, फल्या आदि में रहकर अधिक सुख महसूस करते हैं। जहाँ प्रकृति और खुले वातावरण की खिड़की सदैव खुली मिलती हैं। फूस, बाँस, लकड़ी मिटटी के मकानों में चाहे जहाँ से शुद्ध हवा के छोंके प्रवेश करते हैं। मखमली धूप और छाव मिलती हैं। ठण्ड, बरसात, गर्मी सहज रूप से आती हैं। शहरों में प्रदूषित, कृत्रिम वायु मिलती है। मेरा अनुभव कहता हैं। चाहे जीवन संविधान हो, विकास की राहें हों अथवा संस्कृति साहित्य के संरक्षण की बात हो जनजाति के जीवन और प्रकृति की लय को खंडित करने का काम करती हैं।

प्रकृति की वृत्ति

प्रकृति कि हर धड़कन को एक आदिवासी महसूस करता हैं। उसे मालूम है कब गर्मी, कब वर्षा और कब ठण्ड आयेगी। गर्मी की तपन बरसात की बरसन, ठण्ड की ठिठुरन को उसकी त्वचा के रोम-रोम पहचानते हैं। मौसम के मिजाज को वह अच्छी तरह से जानता हैं। आदिवासी ऋतुओं के रंग विधान का पारखी है। ऋतुएँ कब अपने परिधान बदलती है। कब हरियाली की चादर, कब जाड़े का कम्बल ओढ़कर और कब गर्मी की पीली पीयरी पहनकर धरती पर उतरती हैं। आदिवासियों की अनुभवी आत्मा जानती हैं। फूलों के रंग और सुगन्ध उसकी आँखों और सांसों में बसी हैं। उसके पैर धरती के गति की आहट को पहचानते हैं। उसका मस्तिष्क आकाश की ऊचाईयाँ को जानता है। गृह, नक्षत्र, तारों, आकाशगंगा और अन्तरिक्ष की दूरियों के रहस्यों को वह जानता हैं। बीजों की गुणवत्ता जानने का पैमाना उसके पास हैं। फसलों की महत्ता वह अच्छी तरह से जानता हैं। पशु-पक्षियों के पक्ष को निभाना आदिवासी आदिम समय से जानता हैं। कौन पक्षी कब अण्डे देगा। कब बोलेगा तो उसका क्या अर्थ होगा। मयूर नाचेगा तो क्या होगा? सिंह के दहाडने का क्या अर्थ होता है। कोयल के कुहकने से क्या होता है। एक आदिवासी सब जानता है। उसे और कोई नहीं प्रकृति सिखाती हैं। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को यह अनुभूत ज्ञान सहज रूप से स्थानान्तरित होता हैं। यह ज्ञान जंगल जीवन की स्वाभाविक मौखिक-मौलिक पाठशाला से मिलता हैं। आदिमजन यह ज्ञान किसी शिक्षा की सबसे बड़ी संस्था, विद्या, विद्यालय से नही सीखता हैं। ये परिवार की व्यवहारिक परम्पराएँ जीवन भर उसे सिखाती है। ये परम्पराएँ उसे प्रकृति से च्युत नहीं होने देती। बहुत गहरे में उसके भीतर धँसी हुई परम्पराओं को आदिवासी कभी छोड़ना नहीं चाहता। परम्पराएँ उसे प्राकृतिक जीवन प्रदान करती हैं। इसलिये एक आदिवासी अपनी परम्पराओं को जी जान से प्यार करता है। वह जानता है एक परम्परा को बनने में कम से कम एक हजार वर्ष लगते हैं। तब जाकर कोई परम्परा बनती हैं। जब परम्परा जीवन में प्रवृति में बदल जाती हैं। तब अवचेतन तक को बदलने में सक्षम होती हैं। वृत्ति और प्रवृत्ति मन पर निर्भर होती हैं। मन प्रकृति पर निर्भर होता है। आदिवासियो के मन और वृत्ति का अद्वैत उनको प्रकृति के बहुत निकट ले जाता हैं और वे नैसर्गिक रूप से प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। तब एक आदिवासी को बहार से योग-प्राणायाम आदि की जरूरत नहीं होती, इसलिए आदिवासी बाहर से सदैव स्थिर प्रज्ञ से दिखाई देते हैं। जैसे वे 'शून्य' में हो। लेकिन ऐसा नहीं हैं। उनके भीतर प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म हलचल इतनी गहरी और चेतनामयी होती है कि फिर उसे बाहरी भौतिक गतिविधियों को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सारी चैतन्य प्रकृति उसके भीतर मौजूद होती है। फिर उसे बहुत सी बाहरी हस्तक्षेप की व्यग्रताएँ नहीं घेरती हैं, शायद यही जनजाति जीवन और प्रकृति का अद्वैत रहस्य भी हैं। अस्तु।

विराट प्रकृति की छवि में जीवन एक बिन्दु के समान हैं। जैसे चित्र में आदमी विशाल वट वृक्ष के नीचे खड़ा होता है, वैसी ही प्रकृति में छाई है, और जीवन निरन्तर उसकी छाया में है।

- लेखक लोक एवं जनजातीय के अध्येता है।
एच. 7 उमा विहार नयापुरा, कोलार रोड, भोपाल-462042
मो. 9479539358

■

आलेख

जनजातीय साहित्य महोत्सव भोपाल वर्ष 2021 के अवसर पर
दिनांक 8 अक्टूबर 2021 को वेबिनार में दिया गया वक्तव्य

जनजातीय दार्शनिकता: मध्यवर्ती भारत के संदर्भ में

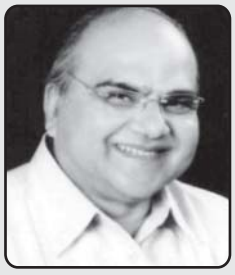

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

धरती को रत्नगर्भा कहा जाता है। उसके गर्भ में समाए रत्न जब धरती के धरातल पर प्रकट होते हैं तो फिर उनका सौभाग्य दमक उठता है। उनकी प्रखर दीप्ति उनको मूल्यवान बनाकर समाज में प्रतिष्ठित कर देती है। लेकिन वे जीवंत रत्न जो वनों, प्रांतरों के गर्भ में सदियों से समाए हुए हैं और सहजता ही जिनकी दीप्ति है वे आज तक समाज में उस प्रतिष्ठा के अधिकारी नहीं बन सके जिस प्रतिष्ठा के वे वास्तव में अधिकारी हैं। कोयले और पत्थर तो रत्न में परिवर्तित हो गए लेकिन ये अनादि रत्न अभी भी परिवर्तन की बाट जोह रहे हैं। ये अनादि रत्न वे हैं जिन्हें समाज आदिवासी के नाम से जानता है। यह शब्द आदि+वासी इन दोनों शब्दों से मिलकर बना है जिसका आशय मूल निवासी से होता है। आदिवासियों को पुरातन संस्कृत ग्रंथों में अत्विका कहा गया है। इन्हें जनजातीय के नाम से भी संबोधित किया गया है तथा महात्मा गांधी इन्हें गिरिजन कहते थे।

दिनकरजी ने अपनी कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' में माना है कि वनवासी लोग वे हैं जो औष्ट्रिक अथवा आग्नेय जाति के उत्तराधिकारी हैं और उनका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि ये लोग यूरोप के अग्निकोण में पाए जाते हैं तथा मेडागास्कर और विंध्यमेखला से लेकर प्रशांत महासागर के ईस्टर द्वीप तक ये फैले हुए हैं तथा इनका भारत में आगमन नीग्रो जाति के बाद हुआ। इस तरह आग्नेय जाति के वे लोग जो वनवासी या जनजातीय अथवा आदिवासी समझे जाते हैं, वे भारत में बाद में आए उनके पहले भारत में नीग्रो जाति के लोग आए। यह जाति भारत में अरब-ईरान के किनारे-किनारे चलकर पश्चिम से अथवा संभवत: अफ्रीका से आई थी।

विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि ये नीग्रो लोग उन आग्नेय लोगों के द्वारा या तो मार डाले गए अथवा उनमें मिलकर एक हो गए जो उनके बाद भारत में आए थे। इन नीग्रो लोगों के थोड़े से निशान दक्षिण भारत की आदिम जातियों में अथवा असम की नागा जाति में बचे हैं। नीग्रो जाति का काल विद्वान आज से सात हज़ार वर्ष पूर्व मानते हैं लेकिन संभव है कि यह काल आज से दस हज़ार वर्ष पूर्व का हो। जब आर्य इस देश में आए उस समय तक नीग्रो जाति भारत में समाप्त हो चुकी थी। नीग्रो जाति के बाद आग्नेय, आग्नेय के

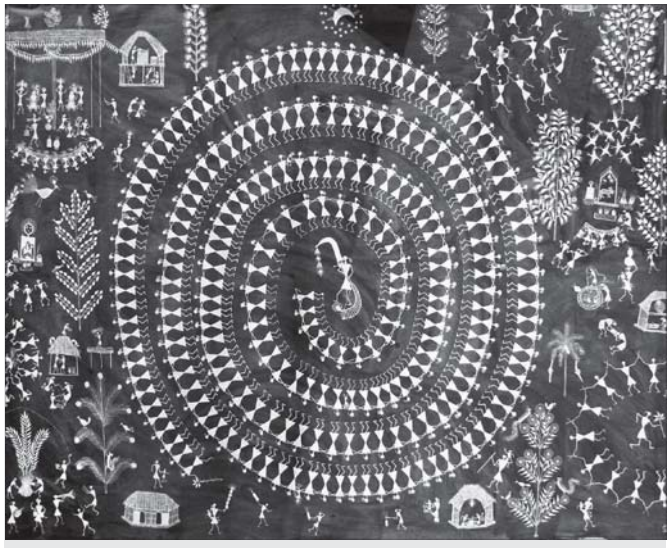

वरली लोकचित्र आधुनिक काल

बाद द्रविड़ और द्रविड़ के बाद आर्य जाति भारत में आई और तब एक सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया आरंभ हुई।

आग्नेय जाति के लोग मिश्रित जाति से थे तथा यह भी विमर्श का विषय रहा है कि आग्नेय जाति कोई स्वतंत्र जाति थी अथवा वह द्रविड़ों की ही किसी शाखा से निकली थी। कुछ विद्वान मानते हैं कि ये वनवासी जातियां भी द्रविड़ों की ही संतान हैं तथा इनके पूर्वज कभी इस देश के शासक थे तथा यह परम्परा भी विद्यमान रही कि

कुछ राज्यों के राजाओं के राज्याभिषेक के समय भील या पेरिया जाति के लोगों के अंगूठे के रक्त को उन राजाओं के ललाट पर लगाकर उनका राज्याभिषेक किया जाता था। कोल और मुंडा जाति की भाषा औष्ट्रिक परिवार की भाषा समझी जाती है तथा असम और बर्मा की भी मौन–खमेर भाषा औष्ट्रिक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जब आर्य भारत में आए तब आग्नेय लोग सिंधु की तराई में विद्यमान थे, आर्यों ने उनका नाम निषाद रखा तथा जिनके अन्य नाम कोल और भील भी मिलते हैं। बाद में बहुत से आग्नेय लोग आर्य भी हो गए लेकिन हज़ारों वर्षों के मिश्रण और समन्वय के बाद भी इस आग्नेय जाति के वनवासियों अथवा जनजातीय लोगों ने अपनी अस्मिता को बनाए रखा है व उसका एकमात्र कारण वह प्रकृति है जिसके संरक्षण में ये हज़ारों वर्षों से अपना जीवन व्यतीत करते आए हैं तथा यह प्रकृति उनके जीवन से अभिन्न हो गई है।

आदिवासी या जनजाति के संबंध में विद्वानों ने अनेक परिभाषाएं दी हैं। मजूमदार के अनुसार, 'कोई जनजाति, परिवारों का ऐसा समूह है जिसका एक नाम है तथा जिसके सदस्य एक निश्चित भू–भाग पर निवास करते हैं तथा विवाह, व्यवसाय के संबंध में कुछ निषेधाज्ञाओं का पालन करते हैं एवं जिन्होंने एक आदान–प्रदान संबंध तथा पारस्परिक कर्तव्य विषयक एक निश्चित व्यवस्था का विकास कर लिया है।'

रॉल्फ लिंटन के अनुसार, 'सरलतम रूप में जनजाति ऐसी टोलियों का समूह है जिसका एक सान्निध्य वाले भूखण्डों पर अधिकार हो और जिनमें एकता की भावना, संस्कृति में गहन सामान्यत: निरंतर सम्पर्क तथा कतिपय सामुदायिक हितों में समानता से उत्पन्न हुई हो।'

गिलिन और गिलिन के अनुसार, 'स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी समूह को जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, जनजाति कहते हैं।'

होबेल के शब्दों में जनजाति या प्रजाति विशिष्ट जननिक रचना के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले शारीरिक लक्षणों का एक विशिष्ट संयोग रखने वाले, समूह में रहने वाले लोगों को कहते हैं।

डॉ. घुरिये के अनुसार, 'भारत में जनजाति पिछड़े हुए हिन्दू हैं।'

श्री जे.पी. सिंह के अनुसार, 'सांस्कृतिक रूप से समरूप सम्प्रदाय जिसका समान भू–भाग भाषा तथा एक ही पूर्वज वंश होता

आखेट करते भील, अवध स्कूल- 18वीं सदी

है। यह एक अंतर्विवाही समूह हैं। इसके सदस्यों में सामान्यत: स्तरण नहीं होता और सारे सदस्यों का सामाजिक स्तर एक सा होता है।'

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार, 'एक जनजाति समान नाम धारण करने वाले परिवारों का संकलन है जो समान बोली बोलती है। ये परिवार एक क्षेत्र से संबंधित होते हैं तथा सामान्यत: यह समूह अंतर्विवाही होते हैं।'

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी या जनजाति के लोग जिनकी प्रकृति, प्रथा, धर्म, व्यवहार, आचरण तथा रहन–सहन प्राय: समान होते हैं और जो समूह में प्रकृति के निकट रहते हैं व जिनकी अस्मिता को आदि युग से विद्यमान माना जाता है उन्हें आदिवासी या जनजाति के रूप में संबोधित करते हैं।

आदिवासी, जिन्हें वनवासी, जनजातीय या विशेषकर ऑस्ट्रेलिया में एबॉर्जिनल के नाम से जाना जाता है वास्तव में हमारी मनुष्यता की पहचान हैं क्योंकि प्रकृति से तादात्म्य, सहजता और अपने कर्म के प्रति समर्पण के वे प्रतिमान हैं।

यहां मैं यह तथ्य उल्लिखित करना चाहता हूं कि भारत के जनजातीय क्षेत्रों के विभाजन के संबंध में विद्वानों के अलग–अलग विचार हैं। कुछ विद्वान इन्हें दो क्षेत्रों में बांटते हैं, कुछ तीन क्षेत्रों में और कुछ विद्वानों ने इन्हें चार भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया है किन्तु मुख्य रूप से यदि विचार किया जाए तो विभिन्न जनजातियों को पांच भौगोलिक भागों में विभाजित किया जा सकता है, ये हैं पूर्वोत्तर क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र, पश्चिम क्षेत्र तथा द्वीप–समूह क्षेत्र।

मध्यभारत के क्षेत्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ हैं तथा मध्यप्रदेश में बसने वाले आदिवासी या जनजातीय

समूह कोरकू, बैगा, भील, गोंड, भारिया, सहरिया तथा कोल हैं। मध्यप्रदेश के दक्षिण-पश्चिम में गुजरात व महाराष्ट्र, उत्तर-पूर्व में राजस्थान, उत्तर में उत्तर प्रदेश और विंध्य प्रदेश तथा दक्षिण में भोपाल का क्षेत्र आता है। मध्य भारत का पठार लगभग 57000 कि.मी. में फैला है।

छत्तीसगढ़ में मुख्य रूप से गोंड निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त कँवर, बिंझवार, भैना, भतरा, उरांव, मुंडा, कमार, हल्बा, बैगा, भरिया, नगेशिया, मंझवार, खैरवार और धनवार जनजाति भी काफी संख्या में हैं। इनके अलावा मध्य क्षेत्र में पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड उत्तर प्रदेश, ओडिशा व राजस्थान राज्य आते हैं। इनमें पश्चिम बंगाल में मुंडा, संथाल, उरांव तथा कोडा, बिहार में असुर, अगरिया, बैगा, बंजारा, बैठुडी, बेदिया व खरवार, झारखण्ड में मुंडा, उरांव, संथाल व बिरहोर उत्तर प्रदेश में थारू, बोक्सा, भूटिया, राजी, जौनसारी, गोंड, धुरिया, नायक, ओझा, पठारी, राजगोंड, खरवार, सहरिया, बैगा, पहड़िया, पनिका, पंखा, अगरिया, पतरी व चेरोभूइया, ओडिशा में जुआंग, खोई, भूमिज व खरिया, राजस्थान में भील, गरासिया व मीणा निवास करते हैं।

इन जातियों में गोंड, भील, उरांव व कोरकू जैसी जातियों के लोग बहुलता से हैं।

इन आदिवासियों या जनजातीय समूहों के संबंध में जाने कब से विमर्श हो रहा है किन्तु अभी तक न तो इस विमर्श का कोई अंतिम निष्कर्ष सामने आया और न ही इस विमर्श के रूप में हुए मंथन से निकले परिणामों के आधार पर इनके विकास की गाथा लिखी जा सकी।

जहां तक दर्शन शब्द का संबंध है इसके बारे में भी बहुत व्याख्याएं की गई हैं जिनके विस्तार में जाना अब समय की बाध्यता को दृष्टिगत रखते हुए अभीष्ट नहीं है। यदि संक्षेप में बात की जाए तो दर्शन शब्द दृश् धातु से बना है – ''दृश्यते यथार्थ तत्वमनेन'' अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ तत्व की अनुभूति हो वही दर्शन है। दर्शन को अंग्रेज़ी में फिलॉसफी कहा जाता है। इसका अर्थ है ज्ञान के प्रति अनुराग। फिलॉस का अर्थ प्रेम है और सोफिया का अर्थ है ज्ञान अथवा विज़्डम। इस तरह फिलॉसफी का आशय ज्ञान के प्रति प्रेम है। प्रख्यात भारतीय दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन का कहना है कि दर्शन वास्तविकता के स्वरूप का तात्विक विवेचन है।

इन आशयों के अंतर्गत दर्शन की भारतीय अवधारणा पश्चिम की अवधारणा से कहीं अधिक व्यापक है क्योंकि भारतीय दर्शन हमें अनुभूति के निकट ले जाता है। वह कोरा ज्ञान भर नहीं है और इस दर्शन की परिधि बड़ी व्यापक है जिसमें आत्मा संबंधी तत्व, ईश्वर, सत्ता, सृष्टि, ज्ञान, तर्क तथा सौंदर्य के साथ जीवन के रहस्यों को जानने की उत्कंठा भी है।

आज जब हम जनजातीय दार्शनिकता के संदर्भ में विचार कर रहे हैं तो यह स्वीकारना चाहिए कि अभी तक इनसे जुड़े अन्य आयामों की तरह इनके दार्शनिक पक्ष के संबंध में भी कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं निकल पाया है। यह प्रश्न अभी भी प्राय: अनुत्तरित है कि ये जनजातीय समूह हिन्दू हैं अथवा नहीं। वीर सावरकर का मानना है कि वह प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है जो इस भारत भूमि का सम्मान करता है चूंकि जनजातीय लोग भी इस भूमि का सम्मान करते हैं और वह इनकी पितृ भूमि है चाहे वे कोई भी धर्म माने इसलिए उन्हें हिन्दू ही मानना चाहिए।

एक पुनरुत्थानवादी दार्शनिक आभास चटर्जी ने इस संबंध में विचार करते हुए कहा है कि सनातन धर्म की कई शाखाएं और उपशाखाएं हैं, वैदिक, तांत्रिक, बुद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, शाक्त, सिक्ख, आर्य समाजी, कबीरपंथी, अयप्पा, सरना (छोटा नागपुर), डोनीपोले (अरुणाचल प्रदेश) आदि तथा इन सबमें एक ही आध्यात्मबोध चूंकि प्रवाहित होता है और यही बोध सबको हिन्दू बनाता है तथा समरसता में बांधता है। जबकि अन्य चिंतक जनजातीय समूहों को हिन्दू समूह नहीं मानते। उनका मानना है कि वे वैदिक परम्परा से सम्बद्ध नहीं हैं अपितु उनका अस्तित्व वैदिककाल से पूर्व का है।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा किए गए विमर्श का यह एक निष्कर्ष निकल पाया है जिस पर प्राय: सहमति है कि वे भारतीय हैं, ऐकेश्वरवादी नहीं हैं तथा मूर्तिपूजक हैं व उनके अनेक विश्वास तथा अनुष्ठान वैदिक धर्म के समान हैं।

विद्वानों ने भारतीय जनजातीय दर्शन के संबंध में विस्तार से विचार किया है तथा यह प्राय: आम सहमति है कि जनजातीय दर्शन उस स्वरूप का दर्शन नहीं है जिस स्वरूप के अन्य भारतीय दर्शन हैं। इस संबंध में श्री विनोद कुमार अग्रवाल ने एक शोध पत्र प्रकाशित किया है जिसमें उनका निष्कर्ष है कि, ''The conclusion is that the world views or systems or thought of tribes have not yet reached the status of any school of indian philosophy, recognized in universities all over the world.''

तब यह स्वाभाविक प्रश्न उपस्थित होता है कि जनजातीय दर्शन क्या है ? जनजातीय दर्शन वास्तव में वह दर्शन है जिसमें सहज विश्वास

और मान्यताएं हैं तथा उनसे जुड़े हुए अनेक रीति-रिवाज़ हैं जिन्हें आधुनिक समाज अंधविश्वास कहकर भी संबोधित करता है।

आदिवासियों के इन विश्वासों पर यदि विचार किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि प्राय: पूरे विश्व के आदिवासियों के विश्वासों में एक अद्भुत समानता है और वह यह कि वे निसर्ग से गहरे जुड़े हुए हैं तथा प्रकृति को ही अपना संरक्षक मानते हैं तथा उनके विश्वासों की जन्मदात्री वनों से आच्छादित धरती है।

जनजातीय दर्शन के संबंध में गोंडी दर्शन के प्रख्यात विद्वान स्व. डॉ. मोती रावण कंगाली ने अपने अनेक ग्रंथों में विचार किया है तथा विभिन्न अवधारणाओं और प्रमाणों के आधार पर जनजातीय दर्शन की व्याख्या की है। उनका यह कहना है कि प्राचीन भारत वास्तव में एक द्वीप था जिसे कोयातुरी द्वीप कहते थे तथा इसमें रहने वाले लोग कोइतूर कहलाते थे। इन कोइतूर लोगों के अपने विश्वास थे लेकिन शनै: शनै: बाहरी प्रभावों के कारण ये उनसे प्रभावित हुए तथा विभिन्न जातियों और धर्मों में भी बंटे लेकिन हज़ारों वर्षों के बाद भी कोइतूर संस्कृति में मौलिक रूप से बदलाव नहीं आया। इस कोइतूर समाज का अपना भाषा समूह था जिसे कोइयां कहा जाता था तथा इनकी सामाजिक व्यवस्था कोयापुनेम के नाम से जानी जाती है जिसे आज भी गोंड आदिवासियों ने सहेज रखा है। डॉ. कंगाली के अनुसार कोइतूर प्राचीन परम्परा के जनजातीय क़बीले हैं।

जनजातीय दर्शन के आदि ईश्वर संभूशेक अर्थात भगवान शंकर अथवा शिव हैं। पुनेम दर्शन में उनकी संख्या 88 है। वे असुरों और तांत्रिकों के ईश्वर हैं तथा उस सामाजिक व्यवस्था के सूत्रधार हैं जो मातृ सत्तात्मक हैं। इस जनजातीय दर्शन के आख्याता पारीकुपर लिंगो हैं जिनका अस्तित्व सिंधु घाटी की सभ्यता के प्रमाणों में भी विद्यमान है।

लिंगो के विश्वोत्पत्ति सिद्धांत के अनुसार गोंडी पुनेम दर्शन में भी प्रकृति (संसार चक्र) विद्यमान है जो सल्लां (धन तत्व) और गांगरा (ऋण तत्व) नाम के दोनों तत्वों से मिलकर बना है। जनजातीय दर्शन भगवत्ता को इसी लोक की मानते हैं। डॉ. कंगाली के अनुसार, 'प्राचीन लोकायतिक विचार जिस प्रकार इहलोकवादी चिंतन पर खड़ा है उसी तरह गोंडी पूनम विचार भी प्रकृति की शक्तियों को सर्वाधिक महत्व देते हुए पुनर्जन्म और आत्मा-परमात्मा के नकार पर खड़ा है।'

डॉ. कंगाली महिषासुर की अवधारणा की भी व्याख्या करते हैं तथा कहते हैं कि महिषासुर वास्तव में आदिवासियों के पूज्य देवता हैं तथा वे जीवित असुर हैं। डॉ. कंगाली के अनुसार जनजातीय दर्शन उस लोकायत दर्शन व सांख्य दर्शन के निकट है जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता। जनजातीय दर्शन का आधार केवल प्रकृति है जो न कभी जन्मी और न ही कभी मृत होगी। गोंड दर्शन का यह विश्वास है कि भगवान शब्द उनका दिया हुआ है। भ से भूमि, ग से गगन, व से वायु, अ से अग्नि और न से नीर। उनका मानना है कि सबसे पहले आर्य और गोंड संग्राम हुआ था। बाद के संग्राम इस संग्राम के बाद हुए।

डॉ. कंगाली ने सनातन दर्शन की श्रमण परम्परा के बौद्ध दर्शन व आदिवासियों के दर्शन में साम्य पाया है। वे बौद्ध दर्शन और लोकायतिक दर्शन से जनजातीय दर्शन का साम्य स्थापित करते हैं। उनके अनुसार, 'बुद्ध पारीकुपर लिंगो की तरह भौतिकवादी दर्शन पर अपने दर्शन की नींव रख रहे हैं। बुद्ध भी चार महाभूत मानते हैं। वे लिंगो के प्रवाह में हैं। पंचभूत आदिवासी दर्शन में मान्य नहीं है और न ही बौद्ध दर्शन में। न तो बौद्ध दर्शन और न ही जनजातीय दर्शन आकाश तत्व के अस्तित्व को मान्य करता है। चार्वाक दर्शन भी आकाश तत्व को शामिल नहीं करता। ये दर्शन आकाश तत्व को इसलिए पंचभूतों में शामिल नहीं करते क्योंकि इसे शामिल करने पर कहीं पुनर्जन्म की अवधारणा बलवती होती है और उससे जुड़े हुए कर्मकाण्ड अस्तित्व में आते हैं।

जैसा कि यह बार-बार उल्लेख किया गया है, जनजातीय दर्शन की उत्पत्ति का आधार प्रकृति है और इसीलिए जनजातियों में जो लोक कथाएं प्रचलित हैं उनमें भी यही धारणा अभिव्यक्त होती है। भीलों की एक मिथ कथा के अनुसार वनस्पतियों की उत्पत्ति भगवान शंकर के केशों से हुई थी।

यह दर्शन उस अदृश्य शक्ति की उर्जा में विश्वास रखता है जिसकी इच्छा के बिना प्रकृति में किसी भी जीव या निर्जीव की रचना नहीं होती तथा इस अवधारणा की परिणति यह है कि जनजातीय जीवन के व्यवहार में और उनके लोक गीतों में बसे सौंदर्य की अभिव्यक्ति में इस अवधारणा के दर्शन किए जा सकते हैं।

बस्तर के आदिवासियों के संदर्भ में विस्तार से पूर्व और पश्चिम के विद्वानों ने अध्ययन तथा विमर्श किया है। उनका यह निष्कर्ष है कि अपने आरंभिक काल में आदिवासी मूर्ति पूजा में अथवा किसी विशिष्ट पूजा पद्धति में विश्वास नहीं करते थे तथा उनके लिए अपने आरंभिक स्वरूप में धर्म और उससे जुड़े हुए दर्शन का आशय केवल प्रकृति के उपादान ही थे। बाद में वे मूर्ति के स्थान पर अनगढ़ पत्थर, लकड़ी, लोहा, धातु का टुकड़ा, शंख, घंटी आदि को पूजने लगे। यह परम्परा अभी तक अनेक जनजातियों में जारी है। ये

उनके स्थिर देवता रहे। उन्होंने चलायमान देवी–देवताओं की भी पूजा की तथा डोली व विमान पूजे जाने लगे। आधुनिक युग में कुर्सी की भी पूजा की जाने लगी। मैंने पेरिस के विशाल जनजातीय संग्रहालय जिसे म्यूज़ी डी क्वी ब्रेनली (जैक शिरोक) के नाम से जाना जाता है में ऐसे अनेक उपादान देखे जिनमें मोटर व वायुयान भी शामिल हैं।

बाद में शनैः शनैः माता की मूर्तियां बनाई गईं जिनकी पूजा होने लगी। इनमें बस्तर की दंतेश्वरी देवी सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं जिनकी सभी स्थानों पर पूजा होती है। देवियों में परगना, ग्राम व परिवार स्तर तक की देवियां पूजी जाने लगीं। जैसे कोण्डा गांव परगने की देवी कोट गुड़िन, ग्राम स्तर के भूमिहार व परिवार स्तर के भीमा डोकरा तथा गोंडिन। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि बस्तर में मातृ देवी की पूजा होती है तथा ऐसी मातृकाओं की संख्या बत्तीस है।

वैसे विद्वानों ने जो आदिवासी दर्शन की व्याख्या की है वह व्याख्या न केवल मध्य भारत के जनजातीय समूहों पर लागू होती है अपितु वह देश के अन्य जनजातीय या आदिवासी समूहों पर भी लागू होती है इसलिए कि ये सभी आदिवासी अनादिकाल से प्रकृति के आंचल में ही पलते–बढ़ते रहे हैं और निसर्ग ही इनका आश्रयदाता है। इसलिए इनका दर्शन निसर्ग से ही जन्मता है और वहीं विराम पाता है। तात्विक दर्शन की जटिलता से इस दर्शन का कोई संबंध नहीं है।

इस जनजाति धर्म की पहली विशेषता मन है। यह भौतिक शक्ति से बिल्कुल अलग एक ऐसी शक्ति है जो अच्छा और बुरा करने के लिए हमें प्रेरित और नियंत्रित करती है। मजूमदार और मदान के अनुसार, 'आदिवासी लोगों का सम्पूर्ण धार्मिक जीवन जानने योग्य, व्यक्तित्व शून्य, भौतिकहीन और व्यक्तिगत अलौकिक शक्ति में विश्वास की उपज है जो सभी वस्तुओं, सजीव और निर्जीव जो संसार में मौजूद हैं, में विद्यमान है।'

आदिवासी दर्शन यह मानता है कि आत्माएं दो प्रकार की होती हैं, उपकारी और अपकारी जो उनके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाती हैं।

आदिवासी दर्शन की एक महत्वपूर्ण अवधारणा बोंगा की है। इस अवधारणा के अनुसार बोंगा भी मन का ही एक रूप है तथा आदिवासी यह विश्वास करते हैं कि प्रत्येक अशुभ कार्य के पीछे एक व्यक्तित्वहीन दुर्भावना शक्ति होती है जो लोगों को हानि पहुंचाती है और इसी के कारण तूफान, बाढ़ और संक्रामक रोग आते हैं, इसी के कारण जंगली जानवरों का बाहुल्य होता है तथा बोंगा की शक्ति के कारण ही विभिन्न प्रकार के उपद्रव भी होते हैं।

आदिवासी जीववाद में विश्वास करते हैं। वे मानते हैं कि अलौकिक शक्तियों के कारण ही बड़े छतनार वृक्ष, ऊंचे पर्वत तथा बाढ़ लाने वाली नदियां हैं। इसलिए इन शक्तियों को प्रसन्न रखना चाहिए। आदिवासियों का यह भी विश्वास है कि जो शोक और दुख उन पर आते हैं उनका कारण अदृश्य और अपवित्र आत्माएं हैं और इन आत्माओं को भी प्रसन्न रखना है इसलिए भी वे प्रार्थना और बलि में विश्वास करते हैं।

सजीवता का भी एक सिद्धांत आदिवासी दर्शन का प्रमुख सिद्धांत है जिसके अनुसार अलौकिक शक्तियां हरेक सजीव व्यक्ति के सिवाय निर्जीव वस्तु के पीछे भी होती हैं। ये शक्तियां व्यक्तित्वहीन होती हैं। जनजातीय धर्मों में अस्थियों तथा परों में अलौकिक शक्ति का अस्तित्व मान्य किया जाता है। सजीवता का यह उदाहरण बिहार की जनजातियों में विशेष रूप से दिखाई देता है।

अनेक जनजातियां आत्मा की अमरता में विश्वास रखती हैं। उनका विश्वास है कि शरीर के मृत होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती तथा उसे निरंतर भोजन की आवश्यकता होती है। वे यह भी मानते हैं कि आत्माएं ज़मीन की उर्वरता के लिए भी उत्तरदायी होती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जनजातियों के अपने विश्वास होते हैं जो प्रकृति से उद्भूत हैं।

आत्मावाद के प्रति उनका इतना अधिक जुड़ाव है कि वे नदी, वन, पर्वत तथा जंतुओं में भी पवित्र–अपवित्र आत्मा का वास मानते हैं तथा इसके अनुसार ही ये प्राकृतिक देवी–देवताओं की पूजा करते हैं व मानते हैं कि इस आत्मावाद के आधार पर जिन उपादानों में पवित्र आत्माओं का वास है वे आत्माएं उनकी रक्षा करती हैं तथा इसीलिए उनकी पूजा करनी चाहिए। वे पूर्वजों की आत्माओं का भी अस्तित्व मानते हैं। आत्मा की शक्ति से उनका यह तात्पर्य है कि वह अलौकिक होती है तथा परमात्मा के समकक्ष है। यदि विपत्ति आती है तो वह आत्मा के कारण ही आती है।

जनजातियों में मोटे तौर पर दर्शन की प्रायः एक जैसी अवधारणा है किन्तु उसके व्यवहारिक स्तर पर अनुष्ठान व धार्मिक क्रियाओं में अंतर है।

जनजातियों में टोटमवाद महत्वपूर्ण है। टोटम का अर्थ है किसी उपादान की ऐसी विशिष्टता जो उसमें अभिव्यक्त होती है। एक गोत्र का एक ही टोटम होता है जिसके कारण गोत्र के सभी सदस्य उसे पवित्र मानते हैं तथा यह विश्वास करते हैं कि उनका टोटम संकट में उनकी रक्षा करता है, चेतावनियां देता है तथा भविष्यवाणियां

करता है। वह पवित्र है इसलिए उसका चित्र भी घर पर लगाया जाता है तथा शरीर पर उसका गुदना भी गुदवाते हैं। टोटम सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है। टोटम का आर्थिक महत्व भी होता है। चूंकि जनजातियां वनों में निवास करती हैं इसलिए पशुओं-पक्षियों तथा वनस्पतियों को टोटम के रूप में स्वीकार किया जाता है तथा उनको अपना पूर्वज मानते हुए उनकी पूजा की जाती है। टोटम विपत्ति के समय उनकी रक्षा करते हैं। यह टोटम भी उसी दर्शन का अंग है जो दर्शन सगुण की आराधना पर आधारित है।

भारत में सगुण और निर्गुण की आराधना करने की परम्परा बड़ी पुरानी है। आगम और निगम दर्शनों में आराधना के अनेक प्रकार दिए गए हैं। ये दर्शन किसी एक बिन्दु पर समान भी हो जाते हैं तथा इसका उदाहरण प्रस्थानत्रयी है जो शंकर दर्शन में समवेत हुआ है। आचार्य शंकर अर्थात शंकराचार्य ने जिस अद्वैत दर्शन को अंगीकार कर उसका प्रचार किया वह अद्वैत दर्शन केवल निराकार ब्रह्म की ही उपासना नहीं करता अपितु सगुण रूप में भी ब्रह्म को पूजता है और इसका सबसे बड़ा उदाहरण आचार्य शंकर के द्वारा प्रणीत 'सौन्दर्य लहरी' है जिसमें देवी के स्वरूप को काव्य के माध्यम से चित्रित किया गया है। इसलिए जनजातीय दर्शन भी सगुण और निर्गुण स्वरूप से प्रभावित रहा है तथा इस दर्शन ने भी यह स्वीकार किया है कि पूजा के अस्तित्व निर्गुण भी होते हैं और सगुण भी। प्राय: अधिकांश जनजातियां पुनर्जन्म को स्वीकार करती हैं। उदाहरण के स्वरूप उरांव जनजाति जो छत्तीसगढ़ और बिहार में प्राय: निवास करती है वह पुनर्जन्म को स्वीकार करती है तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत में निहित इस अवधारणा को भी स्वीकारती है कि जो सत्कर्म करता है उसे स्वर्ग मिलेगा तथा दुष्कर्म करने वाले को नर्क तथा यह भी कि उसका अगला जन्म दुखमय होगा।

यहां तक कि उरांव जाति में यदि कोई लड़का किसी परिवार में जन्म लेता है तो यह माना जाता है कि उसके पूर्वज की आत्मा उसके अंदर विद्यमान है इसी कारण बच्चों के नामकरण के समय उसका नाम उसके दादा के नाम पर रखा जाता है।

अधिकांश जनजातियां जीवात्मा की उपस्थिति परमात्मा के रूप में विभिन्न प्राकृतिक उपादानों में स्वीकार करती हैं।

दुर्खीज़ नामक एक विद्वान ने यह स्थापना भी दी है कि धर्म की उत्पत्ति जनजातियों में सामूहिक आधारों पर ही नहीं हुई है अपितु अनेक व्यक्तिगत अनुभवों और आधारों ने भी धर्म को जन्म दिया है।

जनजातीय दर्शन के संबंध में डॉ. रामदयाल मुंडा ट्राइबल वेलफेयर रिसर्च इंस्टीट्यूट रांची में एक विस्तृत तीन दिवसीय विमर्श वर्ष 2020 में सम्पन्न हुआ था जिसमें देश-विदेश के विद्वानों ने बारह सत्रों में जनजातीय दर्शन के संबंध में विस्तार से विचार किया तथा ऑस्ट्रेलिया व नॉर्डिक देशों की एबॉर्जिनल अवधारणा पर विस्तार से विमर्श किया। इस विमर्श की परिधि में लोक गीत, धार्मिक विश्वास, मृत्यु, आत्मा, जीवन के बाद की अवधारणा, व्यवहार तथा स्वभाव के परिप्रेक्ष्य में एक ओर विचार हुआ वहीं दूसरी ओर जनजातीय दर्शन के व्यवहारिक पक्ष पर भी विचार हुआ जिसमें देवी-देवता, पूजा के स्वरूप, जीवन की घटनाओं से जुड़ी रीतियां तथा जन्म से मृत्यु तक के विभिन्न पड़ावों पर सम्पन्न किए जाने वाले अनुष्ठानों व रीतियों को शामिल किया गया।

ऑस्ट्रेलिया की नार्दन टेरीटरी में अवस्थित दस हज़ार वर्ष पुरानी उलुरु पहाड़ी को भी विमर्श का केन्द्र बनाया गया जो वहां के एबॉर्जिनल लोगों के द्वारा पूजनीय है।

इस कांफ्रेंस में एक यह भी सुझाव उभरकर सामने आया कि क्या निश्चित विधियुक्त धर्म इन समस्त जनजातियों के लिए एक ऐसी विषविरोधी औषधि के रूप में प्रयुक्त हो सकता है जो उन्हें शोषण से बचा सके तथा उनकी पहचान को कायम रखते हुए उनकी जीवनचर्या की पहचान को भी बचा सके। इस कांफ्रेंस के निष्कर्षों पर अभी भी विचार विमर्श हो रहा है।

इस विवेचन का निष्कर्ष यही है कि आदिवासी, जनजातीय या गिरिजन इन्हें चाहे जिस संज्ञा से अभिहित किया जाए ये सच्चे धरती पुत्र हैं, निसर्ग की संतानें हैं जिनके जीवन दर्शन का आधार केवल प्रकृति है तथा इनके जीवन दर्शन में भले कोई तात्विकता विद्यमान न हो और भले इनका दर्शन भारत में विद्यमान अन्य दार्शनिक अवधारणाओं के समकक्ष न हो तब भी इनका दर्शन वह दर्शन है जिसने भारतीयता की अमर और मौलिक पहचान को रचा है।

- लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

■

श्री रामचरित मानस का आधार दर्शन ईशावास्योपनिषद

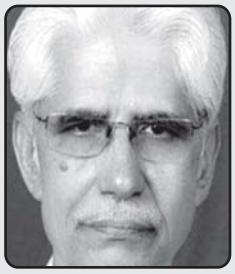

प्रभुदयाल मिश्र

यदि वेदान्त का सार संदेश एक पंक्ति में समाहित करना है, तो मैं यजुर्वेद 40/1 से निम्नलिखित मंत्र उद्धृत करूंगा–

ईशावास्यमिदं सर्व यतकिंचजगत्यां जगत्

तेन त्यक्तेन भुन्जीथः मा गृधः कस्यस्वित्धनम् ।

यही मंत्र ईशावास्योपनिषद का भी प्रस्थान बिन्दु है। इसमें यजुर्वेद के 18 के स्थान पर कुल 7 मंत्र हैं। विनोबा भावे ने ईशावास्योपनिषद की अपनी टिप्पणी 'ईशा वृत्ति' में इस तथ्य पर जोर दिया है कि भगवद गीता के बीज ईशावास्योपनिषद में खोजे जा सकते हैं। यह शास्त्र संपूर्ण वेदांत का प्रतिनिधि दर्शन है। इसके इस पहले मंत्र पर ध्यान केंद्रित करते हुए हम बहुत अच्छी तरह से निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि विश्व बंधुत्व के सिद्धांत, एकमानवीयता जीवन शैली और उपयुक्त विश्व व्यवस्था की योग्य नीति इसमें निर्धारित की गई है।

सबसे पहले हम यह समझें कि गोस्वामी तुलसीदास ने वैदिक विद्या के सूक्ष्म सूत्रों को नियोजित कर एक महान मानस भवन का कैसे निर्माण किया। वेद, जैसा कि हमें समझना चाहिए, निरपेक्ष ब्रह्म का अनुचिन्तन हैं जैसा कि प्राचीन ऋषियों को ज्ञात था। वे जीवन को उसकी पूर्णता– भौतिक के साथ–साथ आध्यात्मिक रूप से जीने के लिए मनुष्य के प्रतिनिधि जीवन–नियम हैं। जीवन के छह मूत्र दर्शन – न्याय, वैशेषिक, कर्म, सांख्य, योग और वेदांत, भी वेदों विनिश्रित हैं। इनकी लेकिन अंतिम परिणिति वेदान्त सभी का उपसंहार है।

वेदांत को अद्वैत दर्शन भी कहा जाता है क्योंकि यह ईश्वर के सार्वभोम एकत्व का उद्घोषक है। यह भारतीय दर्शन का केंद्रीय स्वर है और ठीक ही गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस का सार सर्वस्व भी है। वाल्मीकि के रामायण और वेदव्यास के श्रीमद्भागवत के रूप में तुलसी के सामने महान शास्त्र आधार उपलब्ध थे। तुलसीदास के मानस के केंद्रीय चरित्र श्री राम को यद्यपि वाल्मीकि के रामायण से लिया गया है किन्तु वे मात्र विशेष सांसारिक नहीं हैं, वे परम ब्रह्म की विराट सत्ता स्वरूप स्वयं ही मानव रूप में अवतरित हुए है।

ब्रह्म सूत्र के दूसरे सूत्र में कहा गया है, संसार की उत्पत्ति भगवान से ही हुई है – जन्मद्यस्य यतः (ब्रह्म सूत्र–2)। इसी प्रकार गीता कहती है कि प्रत्येक वस्तु का उद्गम श्रीकृष्ण हैं और सर्वस्व उन्हीं में संव्याप्त है। (गीता 9.4)

इस उपनिषद के मंत्र का दूसरा भाग भोग और त्याग के संतुलन पर जोर देता है। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि जब संसार को केवल ईश्वर के रूप में लिया जाता है, तो संसार के अनुभव भ्रामक प्रतीत हो सकते हैं। यह कर्म के प्रति उदासीनता पैदा कर सकता है। वैदिक दर्शन कभी भी एकांगी नहीं है। यह जीवन को उसकी पूर्णता में देखता है। संसार को ईश्वर का वास बताने के बाद इस प्रकार वैदिक ऋषि संसार को गम्भीरता से लेने का सुझाव देते हैं। इसमें भ्रम की संभावना है। आसक्ति, लोभ बहुत महत्वपूर्ण भावनाएँ हैं। वे भोग की प्रवृत्ति में अपनी अभिव्यक्ति पाते हैं। इसलिए वैदिक ऋषि सावधानी से मानव व्यवहार को उच्चतर आदर्श के अनुसार संचालन आवश्यक प्रतिपादित करते हैं।

यहाँ यह स्मरणीय है कि रामचरित मानस के राजा प्रताप भानु ने यह पाठ बहुत सीखा था–

करइ जे धर्म करम मन बानी, वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी (1/115/2)

हालाँकि, यह स्पष्ट है कि उसने जो सीखा था और जिस मार्ग का वह अनुसरण कर रहा था, वह अधूरा था। उसकी एक कल्प निर्वाध राज्य करने की एक अदम्य इच्छा भी थी जो अंततः उसके पतन का कारण बनी।

यह पूछा जा सकता है कि पहले क्या आता है– भोग या त्याग। निस्संदेह, भोग का प्रश्न तब उठता है जब उसके लिए वस्तुएं उपलब्ध हैं। आम तौर पर त्याग तब अधिक स्वाभाविक लगता है जब भोग उससे पहले हों। लेकिन ईशोपनिषद के द्रष्टा भोग के विषय में त्याग को पहले स्थान पर रखते हैं। उपलब्धि की घटना होने के

बाद ही त्याग संभव है। क्या वास्तव में किसी वस्तु का संग्रह वास्तविक नहीं है जबकि हम संग्रह को आधिपत्य मानते हैं ? मंत्र का यह भाग इसी पक्ष की ओर संकेत करता है। वास्तव में यह केवल एक भ्रम ही है जब कोई यह मानता है कि वह उस वस्तु का स्वामी है जो उसके पास है। इस तरीके से आधिपत्य केवल एक भावना है, न कि कोई वास्तविक स्वामित्व।

यह फिर से प्रश्न किया जा सकता है, यदि वस्तुओं का मूल भगवान में है, तो हमें उन्हें त्यागने की क्या आवश्यकता है ? जवाब बहुत सरल है। इस सत्य को स्वीकार करने के बाद कि न तो हमने वस्तुओं को बनाया है और न ही उन पर हमारा कोई स्वाभाविक नियंत्रण है, अत: उनका त्याग भी उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए। जिस वस्तु पर कब्जा नहीं किया जा सकता, वह न तो कहीं आ सकती है और न ही कहीं जा सकती है। यह केवल आसक्ति या लोभ ही है, जो व्यक्ति को यह विश्वास दिलाता है कि वह उसका स्वामी है। इसलिए, त्याग केवल मन के स्तर पर वैराग्य की भावना है। यह किसी भी मामले में संग्रह या किसी वस्तु से अलगाव को शामिल नहीं करता है।

जब ऋषि कहता है कि आप आनंद ले सकते हैं, तो इसका मतलब यह लग सकता है कि दुनिया वास्तविक है। यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि यदि हम किसी वस्तु पर कोई नियंत्रण नहीं कर सकते हैं और उस पर अधिकार करना असंभव है, तो भोग की सलाह क्यों दी जाती है ? यह मनुष्य को जीवन के उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करने में कैसे मदद करता है ? भागवत गीता के अनुसार समस्त दुखों का मूल कारण भोग है। उनका एक आरंभ और एक अंत होता है। इसलिए यह सलाह दी गई है कि बुद्धिमान लोगों को उनमें खो जाना नहीं चाहिए।

ए हि संस्पर्शजा भोगा: दुखयोनय एव ते

इसलिए गीता यह भी कहती है कि इस संसार के सभी भोग क्षणभंगुर हैं और एक बार उन्हें प्राप्त करने के बाद, भगवान की प्राप्ति के उच्च लक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिए- अनित्यं सुखं लोके इमं प्राप्य भजस्व माम्। (गीता 9/33) ईशोपनिषद के द्रष्टा के निहित अर्थ को समझना यहाँ महत्वपूर्ण है। वेद के द्रष्टा यथार्थ को आदर्शवाद से नहीं ढंकते। वे दोनों को वैसे ही स्वीकार करते हैं जैसे वे हैं। इस दर्शन के अनुसार भोग की प्रवृति कब्जे, लोभ और वासना की भावना से उत्पन्न होती है जो मानव जीवन में केवल बाह्य तत्व हैं।

त्याग का अभ्यास दोनों तरों पर महत्वपूर्ण है- मन के साथ-साथ क्रिया से भी। त्याग की प्रवृत्ति तब और अधिक स्वाभाविक हो जाती है जब इस दर्शन की प्रारम्भिक व्याख्या हमारे मन में भली प्रकार धारण कर ली जाती है। इस ज्ञान को ध्यान में रखते हुए कि जो कुछ भी मौजूद है वह भगवान से अविभाज्य है, हमारी ओर से कोई भी बलिदान, त्याग मात्र काल्पनिक है।

राम इस सिद्धांत के प्रकट अवतार हैं। उनके राज्याभिषेक की घोषणा के ठीक एक दिन पहले, अचानक उन्हें सब कुछ त्याग कर चौदह वर्ष के लिए निर्वासन में वन भेज दिया जाता है। लेकिन उनकी प्रतिक्रिया क्या है-

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुखत: (मानस 2/2)

श्री राम न तो राज्य सिंहासन मिलने पर प्रसन्न होते हैं और न ही तुरंत वनवास मिल जाने पर खिन्न।

क्रिया का जीवन जागरूकता का जीवन है। यहाँ 'कर्म' शब्द का अर्थ कर्मयोग है। इसका अर्थ है कि किया गया प्रत्येक कार्य कर्म योग होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह भी है कि प्रथम मंत्र में दिया गया ज्ञान जब हमारे कर्मों में आत्मसात हो जाता है तो वह हमारे कर्मों को कर्म योग में बदल देता है।

कर्मयोग का यह सिद्धांत भगवदगीता में पूर्ण रूप से खिलता है। उसके अनुसार किया हुआ कर्म ही सिद्धि है और उसके फल को भोगने में किसी प्रकार की प्रतीक्षा या स्थगन की आवश्यकता नहीं है। क्रिया के प्रदर्शन में यह ज्ञान इसे यज्ञ विधान का अधिकार देता है। यज्ञ अनुष्ठान परंपरागत रूप से, एक श्रेष्ठ प्रकार के सामूहिक कर्म का प्रतीक था। यह इस सृष्टि के कारण, प्रक्रिया और अंत का प्रतीक भी है।

रामायण के केंद्रीय चरित्र, श्री राम वास्तव में इस कला और ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ आदर्श हैं। उदाहरण के लिए, जनकपुर में, जब भगवान शिव के बाण उठाने की प्रतिद्वंदविता अपने चरम पर होती है, राम अप्रभावित रहते हैं। जब तक उनके गुरु विश्वामित्र ने उन्हें उठकर धनुष तोड़ने के लिए नहीं कहा, तब तक उनकी ओर से किसी भी प्रयास के कोई संकेत नहीं है। जब उन्हें ऐसा आदेश दिया जाता है तो वह अपने पराक्रम में पूरी तरह से आज्ञा पालन करने में समर्थ होते है। तब उनकी मुद्रा ध्यान देने योग्य है -

ठाड भये उठि सहज सुभाये

ठवनि युवा मृगराज लजाये। बालकाण्ड 253/4

और जब राम ने बिना किसी परिश्रम के धनुष तोड़ दिया है और उन्हें प्रतिद्वंद्वी प्रतियोगियों द्वारा चुनौती दी जाती है, तो उन्हें कोई शिकायत नहीं है। इससे परशुराम भी यह मानने में भ्रमित हो जाते हैं

कि क्या वे वास्तव में उनके अपराधी हो सकते हैं क्योंकि उनके व्यवहार में इस वीरतापूर्ण कार्य के विजयी प्रदर्शन के कोई संकेत नहीं थे–

सभय विलोके लोग सब जान जानकी भीरु
ह्रदय न हरषु बिसाद कछु बोले श्री रघुवीर।
(बालकाण्ड 270/1)
नाथ संभु धनु भंजनि हारा
हुइहै कोउ इक दास तुम्हारा।(बालकाण्ड 270/)

जब राम ने देखा कि सारी सभा विचलित हो गई है और सीता जी भी चिन्तित मालूम पड़ती हैं, तब वे बिना किसी दवेष या हर्ष के धीरे से बोले। है महान स्वामी, जो इस महान धनुष को तोड़ता है, वह आपका सेवक, अनुयायी ही हो सकता है।

परशुराम स्पष्ट रूप से 'निष्काम कर्मयोगी' की भाषा का बोध नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए लक्ष्मण एक दुभाषिया के रूप में आगे बढ़ते हैं। इसलिए, वह कहते हैं कि जैसे ही राम ने धनुष को छुआ, वैसे ही धनुष टूट गया। वस्तुत: यह एक ऐसा कार्य है जिसमें कर्ता अनुपस्थित रहता है। फिर राम को अपनी वीरता पर एक अहंकार कैसे हो सकता है ?

कर्म के लिए राम की निरंतर खोज उनकी महान सेना को लंका के लिए इसे पार करने के लिए हिंद महासागर सै की गई प्रार्थनाओं में स्पष्ट है। उन्होंने तीन दिनों तक शांति से ध्यान मैं बैठने का फैसला किया, हालांकि लक्ष्मण इसके बारे में बिल्कुल भी आश्वस्त नहीं थे।

अंतिम और कम से कम एक उदाहरण यह है कि राम ने अंगद को रावण के दूत के रुप में कार्य करने के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए भेजा कि युद्ध से बचा जा सकता है–

काज हमार तासु हित होई ।
रिपु सन करहु बतकही सोई। लंकाकांड 16/4

अंत में जब राम रावण को हरा देते हैं, तो वे अपने शत्रु के छोटे भाई विभीषण को राजगददी पर बिठाते हैं और कामना करते हैं–

करहु कल्प भर राज तुम।(लंकाकांड 6)

ईशोपनिषद का तीसरा मंत्र इस प्रकार है–

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता:
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्मनो जना:।

इसका अर्थ है – घोर अन्धकार से आच्छादित वे लोक ऐसे हैं जहाँ मृत्यु के बाद वे सभी जाते हैं जो अपनी आत्मा के हत्यारे हैं।

भगवत गीता के 16वें अध्याय में भगवान कृष्ण ने दो प्रकार के संसार का उल्लेख किया है– दैवी (दिव्य) और आसुरी (राक्षसी)–

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मन्देव आसुर एव च – (16/6)

अपनी आत्मा का हत्यारा अँधेरी दुनिया में चला जाता है। प्रचलित सामान्य कानूनों के अनुसार भी सभ्य समाज में आत्महत्या करना एक जघन्य अपराध है। लेकिन आत्मा का हत्यारा दंड संहिता के तहत कोई अपराधी नहीं है। **शंकराचार्य के अनुसार, 'असुर' उनके लिए है जो केवल अपनी इंद्रियों द्वारा निर्देशित होते हैं। और इसलिए आत्मा का हत्यारा वह है जो अपनी इंद्रियों के दासत्व में है और जो आत्मा की उच्च आकांक्षाओं का दम घोंटता है, और वह जो केवल सांसारिक खोज में तल्लीन रहता है।**

जब वेद के द्रष्टा हमें पूरे सौ साल जीने की सलाह देते हैं, तो इसका मतलब है कि हमारे पास एकमात्र विकल्प है कि हम अपनी लंबी उम्र बढ़ाएँ, घटाएँ नहीं। हालाँकि, यह काफी विचित्र लगता है कि एक व्यक्ति अपनी दीर्घायु बढ़ाने के बजाय खुद को मारने के बारे में सोच सकता है जैसा कि यहाँ वैदिक ऋषि ने कहा। इसका तर्क बहुत स्पष्ट है कि जब कोई व्यक्ति आत्महत्या का प्रयास करता है तो वह केवल अपने उस शरीर को नष्ट कर रहा होता है, जो सजा के लिए कभी भी किसी गलत बात के लिए जिम्मेदार नहीं होता। आश्चर्यजनक रूप से पर्याप्त वृत्ति या आवेग, जो इस कृत्य के आधार पर था, निश्चित रूप से शरीर की शारीरिक मृत्यु के बाद भी जीवित रहेगा। हताशा का यह वीभत्स कृत्य इस तरह से किसी भी तरह से आवश्यक नहीं है। इसके अलावा, यदि कोई व्यक्ति अभी भी जीवित है तो वह उसका हत्यारा कैसे हो सकता है ? जहां तक आत्मा का वध करने की बात है तो यह सर्वथा असम्भव है और इसके लिए 'आत्महत्या' शब्द का प्रयोग अर्थहीन है। किसी के शरीर को नष्ट करने से आत्मा की हत्या कभी नहीं हो सकती। इस संहारक का अर्थ भले ही शरीर की हानि तक ही सीमित हो, फिर भी यह किसी भी संदर्भ से बाहर नहीं है।

तुलसीदास ने रामचरित मानस में ऐसे व्यक्तियों को आत्म हत्यारा घोषित किया है और उन लोगों की निंदा की है जो सच्चे ज्ञान और मोक्ष प्राप्त करने में अपने मूल्यवान मानव जीवन का उपयोग नहीं करते हैं–

जो न तरइ भवसागर, नर समाज एक पाई
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।
(मानस 7/44)

रामचरित मानस इस विषय पर उस बिंदु पर विचार करता है जब राम, रामराज्य की स्थापना के बाद, अपनी प्रजा को आमंत्रित करते हैं और उन्हें आध्यात्मिकता के दिव्य स्वर में संबोधित करते हैं। उनका कहना है कि धरती पर मानव जीवन एक बहुत बड़ा वरदान है और अगर इसका सदुपयोग न किया जाए तो मनुष्य खुद को कष्ट देता है। वह उस समय समय, भाग्य या ईश्वर को दोष देने लगता है। इसलिए, यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन का सही तरीके से उपयोग करने में विफल रहता है, तो वह वास्तव में विष का विकल्प चुन रहा है, जबकि उसके लिए अमृत उपलब्ध है। उनके अनुसार मानव शरीर संसार रूपी महासागर में एक यात्रा नौका के समान है। और वह निश्चित रूप से भगवान की कृपा अनुकूल हवा के रूप में उपलब्ध है। इसलिए, यदि वह उच्च उद्देश्य, आध्यात्मिकता के लिए इसका उपयोग करने का सही विकल्प नहीं चुनता है; वह केवल आत्म-विनाशवादी की अंधेरी दुनिया में खुद को ले जा रहा है।

ईशावास्योपनिषद का चौथा मंत्र इस प्रकार है-

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।

वह अचल है, मन से भी इतना तेज है कि देवता उसके पास नहीं पहुँचते, वह हमेशा आगे चलता है। वह सर्वदा सामने ही उपस्थित रह उन अन्य लोगों को पार कर जाता है जो दौड़ रहे हैं। पवन उसमें जल की स्थापना करते हैं।

भगवान की पहली और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी अविचलता है जो चलती हुई दुनिया के विपरीत है। इस तरह एक चलते हुए पहिये की केंद्रीय धुरी के रूप में उसकी अच्छी तरह से कल्पना की जा सकती है। यदि ईश्वर को गतिमान माना जाता है, तो उसके आधार को अनिवार्य रूप से स्थिर होने की कल्पना करनी चाहिए। उसकी दूसरी विशेषता उसके बिना अन्य के मात्र एक होने की है। उसे आगे मन से भी तेज बताया गया है। वह इस मामले में सबसे तेज चलने वाले देवताओं से भी आगे निकल जाता है। चूँकि वह एक परम सर्वोच्च है, विपरीत ध्रुव भी उसमें मिलते हैं। यह उसका वर्णन करने का एक तरीका है। वह केवल चलते-फिरते सभी चराचर को आत्मसात कर सकता है, जबकि वह कहीं जाता नहीं है।

रामायण में तुलसीदास ने बालकाण्ड में राम के उपरोक्त गुणों का वर्णन किया है, जब भगवान शिव पार्वती जी के अनुरोध पर अपनी कथा सुनाना शुरू करते हैं -

आदि अंत कोउ जासु न पावा ।
मति अनुरूप निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलइ सुनि बिनु काना ।
कर बिनु करम करि बिधि नाना ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहहि प्राण बिनु बास अशेषा ॥
(मानस, बालकांड, 118/2-3-4)

उपनिषद के ऋषि ईश्वर को गति में सबसे तेज मानने के बाद भी नहीं रुकते। गति की यह विशेषता कभी-कभी यह निष्कर्ष निकाल सकती है जैसे दौड़ प्रतियोगिता में भगवान विजेता है। इसलिए, यह पाठ, परमेश्वर के गुणों के पूर्ण सत्य को उनके साथ विरोधाभासों को जोड़कर घर लाने के लिए आगे बढ़ता है। उन्हें कभी-कभी 'सकल विरुद्ध धर्माश्रय' (केवल विरोधाभासी विशेषताओं द्वारा विशेषता) के रूप में परिभाषित किया गया है।

भगवत गीता में भगवान कृष्ण बताते हैं कि उनकी परा (असीमित) और अपरा (सीमित) प्रकृति कैसे संचालित होती है और फिर बताते है कि वह कैसे हर कारण और प्रभाव से ऊपर हैं-

मत्तः परतरं नान्यकिंचदस्ति धनंजय 7/7

अनादि ईश्वर सभी दोषों और गुणों से ऊपर है, उसके हाथ, पैर, आँखें, सिर और कान सब जगह फैले हुए हैं और वह सब कुछ ढँक लेता है। वह प्रत्येक जीव में उपस्थित होकर भी बाहर रहता है; चलते हुए भी अचल है; सूक्ष्म और फिर भी स्थूल; दूर और फिर भी बहुत करीब। वह अविभाज्य सभी प्राणियों के रूपों में विभाजित है। वह सबका पालनहार है; अज्ञात विध्वंसक और फिर भी सभी का निर्माता !

रामचरित मानस के वाल्मीकि जी ने राम के उपरोक्त गुणों का वर्णन निम्न शब्दों में किया है-

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी
जो सृजति जग पालति हरति रूख कृपा निधान की
जो सहससीसु अहीसु महीधु लखनु सचराचर धनी
सुरकाज धरि नरराजु तनु चले दलन खल निश्चर अनी।
अयोध्याकाण्ड 126

केवल पूर्ण ब्रह्म ने अशांत दुनिया को क्रम में रखने के लिए अपनी आंतरिक और बाहरी शक्तियों सीता और लक्ष्मण के साथ राम के रूप में अवतार लिया था।

रामचरित मानस में राम ने अपनी प्रजा को उत्तरकाण्ड में निम्न महत्वपूर्ण संबोधन दिया है-

कबहुंक करि करुणा नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥

नर तनु भव बारिधि कह बेरो । सन्मुख मरुत कृपा मेरो ॥

ईश्वर की कृपा से ही मनुष्य का रूप मिला है। यह संसार के भवसागर को पार करने के लिए एक जहाज के समान है। मेरे द्वारा उसे तेजी से पालने में मदद करने के लिए अनुकूल हवाएं चल रही हैं।

सांख्य दर्शन के अनुसार समस्त सृष्टि के मूत्र में दो ही हैं– प्रकृति और पुरुष। प्रकृति के पांच तत्वों अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में से जल और वायु दो महत्वपूर्ण तत्व हैं। सूक्ष्मता के कम में जल और वायु क्रमशः दूसरे और चौथे हैं। स्थूल तत्व प्रक्रियात्मक रूप से सूक्ष्म तत्वों में विलीन हो जाते हैं।

राम के पास बाली की पत्नी तारा को शांत करने के लिए यह मौलिक दर्शन है, जब उसका पति उसके सामने मृत पड़ा था–

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंचचित अति अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥
रामचरित मानस, किष्किंधाकाण्ड 10/2-3

नश्वर शरीर में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश सम्मिलित हैं। यह आपके सामने यहाँ अपनी लंबी नींद में है। अमर आत्मा के लिए विलाप करने का कोई मामला कहाँ है ?

इस प्रकार तुलसीदास ने अपनी रामायण में वेदांत के गूढ़ दार्शनिक सत्य को सहजता से समाहित किया है। संदर्भ विशेष से यहाँ ईशावास्योपनिषद के 14 में से 4 मंत्रों पर ही यत्किन्चित विचार किया है । शेष पर आगे यथावसर

।इत्यलम ।

–लेखक मानस भारती पत्रिका के प्रधान संपादक है
35 ईडन गार्डन चूनाभट्टी, कोलार रोड, भोपाल–462016
मो.: 9826628267

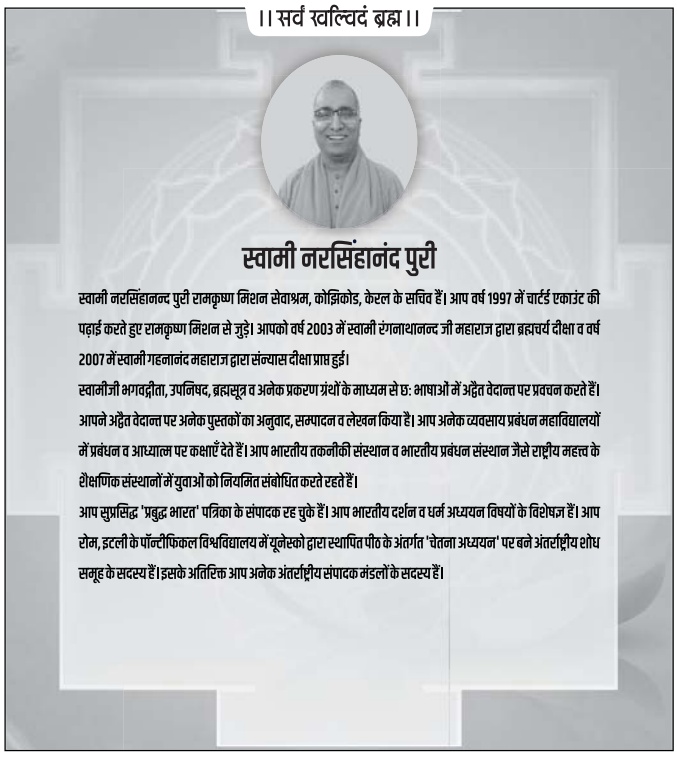

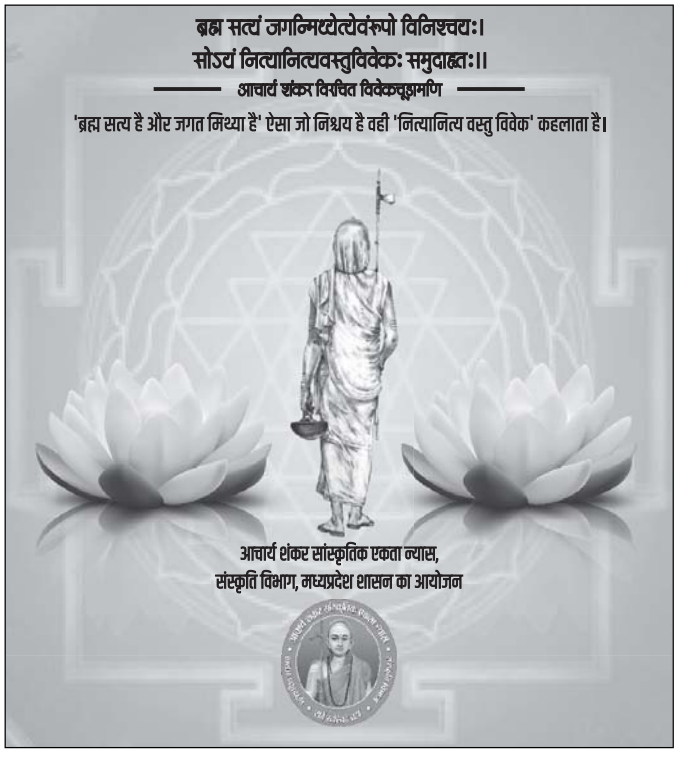

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

– संपादक

आलेख

भारत की लोक संस्कृति में शिव

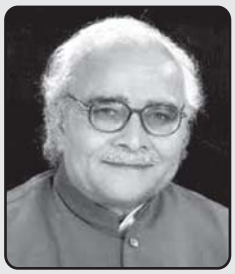

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

भारत की लोकसंस्कृति शिवमय है। पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण, प्रत्येक जनपद में शिव की कीर्ति है, प्रत्येक जनजाति के गीत और कहानियों में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में ''बं बं हर-हर'' का नाद है। भूतपिशाच आदि गणों को साथ लेकर हिमालय के घर की ओर बरात लेकर जा रहे हों , अथवा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने की मुद्रा में हों, वे प्रलय के समय का तांडव-नृत्य कर रहे हों, या कामदेव का संहार करने के लिए तीसरा नेत्र खोला हो, वे भस्मासुर को वरदान दे कर स्वयं ही चक्कर में पड़ गये हों या भगीरथ के आग्रह को स्वीकार करके गंगा के अवतरण के लिए संनद्ध हों, वे श्मशान पर चिता-भस्म लपेटे हुए हों या कैलाश पर साधना-तपस्या में लीन हों, वे गौरा-पार्वती के संग अपने नादिया पर बैठे हुए लोकभ्रमण कर रहे हों, अथवा किसी किसान की सूखी धरती पर शंख बजा कर मेघों को संकेत दे रहे हों, वे प्रलयंकर हों अथवा मृत्युंजय हों, वे वेद की परंपरा के रुद्र हों अथवा अवैदिक-परंपरा के अघोर हों, वे अर्द्ध नारीश्वर हों अथवा हरिहर हों, इसमें तनिक संशय नहीं कि प्रत्येक रूप में शिव शिव ही हैं। यों तो मिथकशास्त्र का 'समुद्र-मंथन' सभ्यता के सोपान की कहानी है, किन्तु समुद्र-मंथन से निकले अमृत की बूँद को पाने के लिए संघर्ष हुआ, लेकिन जो जहर निकला उसे स्वीकार करने को कोई भी तैयार नहीं हुआ। कौन होता? उस विष को कंठ में धारण करने वाला शिव के अतिरिक्त और कौन हो सकता था ?

देशकाल में शिव का इतना विस्तार है कि हिमालय की दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं पर अमरनाथ, केदारनाथ और कुमाऊँ के बागेश्वर जागेश्वर विभाण्डेश्वर, पिनाकेश्वर, भीमेश्वर, हंतेश्वर डंडेश्वर से लेकर तमिलनाडु के रामेश्वर तक। झारखंड के वैद्यनाथ, उज्जैन के महाकाल, सौराष्ट्र के सोमनाथ, नर्मदा नदी के तट पर ओंकारेश्वर, नासिक गोदावरी नदी के किनारे त्र्यम्बकेश्वर, आंध्र प्रदेश के कर्नूल श्रीशैलम में मल्लिकार्जुन , गुजरात में नागेश्वर, महाराष्ट्र की सह्याद्रि पर्वत श्रृंखला पर भीमशंकर और घृष्णेश्वर, शिव के त्रिशूल पर बसी काशी में विश्वनाथ, बंगाल में दक्षिणेश्वर उन्मत्त-भैरव तारकनाथ, केरल के अन्तिमहाकालन, आन्ध्र के श्रीवैंकटेश्वर, गोआ के श्रीमंगेश, महाराष्ट्र के बालुकेश्वर, कुरुक्षेत्र के स्थाण्वीश्वर, भारत के कंकर-कंकर में शंकर का भाव बसा हुआ है। चिदम्बरम में नटराज, तिरुवण्णामलै: जहां पार्वती ने शिव का सान्निद्ध्य प्राप्त करने के लिये तप किया था। कश्मीर के अमरनाथ। नेपाल के पशुपतिनाथ। कैलास -पर्वत के बिना तो शिव का ध्यान भी संभव कैसे होगा? भारत शिव-रूप है!

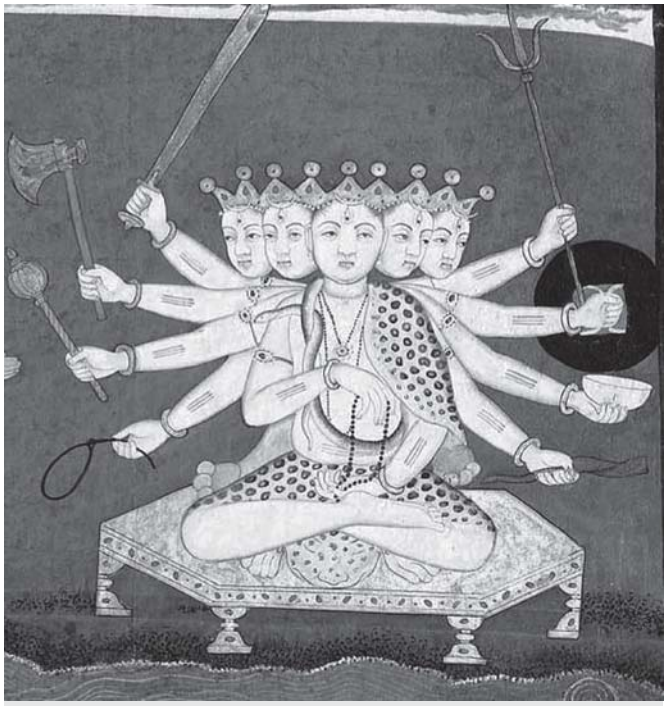

चित्र : पद्मश्री से सम्मानित श्री विजय शर्मा, चम्बा

यह चित्र बोस्टन म्यूजियम अमेरिका के संग्रह में है। गुलर शैली काल 1740 ईस्वी

स्थान-स्थान पर हजार-हजार किंवदन्तियाँ शिव से जुड़ी हुई हैं उदाहरण के लिए मणिकर्ण की कहानी है। कुल्लूघाटी के पास मणिकर्ण है! वहाँ धरती से खौलते हुए पानी का एक सोता निकलता

है! उस कुंड में दाल और चावल की पोटली पाँच मिनट में पक कर तैयार हो जाती है! उस स्थान पर प्रो. रमेशकुन्तल मेघ ने एक मिथक कथा सुनी थी कि इस इलावर्त में शिव-शिवा विहार कर रहे थे! शिव ने शोभा पान के लिए उमा के मुख पर झूलती हुई लट को उँगलियों से हटाया, लज्जा में त्रिभंग हुई पार्वती की नथ [नाक का आभूषण] का मणि नदी में गिर पड़ा! बहुत खोज की किन्तु मणि नहीं मिली! शिव ने ध्यान लगाया, वह मणि तो शेष नाग ने धारण कर ली थी! शिव ने त्रिशूल बेधा तब शेषनाग ने मणि लौटा दी! तभी से पार्वती नदी तीन दिशाओं में बँट गयी! यह जगह मणिकर्ण नाम से प्रख्यात हो गयी। शिवालक पर्वतश्रेणी शिव का जटाजूट ही तो है, उसी ने तो गंगा को संभाला था! अलकनन्दा!! हिमालय पार्वती का पिता है, शिव का विवाह हिमालय के आंगन में हुआ था किन्तु लोक-सरस्वती कहती है कि पार्वती ने शिव पर जो चावल उछाले, उनमें से सात चावल सात रंग की बालू बन कर कन्याकुमारी में बिखर गये।

तमिलनाडु में अय्यनार देवता शास्ता के रूप में जाने जाते हैं। अरकोट क्षेत्र में ''अय्यनार'' की कहानी पद्मासुरन (जिसे पुराण-कथाओं में भस्मासुर के नाम से जाना जाता है) की कहानी से संबंधित है, जिसे शिव ने वरदान दिया था कि वह जिस किसी के भी सिर पर हाथ रखेगा, वह भस्म हो जायेगा, पद्मासुरन स्वयं शिव के मस्तक पर हाथ रखने को उद्यत हुआ तब महाविष्णु मोहिनी के रूप में प्रकट हुए। मोहिनी के कथनानुसार असुर ने अपने ही सिर पर हाथ रखा और भस्म हो गया। अब शिव विष्णु को मोहिनी के रूप में देखना चाहते हैं, लोककहानी ने बतलाया कि मोहिनी को देखा तो शिव उत्तेजित हुए, स्खलित हो गए। शिव का वीर्य धरती पर न गिरे इसलिए मोहिनी ने वह अपने हाथ में ले लिया, उससे अय्यनार का जन्म हुआ। तेलुगु में उनका नाम पोटुराजू है और उन गांवों में पीठासीन रेणुका देवी के भाई हैं। मिथक-कहानी यह है कि पोटा राजू ने अम्मा द्वारा मारे गए राक्षसों का रक्तपान किया था। राजस्थान में 'गवरी' आदिवासी भीलों का आदिम नृत्यानुष्ठान है जिसके मूल में आदिदेव महादेव शंकर और भस्मासुर का यही आख्यान वर्णित है। गवरी का नायक राईबूड़िया है।

बहुत लोग समझते हैं कि वेदों में आने वाले शिश्नदेव, (ऋग्वेद 7.1.5,10.19.3.) आर्येतर जाति के लिंगपूजक थे। पुराणों में शिव की कथाएं हैं किन्तु वहाँ मुनिगण और शिव के बीच एक सांस्कृतिक- संघर्ष दिखाई देता है। महादेव नग्न - वेश में नवीन तापस का रूप धारण करके मुनियों के वपोवन में आये (वामनपुराण 43 अध्याय 51 , 62 श्लोक)। मुनि-पत्नियों ने उन्हें घेर लिया(वही, 63-69 श्लोक)। मुनिगण अपने ही आश्रम में मुनि-पत्नियों की ऐसी अभव्य कामातुरता देखकर 'मारो, मारो' कहकर काठ पाषाण आदि लेकर दौड़ पड़े,: **क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमे तु स्वयोषिताम्। हन्यतामिति सम्भाष्य काष्ठपाषाणपाणयः। [वामनपुराण 43 अध्याय 70)**

यह कहकर उन्होंने शिव के भीषण ऊर्ध्वलिंगको निपातित किया - पातयन्ति स्म देवस्य लिंगमूर्ध्वं विभीषणम्। (वही, 71) बाद में मुनियों के मन में भी भयका संचार हुआ। ब्रह्मा आदि ने उन्हें समझाया बुझाया और अन्त में मुनि-पत्नियों की एकान्त अभिलषित शिवपूजा प्रवर्तित हुई! [वामन अध्याय 43-44] कूर्मपुराण में भी ऐसी ही कथा है कि पुरुष-वेशधारी शिव नारी-वेशधारी विष्णुको लेकर सहस्र मुनिगण-सेवित देवदारु-वन में विचरण करने लगे। उन्हें देखकर मुनि-पत्नियाँ कामार्त्त होकर निर्लज्ज आचरण करने आने लगीं (13-17 श्लोक)। मुनि-पुत्रगण भी नारी-रूपधारी विष्णु को देखकर मोहित हुए। मुनिगण मारे क्रोध के शिव को अतिशय निष्ठुर वाक्य से भर्त्सना करने और अभिशाप देने लगे अतीव पुरुष वाक्यं रूपं वा प्रोचुर्दव कपर्दिनम्। शेपुश्च शापैर्वविधैर्मायया तस्य मोहिताः। (कूर्म0 37, 22) किन्तु अरुन्धतीने शिवकी अर्चना की। ऋषिगण - शिवको 'यष्टि-मुष्टिप्रहार' या लाठी और घूँसेकी चोट करते हुए बोले- 'तू यह लिंग उत्पाटन कर महादेवको वही करना पड़ा। पर बाद में देखते है कि इन्हीं मुनियों को इसी शिव-लिंगकी पूजा स्वीकार करनेको बाध्य होना पड़ा! शिवपुराण के धर्म संहिता के दसवें अध्याय में है कि शिव ही आदि देवता हैं ब्रह्मा और विष्णु को उनके लिंग का आदि मूल अन्वेषण करने जाकर हार माननी पड़ी (16-21)। देवदारु वन में शिव विहार करने लगे (78-79)। मुनिपत्नियाँ काम-मोहित होकर नाना-विध अश्लील आचार करने लगीं! (112-128) शिव ने उनकी अभिलाषा पूरी की (158)। मुनिगण काममोहिता पत्नियों को सम्हालने में व्यस्त हुए ! [160]पर पत्नियाँ मानी नहीं! अन्य सब मुनि-पत्नियों ने शिव को कामार्त होकर ग्रहण किया था किन्तु अरुन्धती ने वात्सल्य भाव से पूजा की! [178] भृगु के शापसे शिवका लिंग भूतलमें पतित हुआ (187) 7 भृगु धर्म और नीतिकी दुहाई देने लगे (188-192)। अन्त में मुनिगण शिवलिंग की पूजा करने को बाध्य हुए (203-207)। यही कथा स्कन्दपुराण, महेश्वरखंड, पष्ठाध्याय में है और यह एक ही कथा लिंगपुराण (पूर्वभाग 37, अध्याय, 33-50) में भी है । वायुपुराणके

महेश्वरखण्ड में शिव की कथा कही गई है। नागरखण्ड के शुरू में भी वही कथा है। आनर्तदेश के मुनिजनाश्रय वनमें किस प्रकार भगवान शंकर नग्न वेश में पहुँचे (1-12), किस प्रकार मुनि-पत्नियों का आचरण शिष्टताकी सीमा पार कर गया (13-17), मुनिगण सब देखकर क्रुद्ध होकर बोले - रे पाप, तूने चूंकि हमारे आश्रम को विडम्बित किया है, इसलिए तेरा लिंग अभी यह भूपतित होवे - **यस्मातपापत्वयास्माकं आश्रमोऽयं विडम्बितः। तस्माल्लिंगं पतत्वाशु तवैव वसुधातले।** (पद्मपुराण, नागरखण्ड 1-20) किन्तु यहाँ भी मुनियोंको झुकना पड़ा। जगत में नाना उत्पात उपस्थित हुए (23-24), देवतागण भीत हुए और धीरे-धीरे शिव-पूजा स्वीकार कर ली गई। दक्ष-यज्ञ में शिव के साथ दक्षका विरोध वस्तुतः आर्य वेदाचारके साथ आर्येतर शिवोपासना का विरोध ही है! दक्ष के यज्ञ में शिव नहीं बुलाये गये, और शिवहीन यज्ञ भूत-प्रेत-प्रमथादि द्वारा विध्वस्त हुआ, इसी से समझा जा सकता है कि शिव उस समय तक आर्येतर-जातियों के देवता थे! शिव किरातवेशी, शिवानी, शबरी-मूर्ति, शिव शबर -पूजित थे, ये सब कथाएँ नाना पुराणोंमें नाना भाव से मिलती हैं। [भारत में नाना संस्कृतियोंका संगम आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन विशाल भारत [भाग 25 अंक 4 चैत्र 1906 1940 अप्रेल ,पूर्णांक 148]

कालिकापुराण में वसंत -जन्म का उल्लेख है कि शिव के मन में काम विकार पैदा करने के उद्देश्य से देवताओं ने काम को शिव के पास भेजा तो कामदेव शिव के तेज से घबरा गया - अकेला कैसे जाऊं? तब ब्रह्मा ने वसन्त का सृजन किया। वसन्त काम का सहज-सखा है। शिव की क्रोधाग्नि से जब काम भस्म हो गया, तब कामदेव की पत्नी रति पार्वती के पास जाकर विलाप करने लगी। पार्वती तो करुणा हैं, उन्होंने भगवान शिव को उसकी व्यथा सुनाई, तब शिव ने कहा कि जगदिदमनंगो विजयते। अर्थात काम अशरीरी होकर भी समस्त विश्व के मन को मथ कर विजय प्राप्त करेगा। वसंतपंचमी काम के पुनर्जीवन का दिन है।

उमा शिव को पाने के लिये तपस्या कर रही थी। स्वयं शिव एक बूढेबाबा का वेश धारण करके आगये-किसे पाना चाहती हो? शिव को ? अरे वह, जो भिक्षुक है? भयंकर है? शमशानवासी है? चिताभस्म धारण करता है? अनार्य है? उमा को क्रोध आया, अरे बाबा, क्या बोलते हो? अकिंचनः सन् प्रभवः स सम्पदां। अकिंचन होते हुए भी वे समस्त ऐश्वर्य का मूल हैं। अमंगल वेश होते हुए वे समस्त मंगल के कारण हैं।

शैव-उपासना की परंपरा किस प्रकार श्रीकृष्ण में सम्मिलित हो रही है, इसका उदाहरण एक लोकगीत है, हालांकि यह सूरदास के जमाने में भी प्रचलित रहा होगा। क्योंकि सूरसागर में यह पद है - मैं जोगी जस गाया रे बाला। कृष्ण ने जन्म लिया है, यह खबर सुन कर कैलास -पर्वत से चल कर शिव गोकुल [गोप-बस्ती] में आकर अलख जगाते हैं। ब्रज की गोपियां जाकर जसोदा से कहती हैं - देखौरी एक बाला जोगी द्वार तिहारे आया है री। अरी जसोदा, आज तो आज तो तेरे दरबाजे पर एक जोगी आया है। शरीर में भभूत रमी है, बडी-बडी जटा है, माथे पर चन्द्रमा है, गले में नाग लटका है। कंचनथाल में भिक्षा सजा कर मैया जसोदा दरबाजे पर आई, जोगी बोला - ना चहिये तेरी दौलत दुनियां ना चहिये धन माया हैरी, अपने गुपाल जी कौ दरस कराय दे, जा कारन जोगी आया है री। तू मोतियों की माला ले, कंचन थार ले! जोगी, ऐसी जिद क्यों करता है? तुझे देख कर मेरा लाल डर जायेगा। मैया, हमारी भिक्षा तो गोपालजी का दर्शन करना है। मैया तो डर रही थी। जोगी दरबाजे से लौटा किन्तु लाला का रोना शुरू हो गया। चुप ही न हो। थाली बजायी, नजर उतारी, दूध से लगाया पर लाला तो चुप नहीं हो रहा । रोता ही जा रहा है। क्या करूं ? अरी मैया, यह तो उस जोगी का ही कुछ चेटक है। उसे बुलवाओ। जोगी तो गोकुल [गोप-बस्ती] के ही पास एक कुंड पर बैठा था। गोपी ने कहा, चल रे जोगी, नन्दभवन में जसुदा तोहि बुलाबै। जोगी आया। जोगी ने नन्दलाला को गोद में लिया तो लाला किलकने लगा, बिथा भई सब दूर बदन की किलक उठे नदलाला। जसोदा जोगी से बिनती करने लगी - अरे जोगी, तू तो हमारे ब्रज में ही बस जा, तू तो चेटक वाला है। जब जब मेरौ लाला रोबै तब-तब दरसन दीजै।

चोरों में शिव की कथा इस प्रकार से है कि -चोर घंटा उतारने को शिव-विग्रह पर चढा, बस इसी बात पर खुश हो गये कि तैने तो अपने को ही अर्पित कर दिया। कुछ बुरा-बुरा तो जैसे उनके मन में आता ही नहीं! बोल, वत्स, वरं ब्रूहि! वर मांगो!! हम बडे प्रसन्न हैं।

इन्हीं बातों को देख कर तुलसी कहते हैं, बाबरौ राबरौ नाह भवानी!! मां अन्नपूर्णा, तुम्हारा नाह तो एकदम बाबला है!

आदिम सभ्यता का प्रतीक है। कई मूर्तियों में शिव को मूंछों वाला दिखलाया गया है।

लाँगुरिया गीतों में वीर-भाव के साथ ही माधुर्य और वात्सल्य भी है। लकुलीश-भैरव ही लांगूल भैरव हैं। अनेक स्तुतियों में शिव को लकुलीश कहा गया है। लकुलीश को शिव का अवतार माना गया। ऐसी प्रतिमाएं भी हैं, जिनमें शिव लकुट धारण किये हैं।

शिवरात्रि- व्रत के दूसरे दिन पारणा होता है, और ब्रज में यह

परंपरा है कि बम्भोले [जोगी] को आदरपूर्वक बुलवाया जाता है। रोली चावल से उसके खप्पर की पूजा की जाती है। उसे मूँग-भात-झोर [कढी] रोटी से जिमाया जाता है। फिर माँ-दादी कहती हैं - सिंगी बजा! जोगी अपने गले में लटकी हुई, सिंगी को बजाता है। बाहर खेल रहे बच्चों -किशोर-किशोरियों को मालूम पड़ जाता है कि इस घर में जोगी आया है तो वे पौरी के किबाड़ बन्द कर लेते हैं। जोगी से पूछते हैं - अपने गुरु का नाम बताओ। वह औघड़नाथ जैसे कुछ नाम बतलाता है। उसके नाथ-नामों को सुन कर किबाड़ खोल दिये जाते हैं और वह किसी दूसरे घर का पूज्य बन जाता है। जब हम इस परंपरा पर ध्यान देते हैं तो शिवरात्रि से और शिव-पूजा की परंपरा से जुड़ा हुआ। जोगी-संस्कृति का एक सूत्र मिल जाता है। इन नाथ -योगियों का शैव-परंपरा से अभिन्न-संबंध है। ये नाथ-जोगी ही शिवरात्रि-जागरण के पुरोहित हैं और ये ही शिवरात्रि को 'शिवव्यावला-गाथा' का गायन करते हैं।

यदि लोकवार्ता का कोई अध्येता भारत के लोकमानस का अध्ययन करना चाहता है तो उसे भोलानाथ से स्पष्ट कोई दूसरा सूत्रग्रन्थ नहीं मिल सकता। सचाई तो यह है कि शिव को छोड कर भारत के लोकमानस का कोई भी अध्ययन पूरा हो ही नहीं सकता है ? शिव तो भारत का लोकमन हैं। वह आर्य भी है, अनार्य भी है, वह द्रविड भी है, वह कोलकिरात भी है वह क्या नहीं है ? वह जितना देवों का है उतना ही असुरों का है। शिव मानो भारतीयता की मूर्तिमान व्याख्या हैं। इससे बडी एकात्मता कहां मिलेगी ? शिव भारत भावरूप हैं। लोकमानस की वह विराट भावसंपदा शिव की मंगलमूर्ति में समाहित है। भारत के वे सभी कबीले उनके बराती हैं। भारत की समस्त विविधताएँ ? और अनेकताएँ की, समस्त भेद और भिन्नताएं शिव में आकर एकरस एकाकार हो जाती हैं! शिव के यहां न कोई जातिभेद है न वर्णभेद ? छूआछूत का भाव उसकी देहरी को भी नहीं लांघ सका। शिव से बडा अघोरी भी कौन है ? शिव से बडा कोई वैष्णव है क्या ? वैष्णवानां यथा शंभु:। वह विष्णु में ऐसा रमा कि हरिहर हो गया और शक्ति में ऐसा रमा कि अर्धांगीश्वर हो गया। उससे बडा सर्वहारा कौन है ? भारत के आम-आदमी को देखिये और फिर शिव को देखिये! कितना भोला है, कितना सरल-सहज है, किन्तु प्रलयंकर भी वही है। लेकिन यह लोक जहर ही तो पीता है। शिव विश्वंभर है।

महादेव की बरात का कुनबा प्रागैतिहासिक-भारत के गणगोत्रों का कुनबा है। आचार्य क्षितिमोहनसेन भारतीयसंस्कृति और मिथकशास्त्र के महान-अध्येताओं में से एक थे, शान्तिनिकेतन में गुरुदेव के साथ रहे थे, उन्होंने भारत के मिथकशास्त्र का अध्ययन किया और भारत की समन्वयी-परंपरा को खोजा था और उन्होंने एक शोधनिबन्ध लिखा था। भारत में नाना संस्कृतियों का संगम। उन्होंने लिखा कि-भारत के इतिहास में अनेक जातियों का उल्लेख मिलता है - यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, किरात, किन्नर, नाग, निषाद, देव ,असुर आदि। उनसे भी पहले कबीला-युग में गणगोत्रों की विविधता मिलती है! ध्यान देने की बात यह है कि राक्षसराज रावण भी शिव का उपासक है, यक्षराज कुबेर भी शिव का उपासक है, शिव का किरात-रूप तो पुराण-प्रसिद्ध है ही, पिशाच मांसाहारी थे, किन्तु वे भी शिव के ही उपासक हैं। महादेव के गण हैं। महादेव की बरात का कुनबा प्रागैतिहासिक-भारत के गणगोत्रों का कुनबा है। हस्तिगणगोत्र का देव गणेश, मूषक, नागजाति का देव सर्प, चन्द्र-उपासकों का चन्द्र, नन्दीगण, मयूरगण, गंगा आदि कितने ही देव महादेव में समाये हुए हैं ? पुराणों में ऋषिलोग लिंगपूजा का निषेध करते दिखाई देते हैं, **यस्मात्पापत्वयास्माकं आश्रमो यं विडंबित:। तस्मात लिंगं पतत्वाशु तवैव वसुधातले।[पद्म]**

''शिव तो भारत का लोकमन हैं। वह आर्य भी है,अनार्य भी है, वह द्रविड भी है, वह कोलकिरात भी है। वह क्या नहीं है ? वह जितना देवों का है उतना ही असुरों का है। शिव मानो भारतीयता की मूर्तिमान व्याख्या हैं इससे बडी एकात्मता कहां मिलेगी ? लोकमानस की वह विराट भावसंपदा शिव की मंगलमूर्ति में समाहित है। भारत के वे सभी कबीले उनके बराती हैं। शिव भारत भावरूप हैं। पशुपति है। वह शिव है और रुद्र भी है। तीन लोक बस्ती में बसाये आप बसे वीराने में। श्मशानवासी है। वह विषपायी है। सबको अमृत बांट कर वह जहर पी जाता है। 'यदि लोकवार्ता का कोई अध्येता भारत के लोकमानस का अध्ययन करना चाहता है तो उसे भोलानाथ से स्पष्ट कोई दूसरा सूत्र-ग्रन्थ नहीं मिल सकता। सचाई तो यह है कि शिव को छोड कर भारत के लोकमानस का कोई भी अध्ययन पूरा हो ही नहीं सकता है ? भारत में विविधता ? और अनेकता भेद-भिन्नता की बात करते हैं किन्तु आप गौर से देखिये क्या सचमुच वे सारे भेद शिव में आकर एकरस एकाकार हो गये हैं! उसके यहां कोई जातिभेद है न वर्णभेद ? शिव से बडा अघोरी भी कौन है, छूआछूत उसकी देहरी को भी नहीं लांघ सकी। शिव से बडा कोई वैष्णव है क्या ? वैष्णवानां यथा शंभु:। वह विष्णु में ऐसा रमा कि हरिहर हो गया और शक्ति में ऐसा रमा कि अर्धांगीश्वर हो गया। उससे बडा सर्वहारा कौन है ? भारत के आम-आदमी को देखिये और फिर शिव को देखिये ! कितना भोला है, कितना सरल-

सहज है, किन्तु प्रलयंकर भी वही है। लेकिन यह लोक जहर ही तो पीता है। शिव वह विश्वंभर है पशुपति है। वह शिव है और रुद्र भी है। तीन लोक बस्ती में बसाये आप बसे वीराने में। स्मशानवासी है। वह विषपायी है। सबको अमृत बांट कर वह जहर पी जाता है।

देश के भिन्न-भिन्न लोगों ने शिव के रूप में अपने को ही खोजा है,अपने को ही पाया है??

लोकगीतकार कहता है कि मैं बालबच्चेदार आदमी हूँ ,मुझे तो बालबच्चेदार भगवान ही चाहिये।

दलित-महिला? शिवजी का एक गीत गा रही थीं, उसका सारांश है कि एक दिन पार्वती ने शिवजी से कहा कि -'हमें चूडियां पहनाओ!' शिवजी बोले - हमारे पास पैसा ही नहीं है, चूडियां कहां से लायें? पार्वती ने कहा कि -' सारे जगत में तुम्हारी साख है,कहीं से उधार मिल जायेगा!' शिवजी बोले -हमारे पास न गांव है, न घर, न खेत, हमें कौन उधार देगा? अच्छा, तो तुम्हारे पास चिलम के लिये तो पैसा है? चूडियों के लिये पैसा नहीं है? नन्दी को गिरवी रख दो, हमें चूडियां पहनाओ, इस पर शिवजी नाराज हो गये ।'देखो, इसी के बल पर तो मैं नौखंडी धरती पर विचरण करता हूं, इसका नाम मत लेना!'शिव-पार्वती की समस्या परिवार की वैसी ही समस्या है। पैसे की कमी है, शिवजी के पास बीड़ी पीने के लिए पैसा नहीं है।

वैसे तो पुराणों में शिवकथाओं का विस्तार समुद्र की तरह है, फिर भी जनपदों में शिव-कथा-चक्र वाचिक-परंपरा में निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। आदि-वासियों में अपनी-अपनी जातियों की उत्पत्ति को शिव से जोडा जाता है। उदाहरण एक दिन शिव वन में विचरण कर रहे थे। वे एक लता पर मुग्ध हो गये। लता से विवाह कर लिया। काले रंग का पुत्र जनमा। बडा हुआ। उसने शिव के नन्दी को खूब मारा। शिव ने नाराज होकर उसे घर से निकाल दिया। कोलभील इसी पुत्र की सन्तान हैं। चम्बा और भरमौर का एक प्रसिद्ध गीत है 'सिव कैलासों के वासी, धौलीधारों के राजा संकर संकट हरणा.....। भरमौर में हिमालयी जनजाति गद्दी अपने को शिव का ही रूप मानती है - धूड़ अर्थात शिव एक आम आदमी की तरह पहाड़ी दर पहाड़ी घूमता है और पार्वती उसे नदी नालों में ढूंढती है-'रिड़ियां तां रिड़ियां धूडू बोला नहठदा, नाले ता खोहले गौरां तोपदी।'एक दिन पार्वती भील-कन्या का रूप धारण करके नाचने लगीं! महादेव उस रूप पर मोहित हो गये और वे भी भील-कन्या के साथ नाचने लगे! शिव ने भील-कन्या से प्रणयदान मांगा! भील-कन्या ने उन्हें खूब नचाया, छकाया और कहा कि मुझे पत्नी बनाओ तो रतिदान करूं! महादेव बोले ठीक है! भील-कन्या बोली लेकिन मैं पार्वती के साथ नहीं रहूंगी! शिव बोले उसे तो मैं पीहर भेज दूंगा। अब पार्वती अपने असली रूप में आगयीं, बोली देख लिया तुम्हारे प्यार का ढोंग!! अब मैं तो पीहर जा रही हूं! शिव अपनी जटाओं से पार्वती के पैर पोंछने लगे और उन्हें मना कर घर लाये। यह राजस्थान के भील-अंचल की कथा है।

किसान की कहानी है कि शिवजी किसान हैं। ऊँचा सा गाँव और हराभरा खेत। एक सुकुमार काला हिरण आता है। गेंहूँ के पौधों को चरने लगता है गौरा पार्वती कहती हैं -नाथ ! देखो, तुम्हारी आँखों के ही सामने तुम्हारी फसल नष्ट हो रही है। हे भोले शिव ! अपना बाण साधो। हिरण को मारो। भोलानाथ उस सुकुमार काले हिरण को देखते हैं सोचते हैं कि इसके भी तो परिवार होगा। वे कहते हैं पार्वती , मेरी माँ भी इसी हिरण की तरह साँवली हैं। मेरी बहन भी इसी हिरण की तरह सुकुमार है, मैं इसे कैसे मारूँ ?

एक बार भगवान शंकर ने लोगों को नाना प्रकार के पाप करते हुए देखा, तो कोप किया.और निश्चय कर लिया कि जब तक लोग पाप करना नही छोड़ेंगे, तब तक मैं शंख नही बजाऊंगा। भगवानशंकर ने शंख नही बजाया, शंख नही बजा, तो बादलों ने वर्षा नहीं की। वर्षा नहीं हुई, तो पृथ्वी पर अकाल पड़ गया। क्लेश, संताप और दुखों की कोई सीमा नहीं रही। दुनियां ने खूब प्रायश्चित किया, पर शंकर ने शंख नहीं बजाया। एक दिन शंकर-पार्वती आकाश मार्ग से जा रहे थे उन्होंने देखा कि जेठ की दोपहरी में एक किसान अपना खेत जोत रहा था। पसीने से सराबोर लेकिन परन्तु अपनी धुन में मगन। शंकर-पार्वती विमान से उतरे - आये और बोले , 'पागल किसान पानी बरसे तो बरसों बीत गये, तू सूखी कठोर धरती को जोत कर बेकार मेहनत कर रहा है ?'' सो तो बात ठीक है, मगर हल चलाने का अभ्यास कहीं भूल न जाऊं। यदि हल चलाना भूल गया तो वर्षा से भी क्या होगा? इसलिये अभ्यास बनाये रखता हूं! किसान के बोल भगवान शंकर के कलेजे को पार कर गये। वे सोचने लगे कि - मुझे भी शंख बजाये बरसों बीत गये हो गए , कहीं मेरा भी अभ्यास तो नहीं छूट गया?? भगवान शंकर ने झोली में से शंख निकाला और फूंक लगायी। बादलों को संकेत मिल गया। घटाएं घुमड़ने लगीं चारों ओर जलमयी - जलमयी हो गयी।

महादेव हल हाँकौ ईसर!
हल हाँकौ महादेव हल हाँकौ ईसर!
दुनियाँ ने धन्धे लगाय दीजो जी!
भोलोड़ा पारबती थे बोल नीं जाणो
बैल कठा सूँ मँगावस्याँ जी

नंदी मँगावो भोला महादेव
जणी रो बैल बनावस्याँ जी
भोलोड़ा पारबती थे बोल नीं जाणो
रास कठा सूँ मँगावस्याँ जी
साँपाँ रा सोंदरा मेलाबो भोला महादेव
जणी रा रास बणावस्याँ जी
भोलोड़ा पारबती थे बोल नीं जाणो
बीज कठाँ सूँ मँगावस्याँ जी
समन्दा रा मोती मँगावो भोला महादेव
जणी रा बीज बणावस्याँ जी।

एक दिन पार्वती ने ईसर से कहा कि मेरी सहेली ने तिलक बनवाया है, मुझे भी तिलक बनवाओ! ईसर बोले तमें सांवला तिलक नहीं ओपसी जी! तुम्हारी सहेली तो गोरी है,तुम सांवली हो! गौरी रूठ कर पिता हिमालय के यहां चलदी। ईसर ने देखा कि घर में गौरा नहीं है तो गौरा को ढूंडते हुए ईसर भी चल दिये। सबसे पूछने लगे तुमने कहीं गौरा को देखा है? राजकुमार से पूछा, बुढिया से पूछा और फूलपत्ती तोडती हुई बालिकाओं से पूछा!

बालिकाओं ने पूछा गौरी किस उनहारे की सांवला रंग और झिलमिल राखडी पहने हैं! हां,उस मढी में बैठी है। ईसर मढी में पंहुचे। गौरी बोली – मेरी मढी में मत आओ, काले पड जाओगे! मैं काली, मेरी मां काली और मेरा बाप भी काला। नहीं गौरा, तुम तो इतनी गोरी हो! तुमको श्रीलंका से सोना लाऊंगा, श्रीसागर से मोती लाऊंगा और तिलक बनवाऊंगा। सारी सहेली तुम्हें तिलक पहनाएंगी।

भोलानाथ गौरा पार्वती के साथ नादिया पर बैठे भ्रमण करते रहते हैं, सबकी सुधबुध लेते रहते हैं। जहां भी किसी का दुख दीख जाता है, गौरा ठहर जाती हैं,शिव से कहती हैं। 'नाथ, इसका दुख दूर करो। शिव कहते हैं गौरा, यह तो विधि का विधान है, कर्मफल है, इसमें तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता। नाथ, विधि का विधान तुम जानो परंतु जब तक इसका दुख दूर नहीं होगा, मैं पानी नहीं पीऊंगी। बहुत बात होती हैं, पर गौरा तो करुणा हैं, अंत में शिव के लिये विधि के विधान को बदलना पड़ता है।

भगवती पार्वती ने देखा कि लोग गंगा–स्नान के लिए आये चले जा रहे हैं, आये चले जा रहे हैं, आये ही चले जा रहे हैं । उन्होंने भगवान शिव से पूछा 'इतने लोग जो गंगास्नान करने के लिए आ रहे हैं,तो क्या इन सभी के पाप–ताप समाप्त हो जाएंगे? पाप करने वाले के लिए दंड और पुण्य करने वाले के लिए पुण्य फल का जो विधि का विधान है, वह मिट जाएगा? भगवान भोलेनाथ बोले कि 'नहीं, ऐसी बात नहीं है। पार्वती ने पूछा तो कृपानाथ, फिर क्या बात है? भगवान शिव बोले –गौरा ,तुम स्वयं ही चल करके देखो। शिव और गौरा दोनों गंगा घाट की ओर चल दिये। भगवान शिव ने एक कोढ़ी का वेष बना लिया, कुष्ठ रोग उनके शरीर से पसीने की तरह निकल रहा था, चारों ओर मक्खियां भिनभिना रही थीं, गंदगी थी। तो वहां जो इतने लोग, इतने लोग,गंगा– स्नान के लिए आ रहे थे, शिव को देखते तो घृणा और ग्लानि से नजर बचाने की कोशिश करते और गौरा को भर –नजर देखते और देखते ही चले जाते। किसी किसी ने तो व्यंग्य भी किया, किसी–किसी ने कहा 'अरे तू किस के पीछे पड़ी हुई है, चल मेरे साथ चल।' इस प्रकार की अनेक फब्तियां लोग कर रहे थे। तो हजारों की भीड़ चली–चली जा रही थी।

महादेव जंगल में जाते हैं। गौरा शिव से साथ चलने की जिद करती हैं। वहां गौरा को प्यास लगती है, वे जलाशय पर जाती हैं, जहां सिर पर मटकी रख कर महिलाएँ आ रही हैं, जा रही हैं, नहा रही हैं, कहानी कह रही हैं। गौरा पूछती हैं –आज क्या है? महिलाएं कहती हैं कि – तू परदेसिन है क्या? यह भी नहीं जानती कि आज गणगौर है? 16 गुना छिरक कर दान किये जाते हैं, अपने सुहाग के निमित्त! गौरा मिट्टी के गुना बना कर बुढिया को दान करती हैं। महादेवजी ने नाद में सुहाग घोर दिया और सभी महिलाओं को छींटे लगाये किन्तु ऊंचीजात की बैयरबानी सजबज कें देर से आयीं, सुहाग निभट गयौ? महादेव जी ने उंगरिया चीर के दोबारा सुहाग घोरा किसी को कमती छींटा लगे किसी को आधेअधूरे! जिनको आधेअधूरे छींट लगे उनका सुहाग भी आधा–अधूरा।

शिव पार्वती के संग चौपड खेल रहे थे, शर्त लगी कि जो हारेगा, उसे कहानी सुनानी होगी, ऐसी कहानी, जो किसी ने भी न सुनी हो! शिव 'बाजी' हार गये। अब शिव को पार्वती से ऐसी कहानी कहनी थी, जो किसी ने भी न सुनी हो। शिव ने कहानी प्रारंभ की, प्रवेश वर्जित था, क्योंकि अन्तरंग कहानी थी, किन्तु शिव के गण तो शिव के ही गण ही ठहरे। एक गण ने न केवल वह अन्तरंग कहानी छिप कर सुन ली, अपितु पार्वती की एक सखी को भी सुना दी। पार्वती की सखी ने वह कहानी पार्वती को सुना दी। पार्वती ने कुपित हो कर शिव से कहा कि – आपने तो छल किया, वह कहानी तो सभी ने सुन रक्खी है! शिव ने ध्यान किया और जान लिया कि अमुक गण ने छिप कर कहानी सुनी थी। शिव ने गण को शाप दिया कि – जाओ, मनुष्य–योनि में जन्म लो! उसने शापोद्धार के लिये

याचना की तब शिव ने कहा कि –यह कहानी किसी अभिशप्त शिव–दास [गण] को सुनाओगे, तब तुम्हारा शापोद्धार होगा। गण मनुष्य–योनि में आकर वन में शापग्रस्त शिव–दास को कहानी सुनाता है। 'बृहत्कथा' वही कथा है।

मानवशास्त्रियों ने संसार की आदिमजातियों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष दिया है कि भावावेग की अभिव्यक्ति का सबसे पहला मानव–प्रयत्न नृत्य ही था! नृत्य के रूप भले ही आज बदल गये हैं किन्तु किसी न किसी रूप में नृत्य सभ्य से सभ्य मानव–समुदाय के सामूहिक जीवन का अंग है! अपने को भूल जाने का एक प्रयास! अपने को भूल जाना कोई मामूली बात नहीं है। अपनी इसी मन:स्थिति में मनुष्य किसी अज्ञात लोक के सामने हो पाता है! इसीलिए नृत्य एक आनुष्ठानिक प्रक्रिया भी है! अनुष्ठान है। शिव का तांडव नृत्य हो, उमा का लास्य–नृत्य हो, नटराज का नृत्य हो,या काली का वह नृत्य हो, जो शव–रूप के वक्ष पर हो रहा है! कालरात्रि और नियति–नृत्य का बड़ा अद्भुत वर्णन योगवासिष्ठ में है!

महान कलाविद श्री आनन्द कुमार कुमारस्वमी ने एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है 'दि डांस औफ शिव'। इस पुस्तक में नटराज–प्रतिमा के संबंध में वे लिखते हैं कि जिन ऋषियों ने यह परिकल्पना की, उन्होंने वास्तविक सत्य की प्रतिमा को प्रस्तुत किया! जीवन की जटिलताओं की कुंजी तैयार की। उनकी कल्पनाशक्ति,विचारशक्ति और सहृदयता कितनी विशाल और अद्भुत थी! वास्तव में नटराज–प्रतिमा का अभिप्राय दिशा और काल का विस्तार है! डमरू और अग्नि दृश्य–परिवर्तन के प्रतीक हैं, ब्रह्मा का दिन और रात! ब्रह्मा की रात में प्रकृति बीज रूप में है , शिव की इच्छा के बिना वह प्रकृति नहीं नाचती! शिव जब समाधि से जगते हैं, उनका नृत्य जगाने वाले शब्दों को तरंगित करता है तब प्रकृति भी चतुर्दिक् प्रभामंडल के रूप में प्रकट होकर नाचने लगती है। नृत्य करता हुआ शिव ही प्रलयकाल में संहारक बन कर प्रकृति को विश्राम देता है! यह दर्शन का भी सार है और काव्य है, कला है ! यही विज्ञान का सत्य है! नटराज केवल सत्य ही नहीं हैं , प्रेम भी हैं क्योंकि करुणा वृष्टि करना उनके नृत्य का प्रयोजन है!

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद से श्री शिवपूजन सहाय के जमाने मे एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'शैवमत' नाम से प्रकाशित हुआ था। उसमें कापालिकों, पाशुपतों, लकुलीशों, नाथों, अघोरियों और अन्य शैवों की परंपरा और सिद्धान्तों का बहुत गहरा विवेचन है। शिव के स्वरूप को और भारत की संस्कृति के वैविध्य को समझने के लिये बहुत आवश्यक ग्रन्थ है। शिव एक दार्शनिक अवधारणा भी है।

– 1828, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, सेक्टर– 13–17
पानीपत–132203 (हरियाणा)
मो.: 9996007186

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक–पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/– अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

आलेख

आर्य जनजाति में अद्वैत की अनूठी अनुभूति

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

सिन्धु नदी एशिया की सबसे लम्बी नदियों में से एक है। कैलाश मानसरोवर से निकलकर सिन्धु – तिब्बत, भारत और पाकिस्तान होते हुए अरब महासागर में जा मिलती है। भारत के लद्दाख क्षेत्र से होते हुए सिन्धु पाकिस्तान पहुंच कर फिर अरब सागर में मिलती है। लद्दाख की राजधानी लेह से उत्तर–पश्चिम दिशा में लगभग 180 किलोमीटर की दूरी पर इसी सिन्धु नदी के किनारों पर प्राचीन काल से बसी एक जनजाति है जो स्वयं को आर्य बोलते हैं। इस पूरे क्षेत्र को 'आर्यों की वादी' के नाम से जाना जाता है। इन आर्यों का लम्बा कद, लम्बी नाक, नीली आंखें तथा इनकी पारंपरिक वेषभूषा देखते ही बनती है।

कई वर्ष पूर्व मुझे इस सुदूर क्षेत्र में जाकर यहां के निवासियों के साथ कई दिनों तक रहने का एवं इस अद्भुत जनजाति से बातचीत करने का दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ। यहां आकर पता चला कि अब इस जनजाति के केवल चार हज़ार के करीब सदस्य बचे हैं। आर्यों की वादी का क्षेत्र गारखुन, हनू, धा और दारचिक नाम के मुख्य चार गांवों में बंटा हुआ है, यद्यपि बहती सिन्धु नदी के आस–पास इनके और भी कई छोटे– छोटे गांव बसे हैं।

समय बीतने के साथ इस जनजाति का मेल–मिलाप लद्दाखियों के साथ होने के फलस्वरूप इन दोनों ही जातियों के मिले–जुले विशेष लक्षण कई सदस्यों के नाक–नक्श के रूप में परिलक्षित होते हैं। यद्यपि इस जनजाति ने अब बौद्ध–धर्म को अपनाया है परन्तु वैदिक सभ्यता के अनुरूप ये लोग मूलत: प्रकृति के पूजक हैं। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पर्वत, हिमनद इत्यादि इनके मुख्य देवता हैं। ये लोग पहाड़ को 'ला' बोलते हैं। इनके प्रत्येक मोहल्ले का अपना एक ला देवता होता है। प्रत्येक घर के रसोईघर में एक विशेष स्थान पर प्रतिदिन घर में बने हुए अन्न को सबसे पहले ला देवता को अर्पण करने का विधान है। इसके अतिरिक्त किसी भी घर में बच्चे का जन्म होने पर या नई फ़सल उगने पर तथा इसी प्रकार के अन्य

सिन्धु नदी का मार्ग दिखाता मानचित्र (सौजन्य इन्टरनेट)

विशेष अवसरों पर प्रत्येक मोहल्ले के लोग अपने समीपस्थ पहाड़ पर ला देवता के लिए निर्धारित स्थान पर प्रसाद चढ़ाते हैं। सामान्यत: इस स्थान से जब भी कोई गुज़रता है तो इस ला देवता के सामने अगरबत्ती आदि जलाकर आदर–भाव से नतमस्तक हो जाते हैं। किसी भी परिवार में बच्चे का जन्म होने पर समीपस्थ हिमनद पर बच्चे को साथ लेकर धन्यवाद देते हैं। इस जनजाति की मान्यताओं के अनुसार पर्वत रक्षक है और जल जीवनदाता है। संसार को ये लोग साकेत कहते हैं। वर्ष में एक निर्धारित समय पर, जब ये लोग खेती के कार्य से मुक्त हो चुके होते हैं, एक ऊँचे पर्वत पर तीर्थयात्रा के लिए सब मिलकर एक साथ चले जाते हैं। इस प्रकार कई दिनों तक एक साथ रहकर प्रकृति का आनन्द लेते हुए साथ–साथ हंसते–खेलते, गाते व नृत्य करते हैं। इस जनजाति के सभी पर्व व त्यौहार सामूहिक होते हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक सदस्य का जन्मदिन भी सामूहिक रूप से मनाया जाता है। ये लोग जन्मदिन को हर वर्ष नहीं अपितु बारह वर्ष के अन्तराल पर मनाते हैं। आयु को भी 12 वर्ष के समूह को गिनकर होता है। बातचीत करते हुए जब मैंने एक वृद्ध महिला से उनकी आयु के बारे में जानकारी लेनी चाही तो उत्तर में उन्होंने हाथ की उंगलियों से सात का संकेत दिया । मैं उनके उत्तर का वास्तविक अर्थ समझ नहीं पाई, तो मेरे दुभाषिए ने रहस्य को उजागर करते हुए समझाया कि वास्तव में इनकी आयु 84 वर्ष है जो सात बार

सिन्धु नदी पर बसी आर्यों की बस्ती का विहंगम दृश्य

बारह वर्षों का समूह है। यहां ध्यान आता है कि एक सौर चक्र को पूरा होने में लगभग बारह वर्षों का समय लगता है। योगी जनों के लिए भी बारह वर्ष का समूह महत्वपूर्ण होता है।

लोसर इनका वार्षिक त्योहारों में से एक महत्वपूर्ण त्योहार है। जनवरी के महीने में मनाए जानेवाले इस तीन दिवसीय वार्षिक त्योहार पर सायंकाल के समय ये लोग अपने अपने गांव के निर्धारित केन्द्र-स्थान पर एकत्रित होकर कई घण्टों तक साथ रहते हैं। सभी लोग अपनी पारम्परिक वेशभूषा में सजकर आते हैं, नाचते हैं, गाते हैं और खाते -पीते भी हैं। इस त्योहार पर उस वर्ष जिन-जिन सदस्यों के जन्म के बारह वर्ष पूरे हुए हों उन सब का जन्मदिन सामूहिक रूप से मनाया जाता है। होता यूं है कि आयु के अनुरूप कई सदस्यों का एक समूह उस उस घर में बधाई देने जाते हैं जहां के सदस्य ने बारह वर्ष पूर्ण किये हों।

तत्पश्चात ऐसे सदस्यों को ये लोग नाचते गाते हुए अपने साथ केन्द्रीय स्थल पर लाकर समारोह में सम्मिलित होते हैं। किसी भी प्रकार के प्रतिबन्धों से मुक्त इस समाज के युवाओं को यह समारोह अपना जीवनसाथी चुनने का अवसर भी प्रदान करता है।

बेटी हो या बेटा, बच्चे के जन्म पर पूरे समाज में उल्लास का वातावरण छा जाता है। ये लोग बेटी को विशेष सम्मान देते हैं। इसके पीछे इनकी यह सोच रहती है कि शादी होने पर बेटी को एक दिन दूसरे घर चले जाना है। कोई भी विधवा स्त्री समाज के अन्य लोगों की तरह सामान्य जीवन यापन करती है। जब भी दो महिलाएं दीर्घ काल के बाद आपस में मिलती हैं तो सिर से अपनी अपनी टोपियों को उठाकर एक दूसरे के सामने घुमाते हुए एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। इस दृश्य का मुझे अचानक ही अवलोकन हुआ।

फूल आनन्द का प्रतीक होते हैं। आर्य जनजाति का एक विशेष फूल 'मुन्ठ तो लो' के नाम से जाना जाता है। बसन्ती रंग के इस फूल का रंग काफी लम्बे समय तक बना रहता है। महिलाएं एवं पुरुष दोनों के सिर की टोपी में यह फूल सदैव लगा रहता है। टोपी में फूलों का न होना उस परिवार का शोक से संतप्त होने का संकेत देता है। अपने चारों ओर उपस्थित प्राकृतिक संसाधनों का ये लोग अत्यन्त आदर करते हैं।

इन लोगों की उपजीविका मूलत: बकरियों पर निर्भर करती है। ये केवल बकरी के दूध का ही सेवन करते हैं। इसी के ऊन से अपने गर्म परिधान बनाते हैं। गर्मियों के मौसम में ये लोग जौ, बाजरे और खूबानी की खेती भी करते हैं तथा अब सब्जियां भी उगाते हैं। इन लोगों से इनके पूर्व इतिहास के बारे में जानकारी देते हुए समीपस्थ पर्वत की ओर इशारा करते हुए बताया गया कि उनके राजा का किला वहीं था। उस राजा के तीन पुत्र थे। उन्होंने सूचित किया कि धा और हनू में रहने वाले आर्य इन तीन पुत्रों में से दो पुत्रों के वंशज हैं। तीसरे पुत्र के वंशजों का क्षेत्र, उन्होंने आगे बताया, भारत के बटवारे के बाद अब पाकिस्तान में पड़ता हैं। वहां उन्हें कलाश

आर्यों की वादी में यहां के निवासियों के साथ

जनजाति के नाम से जानते हैं। इस सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण जानकारी मिली जिसका सम्बन्ध आर्य जनजाति के एक ओर वार्षिक त्यौहार के साथ हैं। यह त्यौहार जुलाई महीने के आसपास पड़ता हैं। परम्परा के अनुसार इस त्योहार के आयोजन की ज़िम्मेदारी बारी बारी से हर वर्ष राजा के तीन बेटों में से एक बेटे को दी जाती थी। इस आयोजन में अन्य सभी परिवार भी सम्मिलित हो जाते थे। इस त्योहार का आयोजन राजा के दो पुत्रों के वंशजों के द्वारा अब भी वैसे ही धा और हनू के क्षेत्रों में दो साल बारी-बारी से होता है और तीसरा साल वे खाली छोडते हैं यह सोंचकर कि कि तीसरे बेटे के वंशज भी सीमा पार इस त्योहार को मनाते होंगे। यहां ध्यातव्य है कि

पाकिस्तान के कलाश जनजातियों को लेकर सोशल नेटवर्क पर बहुत सारे वीडियो उपलब्ध हैं। इन लोगों ने अब इस्लाम धर्म अपनाया है, परन्तु कई आयोजन लद्दाख में स्थित आर्य जनजाति के आयोजनों के साथ साम्य रखते हैं। परन्तु ऊपर उद्धृत त्योहार के मनाने की कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाई।

आर्य लोगों ने मुझे यह सूचना भी दी कि बाहर के विद्वानों ने उनके ऊपर यूनानी शासक सिकंदर के वंशज होने की कथा थोपी है, जिसका वे खण्डन करते हैं। उन्होंने बताया कि उनका क्षेत्र प्राचीन काल में भारत और मध्य एशिया के बीच महत्त्वपूर्ण व्यापार – मार्ग के क्षेत्र में आता था। उनकी महिलाओं के प्राचीन ज़ेवर जो बटनों से और शंख अथवा खोल से बनते थे, उन्हें व्यापारियों से प्राप्त होते थे। इनके ज़ेवरों में गले की लटकन के रूप में एक छोटा सा गोल कटोरा जैसा होता है जिसे आदमी और महिलाएं दोनों पहनकर रखते हैं। इनका कहना है कि राह में चलते समय इससे वे पानी पीते थे और यह एक ऐसे दर्पण भी का प्रतीक भी है जो व्यक्ति के अध्यात्म का प्रतिनिधित्व करता है। इस पर सूर्य की किरणें पडती रहती हैं जिससे उनके अन्दर सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न होती रहती है।

इनके पास अभी तक का इतिहास केवल इनके प्रचलित लोकगीतों में ही उपलब्ध होता ये लोकगीत मौखिक परम्परा से ही उनतक पहुंचे हैं। इन लोकगीतों का गायन सामूहिक रूप से नाचते हुए विभिन्न त्योहारों पर होता है। सर्दियों में भी इन गीतों को गाया जाता था जब अधिक सर्दी के कारण प्राय: लोग घरों के भीतर रहकर ही समय व्यतीत करते हैं। यह समय घर के सबसे निचले तल पर रहकर व्यतीत करते हैं जहां इनके मवेशी भी साथ रहते हैं। सब मिलकर बैठते हैं और बकरी के ऊन को कातते हुए गीत गाते हैं। यह ऐसा अवसर होता है जब घर के बड़े लोग लोक गीतों को अपने युवाओं को संबोधित करते हुए परंपरा को आगे बढ़ाते हैं।

इनके युवाओं ने अब उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अथवा दूसरे रोज़गार अपनाकर भारत के अन्य शहरों व क्षेत्रों में जाना प्रारम्भ किया है। इस स्थिति में हमने उनके युवाओं को अपनी धरोहर को भी बचाये रखने के महत्त्व को समझाया। उन्हें सुझाव दिया कि वे अपने

राह में दो आर्य महिलाओं के साथ वार्तालाप करते हुए

बुजुर्ग लोगों से लोक गीतों को सुनकर लिख डालें, ताकि जितना कुछ अभी बचा है उसे सुरक्षित किया जा सके।

इस जनजाति के रहन– सहन में मुझे अद्वैत की सुन्दर छवि दिखाई देती है। सम्पूर्ण समाज में एकात्मकता का दर्शन होता है। प्रकृति से इनका तादात्म्य सदैव बना रहता है। पहाड़ी वातावरण में रहते हुए प्रकृति की अनिवार्य अवस्थाओं में रहने के यह लोग आदि हो चुके हैं। इन्हें मालूम है कि पहाड़ी स्खलन के फलस्वरूप इनका घर कभी भी नष्ट हो सकता है। ऐसा होने पर सतर्क रहकर ये दूसरा स्थान चुनकर नया घर खडा करते हैं। इसी सम्बन्ध में एक ओर संदर्भ का स्मरण हो आया है। लेह में मेरी भेंट आर्य जनजाति के एक वयोवृद्ध दम्पत्ति से हुई। उनसे मैंने पूछा कि क्या वे लेह में रहना पसन्द करते हैं, क्योंकि यहां उनके बेटे ने उनके लिए सब सुख सुविधा उपलब्ध कराई है। यह सुनकर दोनों की आंखें भर आईं और एक स्वर में बोले कि हमें अपने स्थान पर रहने में ही सुख मिलता है। आध्यात्मिकता से देदीप्पमान इस जनजाति के व्यक्तित्व ने तथा इनके सौहार्द पूर्ण व्यवहार ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया।

– लेखिका वरिष्ठ साहित्यकार है

कला समय में विज्ञापन हेतु संपर्क करें
सांस्कृतिक संस्थाओं को विशेष रियायत दी जायेगी।
–: संपर्क :–
सम्पादक, मो.: 9425678058

बनारस घराना: श्री संकट मोचन स्तुति परन

गिरीन्द्रचन्द्र पाठक

स्तुति परन की प्रस्तुति बनारस घराने की विशिष्टता रही है। स्तुति परन की रचना में तबला - पखावज के बोल , हिन्दी एवं संस्कृत के शब्द इत्यादि अत्यंत ही खूबसूरती के साथ ताल एवं लय में पिरोए जाते हैं जिसके मौखिक पठन एवं वादन द्वारा सिद्धहस्त कलाकार श्रोताओं को विशेष आनन्द प्रदान करते हैं।

अतुलित बल के धाम भगवंत श्री हनुमंत एकादश रुद्रावतार हैं। लाल वस्त्र एवं सिन्दूर अंगधर श्री बजरंग भगवान सूर्य के शिष्य एवं संगीत प्रवर हैं। कांधे जनेऊ, कानन कुंडल, लंबी पूंछ, वाम हस्त पर्वत तथा दाहिने हाथ विशाल गदा को देखते ही भूत प्रेत की बाधा एवं रोग -शोक मिट जाते हैं। श्री राम नाम के निरंतर जप से महा समुद्र को लांघने वाले, माता सीता का शोक निवारण करने वाले, दानवों के संघारक, लंकापुरी दाहक, लक्ष्मण प्राण उबारक अंजनी नंदन समस्त आपदा -विपदा को हरने वाले तथा बल, बुद्धि, ज्ञान एवं धन के प्रदाता हैं।

इन्हीं समस्त भावों को पिरोते हुए इस संकट मोचन स्तुति परन की रचना करने का सौभाग्य मुझ अकिंचन को अपने गुरुवर वाराणसी निवासी तबला महर्षि पूज्य पंडित छोटे लाल मिश्र जी के कृपा- सानिध्य में सुलभ हुआ। मेरे गुरुदेव एक उच्च कोटि के तबला वादक के अतिरिक्त संगीत विद्वान एवं कुशल रचनाकार भी थे। स्तुति परन का संयोजन उनकी रूचि के विषय थे।

यह स्तुति परण लिखकर मात्राओं तीन ताल में निबद्ध है जिसे पाठकों की सुलभता के लिए ताल लिपि में ना को दर्शाकर निम्नवत लिखा गया है।

श्री संकट मोचन स्तुति परन तीन ताल (मध्य लय)

- क्रान धेतेटे धा, त्रिगिन्न कत कत, दिग्गिदान धा, क्रधेतेटे ता (8 मात्रा)
- संकट मोचन राम भक्तवर, वज्रदेह धा गदिगन धा (8 मात्रा)
- एकादश कत रूद्र पवन सुत, सूर्य शिष्य संगीत प्रवर (8 मात्रा)
- लाल वरन सिंदूर अंगधर, कृपाधाम सुखधाम हरे (8 मात्रा)
- बाँधे मूंज जनेव शोभित, कानन कुण्डल पूँछ धरे (8 मात्रा)
- वाम हस्त गिरि धारण दिगता, दक्षिण कर दुर्धर्ष गदा (8 मात्रा)
- भुत प्रेत सब थर थर काँपे, शोक रोग तन त्वरित विदा (8 मात्रा)
- जय श्री राम जपत नित पल से, लाँधि गए जो सिंधु अगघ (8 मात्रा)
- सीता शोक निवारण किटतक ता, झटक पटक दानव संहारण, (8 मात्रा)
- उलटि पुलटि लंका पुरी दाहण, झटपट लक्ष्मण प्राण उवारण (8 मात्रा)
- अंजनी नंदन बल निधान, गुन गान राम का निसदिन गावे (8 मात्रा)
- मिटे आपदा संकट विपदा, पावे बल बुद्धि धन ज्ञान, (8 मात्रा)
- (किटतक ता -2 किटतक तिं. -2 जय श्रीऽ राम-3 धा)× 3 (33 मात्रा)

यह सम्पूर्ण रतन तीन ताल के मध्य लय में आठ आवृत्ति के अन्तर्गत सम्पन्न होगा।

-लेखक वरीय तबला वादक एवं संगीत समीक्षक है।
आदर्श नगर, मुंगेर (बिहार) 811201
मो0 - 7991137348

भूल-सुधार

दिसम्बर-जनवरी 2023 के अंक में श्री गजानंद माधव मुक्तिबोध जी की जन्मतिथि में भूलवश 3 नवम्बर 1997 प्रकाशित हो गई है। श्री मुक्तिबोध जी का जन्म 13 नवम्बर 1917 को हुआ है। इस त्रुटि से पाठकों को हुई असुविधा के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। - संपादक

साक्षात्कार

(पद्मश्री से सम्मानित मध्यप्रदेश के गौरव-पुरुष परम आदरणीय श्री भालू मोंढे से भँवरलाल श्रीवास, सम्पादक, कला समय पत्रिका के लिए यह संवाद)

भालू मोंढे परिवार फोटोग्राफी का यह शताब्दी वर्ष तीन पीढ़ियों का योगदान

आज 14 जनवरी 2023, स्थान: भारत भवन, जहाँ श्री भालचन्द्र मोंढे जी की विभिन्न विधाओं में प्रदर्शनी लगी हुई है जिसमें धातु, शिल्प, फ़ोटोग्राफ़ी और आपके द्वारा बनायी गयी पेंटिंग भी शामिल हैं। अवसर है दि. 13 से 15 जनवरी 2023 तक चलने वाले 'भोपाल लिटरेचर फेस्टिवल' के द्वितीय दिवस का। श्री मोंढे जी से उनकी प्रदर्शनी के मध्य यह संवाद एक तरह से दुर्लभ और संयोग भी है।

- **सर, आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपको फ़ोटोग्राफी की कला विरासत में मिली। बहुत खुशी की बात है कि मोंढे परिवार इस विरासत का शताब्दी वर्ष मना रहा है। इसमें तीन पीढ़ियाँ सम्मिलित हैं। 'कला समय' परिवार की ओर से शताब्दी वर्ष की आपको हार्दिक बधाई। इन सौ वर्षों की यात्रा पर क्या कहना चाहेंगे आप ?**

– देखिए, सौ वर्ष हो रहे हैं और हम कन्टीन्यु किये हुए हैं। कन्टीन्युस में हम चार लोग हैं अभी। दो साल पहले मेरा एक कजिन अरुण मोंढे कोरोना के समय बीमार हुआ और चल बसा। वह हिन्दुस्तान टाइम्स का चीफ़ फ़ोटोग्राफर था। जब हिन्दुस्तान टाइम्स बन्द हो गया, वह जॉबलेस हो गया, लेकिन वह फ्रीलांस करता था। वह हम लोगों में सबसे छोटा था।

मेरे अंकल ने सन् 1923 में इन्दौर में कार्य प्रारम्भ किया। उसके प्रुफ वगैरह हमारे पास हैं। मैं तो पैदा भी नहीं हुआ था। 1955 तक उनका स्टूडियो चला। उसके बाद फ़ोटोग्राफी कम हो गयी थी। वो पुराने ढंग के बड़े कैमरे थे। '55 तक तो स्टूडियो ठंडे हो गये थे क्योंकि लोग कैमरों से फ़ोटो नहीं उतारते थे। क्योंकि महँगा था फ़ोटो। तब तक मेरे भाईसाहब कॉलेज में आ गये थे और उन्होंने अपना काम फ़ोटोग्राफी में ही शुरू कर दिया था। मतलब हमारा हेरीटेज चलता रहा।

भाईसाहब ने 1955 से 1961 तक इन्दौर में ही काम किया। वे मेडिकल कॉलेज में फ़ोटोग्राफर बने। उसके बाद जैसे डॉक्टर पीएच.डी. करने के लिए लंदन जाते हैं, उनको भी भनक लगी और

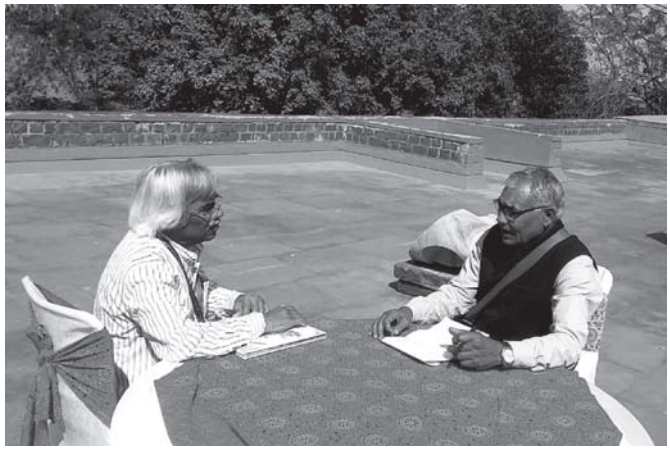

वह 1961 में लंदन चले गये। वह एम.जी.एम. मेडीकल कॉलेज, इन्दौर में फ़ोटोग्राफर का जॉब छोड़कर लंदन चले गये और उनको लंदन में काम करने का मौका मिल गया। तब परमिट मिलते थे। उन्होंने वहाँ तीन साल काम किया और 1964 में मुझे बुला लिया, तब तक मैं कॉलेज में आ गया था। इस तरह फॉलोअप हुआ।

हमको यह पता नहीं था कि क्या है वो। उस ज़माने में मेरे अंकल ने फ़ोटोग्राफी में हमको बहुत ज़्यादा तवज्जो नहीं दिया, क्योंकि उनका मानना था कि तुम समझते नहीं हो और हम छोटे भी थे, समझ में नहीं आता था तो फ़ोटोग्राफी से बाहर रखा। हम बाहर रहे तो ज़्यादा समझे नहीं, पर वह आ गया था जो अपने परिवार में चल रहा है। उसके बाद हम लंदन चले गये। सन् 1964 मे लंदन में टाइम एंड लाइफ़ लेबोरेटरी हमने ज्वाइन की और अपना काम शुरू किया। वह अमेरिकन टाइम एंड लाइफ़ की ब्रांच-आउट थी, उसमें फ़ोटोग्राफर हो गये और दुनिया के काम जो यूरोप में होते हैं वो

प्रोसेस करते थे। उसमें हमको काम मिला। जब यहाँ था तो शादी-ब्याह और प्रेस के काम करने लगा था। मतलब फ़ोटोग्राफी की नॉलेज मुझे थी, जैसे कैमरा धोना, पोट्रेट बनाना- यह सब जानकारी थी। मैं डार्करूम वगैरह सब समझता था।

उस सिलसिले में हम लंदन चले गये और वहाँ एकदम एडवांस में चले गये। जैसे यहाँ से स्कूल-कॉलेज से ऑक्सफोर्ड में आप भर्ती कर दो, ठीक इस तरह की अप्रोच्युनिटी हमें मिली। अप्रोच्युनिटी लेने में हम माहिर थे हमेशा। कभी पीछे नहीं हटे।

नागपुर में इण्डियन ब्यूरो ऑफ माइन्स का हैडक्वाटर है। यानी पूरे माइनिंग का हैडक्वार्टर! नागपुर में जो पुराना सेक्रेटियेट है उसमें उसके सबसे बड़े अधिकारी बैठते थे। उस समय उसके बिग बॉस बोस थे। वहाँ बंगाली बहुत थे। उनके पास खुद का हेलीकॉप्टर था। उनके लिए हवाईजहाज-जेट था। वहाँ फ़ोटोग्राफी डिपार्टमेन्ट था, उसमें दो सौ कैमरे थे। प्रत्येक साइंटिस्ट और इंजीनियर को कैमरा दिया गया था, वह लोग घूम-घूमकर फ़ोटो लाते थे माइनिंग वगैरह के और हम प्रोसेस करते थे। बड़ा डिपार्टमेन्ट था। उसमें मुझे टाइम्स ऑफ़ इण्डिया के एक एडवर्टाइज से जॉब मिल गया। मैं वहाँ फ़ोटोग्राफर बना, पर मुश्किल से मैंने साल भर काम किया होगा और लंदन का ऑफर आ गया। वह जॉब छोड़कर मैं लंदन चला गया। आज मैं बड़े पद पर होता यहाँ इण्डिया में। वह जॉब गवर्मेन्ट का होता। जैसे गवर्नेन्ट का टिपीकल डिपार्टमेन्ट सँभाल रहा हूँ। ठीक है, पर वह छोड़कर फिर मैं लंदन चला गया। वहाँ पर मैंने फेंटास्टिक लाइफ़ जी।

फिर काम करते-करते हमने बहुत कौशल प्राप्त किया, क्योंकि यूरोप का सिस्टम, अमेरिका का सिस्टम मैं समझने लगा था- क्वालिटी वर्क! आज हमारे काम मॉडर्न आर्ट न्यूयार्क में हैं पेरिस म्यूज़ियम में हैं, लंदन म्यूज़ियम में लगे हुए हैं। बड़े-बड़े फ़ोटोग्राफर के हम रिप्रोडक्शन्स करते थे। टॉप क्लास काम करने की हमारी स्पेशियलिटी थी। उसके एक्सपर्ट हमारे यहाँ आते थे, उसका काम करते थे।

आज वह प्रोसेस भी खत्म हो गयी। क्योंकि वो फ़ोटोग्राफी की वेट प्रोसेस थे, कोडेक के थे। कोडेक बड़ी प्रसिद्ध कम्पनी थी, कैमरे बनाती भी थी। फिर मोबाइल आया, डिजीटल आया, डिजीटल के बाद वो सब खत्म ही हो गया। हर हाथ में फ़ोटो के लिए कैमरा है। उनके सब कैमरे डब्बे हो गये। वो पूरा चैप्टर ही इण्डिया में खत्म हो गया, लेकिन वहाँ अभी वेट फ़ोटोग्राफी चल रही है। जो शौकिया और एकेडमिक हैं वो काम कर रहे हैं। अपने यहाँ तो मटेरियल आयात करना ही बन्द कर दिया। अपने यहाँ उल्टा काम हुआ है। वह बन्द इसलिए हुआ कि अब मटेरियल ही नहीं है। मेरे पास कैमरे पड़े हुए हैं। मेरा पास वर्ल्ड का बढ़िया कैमरा है जिसको अच्छा ब्रांड कहते हैं। ये झील के मेरे फ़ोटोग्राफ उसी कैमरे के हैं।

उस समय कम्प्टीशन नहीं थी इण्डिया में मेरे लिए। 1975 में काम करते-करते मैंने सोचा कि अब पैकअप करो, कितना देखोगे और देख-देखकर क्या करोगे इसका? मैं इन दस सालों में करीब सात-आठ बार इण्डिया आया। यहाँ दो-दो महीने रहकर मैं इण्डिया देखता था। उस समय नेपाल तक देख लिया। हिमालय देखा। इधर 1967 में कान्हा पार्क देखा।

जब मैंने कान्हा पार्क देखा तब वह बना नहीं था, वीरान जंगल था। हमारे इन्दौर के दोस्त मुझे वहाँ ले गये। मैं फॉरेन से आता था तो उनको मेरे साथ रहने में खूब मज़ा आता था। यह 1960 की बात है। उस समय इने-गिने लोग थे जो फॉरेन जा चुके थे और यहाँ आते थे। मेरे सारे दोस्त मुझे छोड़ते ही नहीं थे। हम लोग गाड़ी लेकर कान्हा पार्क गये। हम लोग खूब घूमे। खजुराहो, कान्हा पार्क खूब घूमे। कान्हा का जंगल देखकर मैं तो पगला गया। तब तक यूरोप में मैंने तीन-चार साल निकाल लिये थे पर वैसे जंगल वहाँ नहीं हैं, जैसे ये हैं।

यह जो आर्ट का सेंस है वह तब से मेरे पास है। मतलब ब्यूटी क्या है। अब ये ब्यूटी है। यूरोप में सब गाँव नदी के किनारे बसे हुए हैं। अपने यहाँ नदी किनारे कुछ भी नहीं है। वहाँ पर बड़े-बड़े शहर बसे हुए हैं। आज यूरोप में सब दूर नदी किनारे शहर हैं। जैसे पेरिस नदी पर ही बैठा है और हम नदी से दूर रहते हैं। उन्होंने वहाँ कण्ट्रोल किया है। अपने यहाँ हम डेम से दूर-दूर भागते हैं, जबकि उनके गाँव बसे हैं। वो तो इतने ब्यूटिफुल हैं कि लगता है नदी किनारे ऐसे घर होने चाहिए। शहर के शहर बैठे हैं। पेरिस जैसा शहर! राइन नदी है, माइन नदी है। नदी पर होना उनके लिए कितना बड़ा एडवाण्टेज है। अपने यहाँ प्रोसेस उल्टा है। मौसम के हिसाब से उल्टा है। बहरहाल, वो देखकर मैंने इण्डिया पर कन्सन्ट्रेट किया, मुझे इण्डिया में मज़ा आया, हर साल मैं इण्डिया आने लगा और फिर मैंने पैकअप करने का प्रोग्राम बनाया।

मेरे भाईसाहब काम कर रहे थे, उनके बच्चे भी बड़े हो गये। उनके एक बच्चे ने फ़ोटोग्राफी में डिप्लोमा लिया। हमारी फ़ोटोग्राफी से एक बेटा पेंटर बना। तो वह आर्ट हमारे परिवार में चली। हमारे यहाँ कोई इंजीनियर- विंजीनियर नहीं बने। आप वह लिंक देखिए कि कैसी है!

फिर मेरे बेटे और बेटी को भी वह आ गया। 1975 में मैंने शादी की। यह पत्नी, जो अभी हैं। फिर 1976 में शादी करके हम रहने लगे, बच्चे हुए, सब कुछ हुआ। मैं घूमने का बहुत शौक था।

मेरा मध्यप्रदेश सरकार का जॉब था। मैं पूरे परिवार को घुमाने ले जाता था। कोई कहता था स्कूल का तो मैंने कहा– ठीक है यार, अपना कोई होने वाले नहीं है, जो भी बनना होगा बनेंगे। ले जाओ, बच्चों को घुमाओ, वह भी तो स्कूल ही है। मेरी सोच यह है कि आज जंगल घुमाने में मैं इनका स्कूल का नुकसान नहीं कर रहा हूँ, वह भी एक ट्रेनिंग है। आज वह टेस्ट बड़ी उम्र में थोड़ी आयेगा! बीस साल के बच्चे को आप कहो, तो वह कहेगा– कहाँ ले आए यार डैडी, मुझे तो कुछ समझ ही नहीं आ रहा है। मैं कम्प्यूटर पर बैठा हूँ। बच्चे तैयार नहीं हैं आज जाने को।

- **नैचर से उतने करीब नहीं हैं...**

– उनसे ट्रेवल को बोलो, तो ये कौन–सा आदमी दिखा रहे हो, इसमें क्या विशेष है? अब ये सब हो गया। म्यूज़ियम्स नहीं है। वह कभी इस पर सब देख लेंगे। हमने कहा, ये क्या देख रहे हैं, ग्रेंजर नहीं है आपके पास, कुछ नहीं है। माण्डू इस पर देख लो एक मिनट में, पर वहाँ जाकर देखो तो समझेगा ही नहीं कि क्या देखा है आपने।

यह जो डिफरेन्स है न, यह फील्ड वर्क में है। मैं फील्डवर्कर हूँ, फील्ड में जाकर देखना चाहता हूँ। उस जमाने में मैंने हिमालय हेलीकॉप्टर से जाकर देखा है, नेपाल की टॉप, माउण्ट एवरेस्ट। मेरे पास पैसे थे, मैंने वो हेलीकॉप्टर से देखा। ऐसे काम किये मैंने। तो देखने का जो विज़न है न, वह मेरे पास है। कैसा मज़ा आयेगा देखने में, वह चीज़ है। पाँव नहीं तोड़ना है। यदि पैसे हैं तो पैसे फेंककर मारे और फटाफट सब देखा। तीन–चार दिन नेपाल में रहा। पशुपतिनाथ, हिमालय उसी से देखा। वहाँ का लाइव एन्जॉय किया और वापस आ गये। पहाड़–वहाड़ नहीं चढ़ना है, इतनी मेहनत नहीं करना है। मतलब मैं सब तरह से रहा हूँ।

मैं अभी आदिवासी में जाता हूँ। उस जमाने में मेरे पास जीप थी। जीप में हम सारा सामान लेकर जाते थे। ट्राइबल के साथ रहते थे। घर से कुछ भी नहीं ले जाते थे। मतलब अण्डा, बटर–अटर, ये–वो नहीं। उनकी रोटी खाएँगे, उनका ही सब खाएँगे, उनकी दारू तक पियेंगे। उनकी जो वाइन बनती है। मैंने कहा, सब चलेगा मुझे। सवेरे पिओ तो मज़ा आ जाये। मतलब एन्जॉय।

- **मतलब पूरा एन्जॉय करना है और उनके कल्चर को आत्मसात करना है..**

– उनके साथ घूमना है उनके खेत–खलिहान, उनका तेंदूपत्ता बीनना। उनकी जो भी खाने की चीज़ें हैं, जैसे उनकी चींटी की चटनी खाई है मैंने। मैंने कहा, चलो खिलाओ भैया। ऐसा टेस्ट हमको रोज नहीं चाहिए। तुम क्या कर रहे हो, यह तो समझ ही नहीं आ रहा है। वह चींटी लाये, गरम बर्तन में डाला, उसने घिस दिया। उसमें खोपरा, ये वो डालकर, बढ़िया टेस्ट करके खिला दिया। आधे घण्टे में तो तैयार। उसने पीस दिया बरामदे में पत्थर से। यह जो है, यह पता ही नहीं लोगों को। वो आज उनकी रैसिपी है। वह रैसिपी आज ताज में देंगे, तो हज़ार रुपये की आयेगी छोटी–सी डिस।

आज मक्का और ये प्रसिद्ध हो गया। पहले कौन खाता था? आज भाखरी, भाखरी हो गया है। लिमका भाखर हो गया या ये हो गया, वो हो गया। ये चीज़ें हैं। वो बड़े चाव से चाहिए। इनको हम फ़ोटो के लिए कर रहे हैं, दिखाने के लिए कर रहे हैं। सचमुच मैं तो घुस गया हूँ उसमें। मुझे कहीं भी डाल दो, मैं कभी बोर नहीं होता हूँ। मैं अपना रास्ता ढूँढ़ लेता हूँ और वहाँ अपने काम में भी लग जाता हूँ।

मैं अमेरिका गया था, वहाँ पर मैंने उनके मटेरियल से काम किये। वहाँ पर लोगों को ग्लास पेंटिंग के बारे में कुछ पता ही नहीं था। मैंने वहाँ पर बड़े–बड़े ग्लास पेंटिंग किये हैं। वह सरप्राइज़ था उनके लिए। मेरे सब्जेक्ट भी अलग हैं। मैंने यूरोप में तीन साल पढ़ाई की है क्रिस्टोफर एकेडमी में। सन् 1970 से 72 तक तीन साल मैंने एकेडमी में काम भी किया है और स्टडी भी की।

वहाँ क्या है, कि स्कूलिंग में आप भी जा सकते हो। अपने यहाँ अभी वो नहीं आया है। जैसे कि अपने यहाँ बिल्कुल वही ऐज़ चाहिए। वह जो बार लगा है अपने यहाँ। फीस ज़्यादा है। वहाँ मुत है। करने वाले को सब फ्री दिया हुआ है। वहाँ पर करने वाले को बहुत फैसिलिटी दी हुई है। वहाँ पर स्टूडेण्ट कार्ड पर 10 प्रतिशत पर मटेरियल हमें मिलता था। कहीं पर भी आर्ट पेंटिंग का टॉप क्लास, महँगा वाला मटेरियल लो, स्टूडेण्ट कार्ड बताओ, मटेरियल 10 प्रतिशत पर मिलता था। उन्होंने इतनी फैसिलिटी दी थी। अपने यहाँ वो इनसेन्टिव नहीं दे रहे हैं।

आज कान्हा महँगा कर रहे हैं। कमाल चीज़ है। आज एनवायर्नमेंट वाले जो लोग हैं या यंगस्टर हैं, उनको आप सौ रुपए में दिखाओ। उनसे नॉमिनल फीस ले लो। उनको दाल-रोटी खिलाकर जंगल घुमाओ। वहाँ कैम्प में रहने दो, उस सब वातावरण मे रहने दो तब उनको समझेगा कि यह कितना इम्पोर्टेन्ट है। एक झलक मारकर साल में मतलब पूरी ज़िन्दगी में एक बार आपको जाना है। क्या समझेगा वह? टाइम वेस्ट है। आपको उसमें डालना पड़ेगा।

साथ ही डॉयलॉग चाहिए। आज स्कूलों में डॉयलॉग नहीं है। जो मैडम पढ़ा रही है, वह बार-बार घड़ी देख रही है। क्या करो यार? वह भी अपना जीवन जी रही है। वह नौकरी कर रही है, पैसा भी कमा रही है और अपना जीवन अपने ढंग से कर रही है। लेकिन जो टीचिंग टॉस्क है वह नहीं आ रहा है। ऐसी आपकी भर्ती है? क्या करें! कैसे तरक्की होगी आपकी? अपना लेबल अप क्यों नहीं हो रहा है!

- **यही कारण है।**

– मैं जब यूरोप में हेमबर्ग में था। वह बड़ी सिटी थी। वहाँ पर हम गाँव में रहते थे, सबर में। वहाँ हमारे छोटे बच्चे स्कूल जाते थे। मेरे भाई के बच्चे नर्सरी में थे। वहाँयह था कि बच्चों को वास्तविक फल बताएँगे, जैसे एप्पल है या जो भी फल हैं। ड्रायफूड है तो बादाम बताएँगे। दूध बताएँगे तो बताएँगे कि दूध कहाँ से आता है। दूध की स्टोरी बताएँगे कि ये गाय कैसे खाती हैं, उससे दूध कैसे बनता है। वो पूरी स्टोरी 15 मिनट में समझा देते हैं- पिक्चर या फ़ोटोग्राफ़ या कार्टून से समझाते हैं। वो हर चीज़ को समझाते हैं।

- **वह उनको कण्ठस्थ हो जाती हैं...**

– उनको ट्रैफिक में ले जाते हैं। क्रॉस करना है तो बताते हैं कि इधर देखना है, उधर देखना है फिर क्रॉस करना है। ये उस समय से सिखाते हैं। हमेशा सच बोलना है वह प्रेक्टिकल में करते हैं। उनको समझ में आता है कि यह झूठ बोल रहा है। आज सोया नहीं है इसलिए रो रहा है वह और बोल रहा है कि मैं सोया हूँ। नहीं सोया है तू, वह समझ जाता है।

यह टीचर को समझना है कि लाइक दे आर मोर दैन पेरेन्ट्स। अपने पेरेन्ट्स मार-मार कर भेज रहे हैं। उसको घर से हटाना है। यह चल रहा है न, कि चलो झंझट गया। गया एक बार, अब हम टी.वी. देखेंगे।

- **वह क्या करके आ रहा है, ये कुछ नहीं है...**

– कोई डॉयलॉग नहीं है। टीचर के साथ डॉयलॉग नहीं है, आपस में बच्चों का डॉयलॉग नहीं है। एक दूसरे की दोस्ती हो नहीं रही है। लड़कियाँ हैं तो बच्चे टिके हुए हैं। लड़कियाँ नहीं हैं तो बच्चे वीरान हैं, स्कूल भी वीरान हैं।

इस तरह का मेरा जीवन सन् 1975 से अभी तक लगातार रहा है। मैं अभी अस्सी पार हूँ, इक्यासी साल का हूँ अभी और नो रिटायरमेन्ट, कभी सोचता नहीं हूँ। कभी थकान नहीं है। मैं यह शब्द लाता ही नहीं हूँ जीवन में, कि मैं थक गया हूँ और आराम करूँगा। मैं पसन्द ही नहीं करता। मुझे कोई पेंशन नहीं दे रहे हैं। मेरे छोटे-छोटे दो फ्लैट हैं। एक पेरेन्ट्स से मिला है और एक मेरा खरीदा हुआ है। बस ये दो-दो, तीन-तीन बेडरूम के फ्लैट हैं। उनमें से एक में स्टूडियो है और एक में रहता हूँ।

मेरा एक बेटा दोहा (कतर) में है। वह सिनेमोटोग्राफ़र है। वो भी फ़ोटोग्राफी लाइन है। उसने दूसरी ब्रांच चुनी है, लेकिन है तो वही फ़ोटोग्राफी ही। उसने भी अभी कतर में आयोजित फुटबाल वर्ल्ड कप 'फीफा' कवर किया। उसमें वह बहुत व्यस्त था। अभी जनवरी-फरवरी में यहाँ आयेगा। वह भी फ़ोटोग्राफी में गया।

जब वह बारहवीं कक्षा में था तब मैं सुधीर फड़के के साथ 'सावरकर' फ़िल्म कर रहा था। सुधीर फड़के को 'बम्बई के बाबूजी' कहते हैं। जो गीत रामायण वगैरह है, आपने नाम सुना होगा! वह हमारे बहुत घरेलू थे। वे हमारे यहाँ लंदन भी आये। हम फ्रांस गये, जर्मनी गये तो वहाँ भी आते थे। बहुत मज़ा करते थे उनके साथ। वह म्यूजिक कम्पोज़र थे। गीत रामायण की खूब बड़ी एलपीज़ है। उन्होंने ही उसे मराठी में प्रसिद्ध किया।

सुधीर फड़के ने 'सावरकर' फ़िल्म की। सावरकर उनके बहुत ख़ास थे। उस समय सावरकर ज़िन्दा थे। 1968 में उनकी मृत्यु हुई है। उसके पहले वह आरएसएस के थे और वह भी आरएसएस के थे। दादर में रहते थे। उनके घर जाना होता था। मेरी मुलाकात नहीं हुई, पर मैं खूब सुनता था। तब वह बहुत बीमार थे, मेरी मुलाकात नहीं हो पायी। पर सावरकर के यदि दर्शन करता तो बात कुछ और होती।

मैं फ़ोटोग्राफर था, बाबूजी मुझे खूब जानते थे। बोले- सावरकर फ़िल्म की स्टिल फ़ोटोग्राफी आपको ही करना है। वह फ़िल्म साढ़े तीन साल चली, दो-तीन डायरेक्टर बदले। दो बार हम तीन-तीन माह के लिए अण्डमान गये उनकी फ़िल्म यूनिट में। मैं स्टिल फ़ोटोग्राफी करता था। बहुत बढ़िया फ़िल्म है। आप फ़िल्म देखोगे, जैसे एटनबरो वाली 'गाँधी' फ़िल्म हम देखते हैं वैसे 'सावरकर' फ़िल्म देखो तो आपको कम्प्लीट समझ में आयेगा कि सावरकर क्या है। उसमें गाँधी जी का भी रोल है।

मैं बाबूजी का असिस्टेंट भी था और आर्ट और इन सबमें उनका एडवाइज़र भी। फिर स्टिल फ़ोटोग्राफी का जिम्मा मेरा था ही। वह फ़िल्म वेद राही ने बनायी है। शानदार फ़िल्म है। फ़िल्म की ओपनिंग जब दिल्ली में हुई, उस समय अटलबिहारी वाजपेयी जी प्रधानमंत्री थे, वह स्वयं आये और 60 सांसद थे, आडवाणी और उस समय के सब बड़े-बड़े लोग थे। एक तरह से पूरा मंत्रालय ही था। आप समझ लीजिए कि 60 सांसद के साथ पूरी सिक्योरिटी में फ़िल्म का पहला शो हुआ था प्राइम मिनिस्टर के लिए। तो प्राइम मिनिस्टर की आँख में आँसू आ रहे हैं थियेटर में, इस तरह के फ़ोटो हैं मेरे। थियेटर में सिर्फ़ मैं फ़ोटोग्राफर था। किसी और को एलाउ ही नहीं किया क्योंकि कड़ी सिक्योरिटी थी वहाँ। चूँकि मैं तो फ़िल्म का था, मुझे स्पेशल पास दिया, बाबूजी ने इण्ट्रोड्यूज किया, वगैरह-वगैरह। उसके बाद फिर वहीं पर अटल जी ने एनाउन्स किया- ढाई लाख रुपये फ़िल्म की पब्लिसिटी के लिए दिये, कहा कि- फ़िल्म बहुत शानदार है और ढाई करोड़ रुपया उन्होंने बाबूजी को दिया, वहीं एनाउन्स किया।

उसके पहले बाबूजी ने एक भी पैसा सरकार से नहीं लिया था। गीत रामायण के प्रोग्राम देकर उन्होंने पैसे इकट्ठे किये थे। इन्दौर में 25 लाख रुपए एक शाम में इकट्ठा किये थे। मैं हमेशा उनके साथ था। ताकत यह थी कि बाईयों ने सोने की चूड़ियाँ निकालकर उनको दी थीं। पैसे तो दिये ही थे, लेकिन सोना उतार कर दे दिया था। ऐसा करके उन्होंने करीब साढ़े तीन करोड़ रुपए उस ज़माने में इकट्ठा किये थे। यह मैं अस्सी-नब्बे की बात कर रहा हूँ। इस तरह से साढ़े तीन करोड़ रुपए इकट्ठा करके उन्होंने फ़िल्म की थी। कहते थे- मैं मरूँगा नहीं, यह फ़िल्म बनाकर ही जाऊँगा। उसके बाद उनकी डैथ हो गयी। उनका सब कुछ फेनटास्टिक हुआ। इस तरह की फ़िल्म में मैं भी था।

दूसरी फ़िल्म हमने की 'देवी अहिल्याबाई', होल्कर स्टेट वाली। वह फ़िल्म ऋषिकेश पटवर्धन ने की है। उस पूरी फ़िल्म में मैं हूँ। उसमें स्टिल फ़ोटोग्राफी मेरी है और छोटा रोल भी है मेरा। बहरहाल, रोल-वोल तो ठीक है, साइलेन्ट रोल है। मैंने कहा था कि साइलेन्ट रोल दे देना। मैं वहाँ वैद्य बना हूँ, पुराना वैद्य, साफा-आफा बाँधा है मैंने। फ़िल्म में एक शॉट है मेरा। छोटी फ़िल्म है। वह रोल भी इम्पोर्टेन्ट नहीं है। मैं उस पूरी यूनिट में था, उसमें शबाना आजमी, अमरापुरकर, प्रसिद्ध लोग थे। वह हिन्दी फ़िल्म है। फ़िल्म बहुत शानदार है। अहिल्याबाई का जो कैरेक्टर है, वह विवाह के पहले से है। क्या थी वह, यह आप फ़िल्म से समझिये। फ़िल्म क्या है, देखो एन्टी आरएसएस वगैरह अभी जो माहौल चल रहा है। वह फ़िल्म सरकार ने डम्प करके रखी है। 'सावरकर' भी और 'देवी अहिल्याबाई' भी। ऐसी फिल्में चलती नहीं हैं। नहीं चलती इसका दुख नहीं है, पर नंगे नाच चलते हैं, रणवीर जैसे खूब चलता है, यह भारत भवन भर जायेगा अभी, जगह नहीं मिलेगी। ऐसी चीज़ है वह। हमारा टेस्ट ऐसा खराब हुआ है। उसके साथ हम करते हैं। पर हम नहीं जाते अब उस रास्ते पर। हमने छोड़ दिया।

- **सर, आप जितने अच्छे छायाकार हैं उतने अच्छे मूर्तिकार भी हैं और उससे भी अच्छे आप एक चित्रकार हैं। इस ओर आपका रुझान कैसे और कब हुआ ? फ़ोटोग्राफी के साथ मूर्तिकला और चित्रकला, इन दोनों विधाओं की अनिवार्यता क्यों महसूस हुई ? जहाँ तक तीनों विधाओं में मैंने इस प्रदर्शनी के माध्यम से देखा है- आप शीर्ष पर हैं। इस उपलब्धि के बारे में मैं जानना चाहूँगा।**

– मेरे भाईसाहब ने तब इन्दौर वाले स्कूल से, जब कोई भी अपने आसपास के इन्दौर के नहीं थे। जे.जे. स्कूल में परीक्षा होती थी, मेरे भाईसाहब तीन साल गये, तीन साल पास होकर आये। उसके बाद उनकी नौकरी एम.जी.एम. में लग गयी, वहाँ फ़ोटोग्राफर बन गये। वह आर्ट लाइन थी। फिर उन्होंने डिप्लोमा नहीं किया। मेरी इच्छा थी कि मैं भी जे.जे. स्कूल में जाऊँ, पर नहीं जा सका। मेरी वह इच्छा अधूरी रह गयी कि मैं स्कूल नहीं जा सका। फिर कहा, चलो छोड़ो। उसके बाद अपनी सेल्फ़ डेवलपमेन्ट वाली लाइन पकड़ी। तो आर्ट की तरफ़ झुकाव तो था मन में। वैसे मैं पढ़ाकू नहीं था। स्पोर्ट में भी थोड़ा-बहुत था, कबड्डी, भागना वगैरह था। बाकी क्रिकेट खेला

नहीं। क्रिकेट समझता हूँ मैं, खूब किया है, पर खेला नहीं है। इस तरह की चीज़ है। उससे वह चीज़ आयी।

मुझे आर्ट स्कूल जाने नहीं दिया और मैं यहाँ गुजराती कॉलेज में थर्ड ईयर में था। सन् 1964 में कॉल आ गया कि आपको लंदन जाना है। हमने कहा, चलो। इस तरह स्कूल भी छोड़ दिया।

ऐसा है कि आज सामने जो अपॉर्चुनिटी है उसका कम्पेरीजन होता है। बड़े भाई बोले- वो छोड़ दो और यहाँ आ जाओ तुम। बड़े भाई ने कहा, वह मान लिया और मैं सब छोड़कर चला गया। मैंने उनको रिस्पॉन्स दिया और चला गया क्योंकि बड़े भाईसाहब हैं, चलो भैया, देख लेंगे जो होगा। ऐसा है कि यदि मुझसे कहा जाए कि यहाँ से कूद जाओ तो मैं थोड़ा-सा देखूँगा, सोचूँगा, पर ठीक-ठाक है तो कूद भी जाऊँगा। जब कहने वाला कह रहा है कि कूदो, कुछ नहीं होगा तो कूदेंगे। मैंने वैसे चांसेज लिये, उसमें रिग्रेट नहीं करता हूँ। मैंने भारत शासन की नौकरी छोड़ी है। इन्दौर में मैं हॉर्टीकल्चर में था। हार्टीकल्चर से मेरी शुरूआत है।

मैं गुजराती कॉलेज में सेकेण्ड ईयर में था। पढ़ाई में तेज़ नहीं था, पढ़ाई में हम कच्चे ही थे। हमेशा सेकेण्ड लास्ट और थर्ड डिवीजन ही पास हुए। तो ठीक है भैया। गुजराती कॉलेज में जब था तो हमारे अंकल ने हार्टीकल्चर डिपार्टमेन्ट में नौकरी लगवा दी। हॉर्टीकल्चर डिपार्टमेंट में कैमरा था। मैं कैमरा चलाने लग गया था। हॉर्टीकल्चर मे हमारे बॉस जी.एस. यादव थे, जो उस ज़माने में नेहरू पार्क में रहते थे। मैंने कहा कि मैं कैमरा चला सकता हूँ। बोले- हमको करके दिखाओ। उनके साथ जीप में बैठकर दो-तीन टूर किये, शानदार फ़ोटोग्राफ़ बने। उनको आता ही नहीं था, कैमरा रखो तो किसी भी चपरासी को बोल देते थे।

हमारा विज़न तो तैयार था- उस ज़माने का विज़न। अब तो वो और निपुण हो गया है, उसमें और विशेषज्ञता आ गयी। क्योंकि अब हमारा एडिटिंग करना इतना फास्ट है कि सेकेण्ड्स में हो जाता है। हमारी फ्रेम बिल्कुल करैक्ट बनेगी, इतनी कुशलता है कि इसमें कुछ भी देखने की ज़रूरत नहीं है मुझे। कोई भी फ्रेम लो, करेक्ट ही बनेगी। अब उसमें एडिटिंग नहीं है। पूरा कैमरे में ही लेते हैं, वैसा ही, अब ऐसी एडिटिंग है, कुछ काटना-पीटना नहीं है। मतलब इसका पार्ट इतना नहीं लेना है, ये पूरा बनेगा उतना ही जो आपको चाहिए। अब वह एक्सपर्टीज और विज़न है और लाइटसेंस है। उसका ग्रे, ग्रेंजर जो दिखाना है। जो चीज़ दिखाना है वही दिखेगी आपको। इस तरह का जो उसका एक गणित है।

हम हर चीज़ में दस प्वाइन्ट देते हैं। कोई भी काम करने जाओ तो दस प्वाइन्ट है। शुरूआत से अन्त तक दस प्वाइन्ट में काम समाप्त हो जायेगा। कोई भी काम करो, उसमें डिफीकल्टीज़ हैं, फाइनेन्स है उसमें सब कुछ है। टाइम, वेदर ये सब प्वाइन्ट्स आते हैं। ये सब आपके केलकुलेशन है। मतलब जाना है और क्या मिलेगा आपको, यह सोच बहुत ही लम्बी है। कान्हा नहीं देखा है तब भी पता है कि जंगल देखना है तो मज़ा तो आने वाला है। अब पता ही नहीं है आपको, ऐसा नहीं है। उसमें यह अनुभव चाहिए होता है। आजमाइश खूब है हमारी। वह एक इम्पोर्टेन्ट प्वाइन्ट है हमारा। हर चीज़ में आजमाइश हमने खुद की है।

- **पुरातत्त्व के प्रति भी आपका गहरा लगाव है। आपने इन्दौर जैसे साफ-सुथरे शहर में इमारतें, कोठियों में रखरखाव, संरक्षण और उसकी विरासत को सहेजने में बहुमूल्य योगदान दिया है। इस बारे में यह सोच किस तरह विकसित हुई।**

– देखो काम करते-करते आर्कियोलॉजी के विरासत के काम मुझे मिले- टूरिज़्म में विरासत दिखाईये मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की। फिर ट्राइबल में ट्राइबल दिखाया। सरकार ने दिखाया ये सब। वह तो कुछ भी दिखाओ मुझे, मैं उसमें घुस जाता हूँ। मेरी पसन्द की चीज़ है तो ज़्यादा घुसूँगा। मेरी पसन्द की चीज़ मिलती गयी और फिर मैंने उस तरह से जॉब तैयार किये। मैं सेक्रेटरीज़ से मिला, वल्लभभवन और इधर-उधर आता रहा। मैंने कहा कि ये कौन-से ज़माने के आपके पब्लिकेशन हो रहे हैं साहब, आज दूसरी चीज़ चल रही है, आप वही-वही फ़ोटो चला रहे हैं? नई चीज़ देखो न!

फिर कलर आया। डिजीटल तो अभी आया है। तब इस तरह के हमारे ग्राण्ड फोटो थे। क्योंकि लोगों के पास लेंस नहीं थे, उसके इक्युपमेन्ट नहीं थे। मेरे पास टॉप क्लास इक्युपमेन्ट थे। मैं तो सब यूरोप से लाया था। उनको दिखाया तो वह पगला गये- यह जो झाबुआ भील के फ़ोटो हैं। यहाँ पर श्री एल.के. मल्होत्रा प्रमुख सचिव थे, नरोना साहब के साथ। उमा वासुदेव उनकी पत्नी थीं। उमा वासुदेव इन्दिरा गांधी के समय में एक कन्ट्रोवर्सियल लेखिका थीं। उनकी लड़की का नाम मैं भूल गया। बहरहाल, वह फैमिली थी। उनका डिवोर्स हो चुका था। वह भोपाल में पब्लिसिटी विभाग में प्रमुख सचिव थे। वह हमारे सम्पर्क में आए चीफ़ सेक्रेटरी नरोना साहब के साथ। मैं नरोना साहब के साथ वाइन-आइन लेता था, दारू पीता था मस्त। इतना मेरा क्लोजअप हो गया था। दूसरे डी.जी.पी. पुलिस नागू साहब मेरे मित्र हो गये थे। मैंने कुछ पुलिस के भी काम किये। काम मेरा हमेशा ऐसा होता था कि बॉस के साथ दोस्ती हो

जाती थी, मतलब ये क्या है, यह किसने किया है!

- **सर, आपका व्यवहार ही ऐसा है कि हर कोई आपके प्रति आकर्षित होता है।...**

– बोले– बुलाओ, मोंढे कौन है। मज़ा आता था उनको दोस्ती करके। क्योंकि मैं यूरोप का चैप्टर करके आया था, तो नॉलेज और बातचीत एक मिनट में मुझे समझ आती थी। आज तुम फ़ोटोग्राफ़र को बोलो, वह समझ ही नहीं रहा है। गुजरात जाकर पगला जायेगा। मैंने पेरिस म्यूज़ियम, लंदन म्यूज़ियम, न्यूयार्क म्यूज़ियम देखे। सेन फ्रांसिसको कितना देखा है? देखा तो इतना बड़ा है, अब तो यह छोटा है मेरे लिए। यह हो गया।

- **सर, आप पर्यावरण, प्रकृति, वैभव और पर्यटन प्रेमी भी हैं। आपकी पक्षियों पर दो पुस्तकें भी आई हैं। एक लेखक के रूप में आप क्या कहना चाहेंगे।**

– लेखक नहीं, मैं उसको मैनेज करता हूँ। लेखक जितना टेक्निकल मैं नहीं हूँ। वर्ड क्या खाता है, उसका टेम्प्रेचर क्या है वो सब नहीं पता। वह एनाटामी हम नहीं जानते। पर वर्ड कहाँ आ सकता है, उसको कैसा वातावरण चाहिए, यह हम मैनेज करते हैं।

पर्यावरण मेरे कैमरे से आया। जैसा मैंने कहा कि 1967 में मैं कान्हा पार्क गया। देखकर मैं पगला गया– मतलब टाइगर का घर। ओ बाप रे! मैने कहा– दिस इज़ द वन ऑफ़ द हैवन इज़ देयर। अपन क्या कर रहे हैं वहाँ यूरोप में? करते–करते वो वहाँ पर क्लिक हुआ मुझे कि बाप रे, ये है चीज़! इस चीज़ को समझने की बहुत ज़रूरत है, इसको और समझना है। इसके लिए नॉलेज गेन करें। फिर नॉलेज देना भी तो है, उसके बाद मैंने पेकअप कर दिया यूरोप से। मैंने सोचा, अब कितना करेंगे– गेन, गेन, गेन? उसका डिस्पोजल भी चाहिए। फिर मैं यहाँ आ गया।

लोगों का क्या है, वहाँ आकर्षण हैं– मोटर है, मर्सीडीज़ है। मैंने कहा– अरे छोड़ो यार! मुझको नहीं है। इन्दौर में आज भी मेरे पास छोटी गाड़ी है, जो दस साल पहले आई है, उसके पहले मेरे पास स्कूटर थी। मटेरियलिज़्म से मेरा ऐसा अटरैक्शन नहीं है। मुझे काम मैं लगा दीजिए, मैं काम का चैलेन्ज़ लूँगा और काम आपको बियॉण्ड द इमेज़िनेशन ही दूँगा, यह चैलेन्ज है उसका।

- **जनहित के कार्यों में भी आपकी खासी रुचि है। समाजसेवा के क्षेत्र में आपका खासा योगदान है। इस क्षेत्र में भी आपकी रुचि कैसे जाग्रत हुई।**

– जो मेरे पास आया है, मैंने आजमाइश की है। जो भी मेरा वर्क है– आई लाइक टु ऑलवेज गिव टु पीपुल। उसका नॉलेज भी मैं देना ही चाहता हूँ। मैं स्कूल–कॉलेज के बच्चों के साथ काफी वर्कशॉप करता हूँ। उसमें कुछ नहीं लेता हूँ। एजुकेशन में नो पेमेन्ट, आई टेक इट।

क्योंकि क्या है, कि मैं पैसा रखूँ तो कहते हैं– नहीं, नहीं, यू कान्ट अफोर्ड यू। मुझे देना है, फ्री दे रहा हूँ मैं, आप सुनो तो सही। हमको मज़ा आता है। ठीक है, कर रहा हूँ मैं क्योंकि रखकर क्या करूँगा! पैसा इज़ नॉट दि क्राइट एरिया। मैं तो कर डालता हूँ, अब आपको जो सोचना है सोचो! क्योंकि ये सब खर्चीले काम है– प्रजेन्टेशन इज़ अ हेल। काम मेरा जो भी है लेकिन प्रजेन्टेशन बहुत खर्चीला काम है।

आखिरी बात, वह स्पॉन्सर करना ही पड़ता है। ये करते हैं, ठीक है। यह मुश्किल है मेरे लिए। वो चीज़ जो आती है, मैं दे देता हूँ, बच्चे वहीं करने लगते हैं तो पगला जाते हैं। वो नहीं जमता है। फिर वो जो घुसने वाला है, वह घुस जाता है। देखिए, पचास बच्चे आये हैं, मुझे तो दो ही चाहिए, उसमें पाँच ही बनेंगे। कुछ तो हमने बीज डाल दिया! वह मेरा टारगेट है कि कैसे नहीं? स्कूल में नहीं है, जो ये कर रहे हैं। मैं बता रहा हूँ कभी नहीं है, आ ही नहीं रहा है वह। हमारी एकेडमी ऐसी थी जो मैंने सिलेक्ट किया उसको। मैं तीन साल गया। वहाँ पर हम दस स्टूडेण्ट्स इस तरह बैठते थे। कैम्पस में कहीं भी बैठो, कोई ज़रूरी नहीं कि क्लासरूम ही हो और पेंट ही करना है। बातचीत/डायॅलॉग नहीं है।

- **फ़ोटोग्राफ़ी बहुत महँगा कौशल है। सौ सालों की और आज की फ़ोटोग्राफ़ी में अन्तर क्या-क्या आया है? जबकि पहले सिर्फ़ ब्लैक एंड व्हाइट फ़ोटोग्राफ़ी, उसकी प्रोसेस, उस समय के कैमरे, तकनीक, समझ के बारे में थोड़ा-सा पाठकों को बताएँ।**

– फ़ोटोग्राफ़ी टोटल में मेन विहाइण्ड द कैमरा है। यही स्लोगन है और वह इम्पोर्टेन्ट है। मतलब आप मेरा फ़ोटो ले रहे हो, उसमें फ़ोटो ही आयेगा। क्लिक किया तो फ़ोटो आ जायेगा। मेरे सामने है तो मेरा आ जायेगा, और कुछ है तो वह आ जायेगा। वह तो बहुत इजी हो गया है। अब उसको सीधा किया है। पर उसमें कला और वो इम्पोंटेन्ट प्वाइन्ट्स जो हम कह रहे हैं। आपको ऐस्थेटिक्स भाता है फ़ोटो में। मैं फ़ोटो निकालूँगा और आप मेरा निकालोगे तो उसमें डिफरेन्स हो जायेगा। जैसे अटल जी की कविता है न– सोच उनकी कैसी है। जनता की सोच में आये वो। जनता के साथ रहकर आई है सोच वह।

मेरा भी वही है कि उसको कॉमन करना है। सामने वाले को

चैलेन्ज ही हमेशा कि ये करके दिखाओ। मतलब वही कैमरा मैं आपको दूँगा और उसी कैमरे से मैं लूँगा। तो मेन विहाइण्ड ही इम्पोर्टेन्ट है। वो क्या है, कि मैं अलग सोचूँगा।

मेरे पास ऐसी कई लड़कियाँ आईं जिनकी शादी नहीं हो रही है। उन्होंने बताया कि उनके परिवार के लोग इधर-उधर गये लेकिन किसी को फ़ोटो ही पसन्द नहीं आ रहे हैं। क्यों? क्योंकि बहुत मेकअप करके वो फ़ोटो ले रहे हैं। अब जब वास्तविकता में देखते हैं तो कहते हैं कि ये तो वो नहीं है। वह काली है, ये है वो है। हमने कहा जो भी है, मैं उसका इलाज करता हूँ, मैं ऐसे फ़ोटो निकालता हूँ।

मेरे पास ऐसे स्टूडियो नहीं है जो एक फ़ोटो निकालो और चले जाओ और कल आकर ले लेना। मैं उनको चाय पिलाता हूँ, उनके साथ बैठता हूँ, उनका कैरेक्टर देख रहा होता हूँ। मैं पाँच मिनट में उस लड़की का कैरेक्टर पढ़ लेता हूँ फिर माँ-बाप को समझाता हूँ कि मैं घर पर करूँगा, मेरा कोई स्टूडियो नहीं है, कोई बैकग्राउण्ड नहीं है, कोई झाँकी नहीं है। आप मुझसे मिलवाओ पहले। आप साथ आओ, मेरी पत्नी घर में है, वहाँ कोई खतरा नहीं है कि लड़की अकेली भेज रहे हो आप, क्या करूँगा मैं। ऐसा नहीं है। यह पहले निकालता हूँ मैं। जो उनके डाउट्स हैं वह मैं पहले क्लियर करता हूँ। क्योंकि वह समझाना पड़ता है। जैसे डॉक्टर कहता है कि अन्दर कमरे में लेट जाओ। लेट जाओ, तो डॉक्टर पर भरोसा करना पड़ेगा न! आप वहाँ बैठते हो और कमरे में चली जाती है। तो क्या करेगा डॉक्टर? अरे वो उसका रोज का बिजनिस है और वही तो करना पड़ेगा आपको! मैंने रखे ही नहीं वो स्टूडियो कि अन्दर लड़की के साथ फ़ोटो निकाल रहा हूँ। घर में आप यहाँ बैठे, यहाँ फ़ोटो हो जायेगा। फिर मैं उसका कैरेक्टर देखता हूँ कि थोड़ा-सा भद्दा है, नाक है, क्या है। उसमें कुछ बदलना नहीं है। उसका कहीं न कहीं से एक अच्छा एंगल है, वह एंगल मैं कैच करता हूँ।

बातचीत में मैं समझूँगा कि आपके पास स्माइल कैसा है। आपके दाँत बड़े हैं तो अन्दर कैसे आते हैं वह एंगल क्या है। वह सब रहता है और वह मैं जानता हूँ। मुझे उसकी समझ है कि इसको ब्यूटिफुल कैसे बनाना है एक्चुअल में, रियल में। नो फ़ोटोशॉप, नथिंग, नथिंग। मैं रियल निकाल कर दे रहा हूँ। ऐसी कितनी शादियाँ मैंने करवायीं। यह एक सोशल वर्क है कि उनको मुश्किल है। न जाने वह कितने स्टूडियो घूमे, बम्बई गये लेकिन फ़ोटो में ही मज़ा नहीं आ रहा है। हमने कहा- सादापन लो, उसको क्यों सजा रहे हो आप! मेकअप क्यों करवा रहे हो। उसको चुपचाप करो न!

वह मायूस होकर मेरे पास आ रही है। प्रेशर है उस पर। इतने फ़ोटो निकालने से वह पगला रही है, कह रही है कि मैं नहीं जाऊँगी। उल्टे काम हैं। उस पर प्रेशर डाल रहे हैं आप। मैंने कहा, छोड़ो ये सब। मेरे यहाँ आपको आना है तो आओ, नहीं तो मेरी पत्नी वह सब बनायेगी। उसको मैं कहता हूँ कि शैम्पू करके आना है, बस। तेल नहीं, और कुछ नहीं करना है। एकदम सादा, जो आपका रोज का गेटअप है उस गेटअप में आना। ये नहीं समझा रहे लोग। बेटी के साथ माँ-बाप का डॉयलॉग ही नहीं है। उसको वो सिनेमा स्टाइल से बनाकर भेज रहे हैं। अब कैसे आएँगे अच्छे फ़ोटोज़! लेकिन इस तरह के केस मैं सॉल्व करता हूँ।

- **सर, लेखन, फ़ोटोग्राफ़ी, मूर्तिकला, चित्रकला, सामाजिक कार्य, पर्यावरण-प्रेमी इन सबके बीच में आप समय प्रबन्धन किस तरह से करते हैं? आपका टाइम मैनेजमेन्ट कैसे है?**

– मैंने काम के लिए समय पूरा दिया है। कोई दशहरा, दीपावली नहीं, कोई सण्डे नहीं, कुछ नहीं। कुछ भी नहीं, पहले काम। यहाँ तक कि मैं भगवान में विश्वास नहीं करता हूँ। मैं पूजा नहीं करता हूँ। मेरे पास मन्दिर नहीं है। मैं सिर्फ़ पुराने मन्दिर या हेरिटेज़ मन्दिर या इस तरह के मन्दिर देखना पसन्द करता हूँ। बाकी मन्दिर में मेरा इस तरह का विश्वास नहीं है कि वहाँ मैं पूजा करूँगा तो मेरे काम हो जाएँगे। मैंने कितने मानदाता देख लिये, त्र्यम्बकेश्वर और ये सब देख लिये। देखने में मज़ा आता है, बाकी उसमें विश्वास मेरा नहीं है।

मैंने अभी तक सिंहस्थ में चार स्नान किये हैं। मेरे पास चार सिंहस्थ के फ़ोटोग्राफ़ हैं। बारह-बारह साल के चार! समझ लीजिए अड़तालीस साल हो गये। पुण्य-पाप से मुझे कोई मतलब नहीं है। चार स्नान का पुण्य मुझे लगना चाहिए। कितने स्नान होते हैं?

- **चार कुम्भ होते हैं... चार ही किये हैं आपने...**

– मैं जो कर रहा हूँ, उसका रिजल्ट कल मिल रहा है मुझे, इसलिए गड़बड़ करूँगा तो वह मुझे गड्ढे में डाल देगा। कौन डालेगा, मैं स्वयं ही डालूँगा। यही भगवान वहाँ हैं। आज मैं यहाँ रोज पब में जाकर दारू पिऊँ और यहाँ अटैण्ड नहीं करूँ, तो क्या रहा हूँ मैं? मैं गड्ढे में गिर रहा हूँ न! समझो कोई पिला रहा है, उसके साथ बैठकर दारू पी रहा हूँ! फिर कौन करेगा मेरा काम? आपको कांसिस रहकर काम करना है। माइण्ड का टाइम है वह। उसके लिए टाइम है, साधना है, उसके बाद क्या होना है, यह सब पहले सोचना है, तब आप पिओ। फ्री हो तो आप एन्जॉय करो।

- **सर, आपके परिवार के बारे में भी जानना चाहूँगा। आपके सर्जन और सामाजिक कार्यों में किस तरह का सहयोग और योगदान रहता है परिवार का?**

– परिवार मेरे साथ हमेशा रहता है। पत्नी तो रहती ही है। मेरे

बेटी बहुत ट्रेंड है। उसको सब पता है कि मुझको क्या चाहिए, खाना कैसा है। मेरा मिजाज़ बहुत तेज है। मैं बहुत हाई ब्लड हूँ, कोई फालतू चीज़ नहीं सहन करता हूँ, कोई शो-बाजी नहीं है, स्वागत वाले काम नहीं है, भेंट-अेंट कुछ करता नहीं हूँ। मैं जन्मदिन नहीं मनाता हूँ। सब बन्द कर दिया मैंने। केक काटना, हैप्पी बर्थडे, इस सबसे कोई मतलब नहीं है। ये सब कितनी बार करोगे आप? मैंने ये सब बन्द कर दिया। मेरा भरोसा काम पर है। अच्छे काम का वर्कआउट है मेरे पास कि अच्छा कैसे होता है। इसका एक गणित है कि ये-ये-ये करने से बराबर फाइनल रिजल्ट आयेगा। उसका वर्कआउट है।

- **जैसे आपकी बहुमुखी प्रतिभाओं और विशेषज्ञता को समग्र रूप से युवा पीढ़ी के लिए आप क्या कहना चाहेंगे। आपका जो एक्सपीरिएन्स है, उसमें युवाओं को क्या सन्देश है?**

– ग्रेजुएशन के पहले ही या बारहवीं के बाद ही युवा को समझ जाना चाहिए कि उसे क्या पसन्द है। जैसे उसे म्यूजिक पसन्द है या आर्ट, कल्चर पसन्द है या वह साइंटिस्ट बनना चाहता है। बारहवीं तक उसको यह समझना ही चाहिए। उसी के साथ पेरेन्ट्स का भी बहुत बड़ा रोल है कि उसको कहाँ पुश करना है। आप कह दोगे कि डॉक्टर बनो और उसको पसन्द ही नहीं है तो क्या करोगे। उससे आर्मी-आर्मी करोगे आप, उसको पसन्द ही नहीं है तो क्या करोगे आप। उससे उसका लगाव होना चाहिए। उसका पूरा बैकग्राउण्ड चाहिए। एनवायर्नमेन्ट में कुछ भी मालूम ही नहीं है इसलिए कोई आ नहीं रहा है। उनको नॉलेज ही नहीं है। उनको लगता है क्या मालूम क्या करना है। वो सब लफड़ा है। उसके साथ नॉलेज बहुत ज़रूरी है।

- **आपकी भविष्य की कुछ योजना है सर, जैसे कि...**

– भोपाल हमारा एनजीओ करने वाला है। एक किताब आएगी, इस साल सितम्बर-अक्टूबर में आ जायेगी। वह हमको जॉब मिला। 'वर्ल्ड ऑफ इन्दौर' के बाद भोपाल ने कॉल किया तो भोपाल का जॉब मिला है। कोई योजना तो नहीं है लेकिन काम चलता रहता है। काम की निरन्तरता है। नहीं तो फिर मेरी पेंटिंग तो है ही। मतलब मेरे काम चलते ही रहते हैं।

- **आपको कई सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इसमें पद्मश्री भी शामिल है। इसके नेपथ्य में किसकी भूमिका है।**

– कम्प्टीशन में मैं कभी जाता नहीं हूँ। मैं कहीं पर भी कम्प्टीशन में नहीं हूँ। मैं कई ज्यूरीज़ में हूँ लेकिन कम्पटीशन में कहीं पर भी नहीं हूँ। नहीं, मेरा प्यार बहुत बड़ा है। मुझे जानते हैं लोग। वो ज़रूरी है। इस तरह के अवार्ड को आपका प्यार ज़रूरी है।

- **आपने तो एप्लाई भी नहीं किया था...**

– हम करते ही नहीं है। एप्लाई करते तो लगे हुए हैं लाइन में। हमने कभी सोचा भी नहीं था। हमें मिलना था यही पुरस्कार करीब पन्द्रह साल पहले। मेरा नामिनेशन हो गया था पर तब कम्प्टीशन था। अर्जुनसिंह जी मंत्री थे तब मेरे कम्प्टीशन में दो लोग थे जो मेरे जूनियर थे। मतलब मेरे काम दूसरे थे। उनमें से एक को मिला, एक को नहीं मिला। पर वह हमेशा टेढ़ी करते रहे मेरे लिए।

- **आप अपनी मूल साधना में विश्वास रखते हैं जबकि आज प्रचार-प्रसार का ज़माना है...**

– मैं कम्प्यूटर नहीं हूँ, कहीं मेरा एडवर्टाइज़ नहीं है। मेरा काम बताता है। काम से लोग दोस्ती भी कर लेते हैं। कई जगह मेरा एड्रेस लोगों को मिल जायेगा। ऑनलाइन पर है। वो लोग जानना चाहते हैं। कभी-कभी यंगस्टर फॉलोअप में आते भी हैं। तो क्या करूँ मैं? दुर्भाग्य है मेरा! हम कहेंगे कि उनको आना चाहिए। मुझे खूब देना है।

- **सर, कोरोना जैसी महामारी के दौरान आपकी दिनचर्या क्या थी, जबकि पूरी दुनिया में अशान्ति, भय का वातावरण व्याप्त था...**

– कोरोना में मैंने छोटी-बड़ी कम से कम दो सौ पेंटिंग्स घर में की। मैं बाहर बिल्कुल नहीं गया। सरकार के जो निर्देश थे उसके अनुसार चला हूँ। सारे इंजेक्शन समय पर लगे हैं। हम बाहर गये ही नहीं तो कोरोना आया ही नहीं मेरे पास। दूर रखने का यही इलाज है। आप फ्रण्ट लाइन में जाओगे, सरकार कह रही है कि नहीं जाना है, तो गड़बड़ तो होना ही है।

- **सर, उम्र के अस्सी वर्ष पूर्ण करने के बाद आपकी फिटनेस का राज क्या है?**

– फिटनेस का राज यह है कि मैं फील्ड वर्कर हूँ। मैं सैर करना पसन्द करता हूँ। आज भी मैं चार-पाँच किलोमीटर वॉक करता हूँ। मैं एक्सरसाइज नहीं करता हूँ, किसी अखाड़े में नहीं जाता हूँ, मेरे पास कोई ट्रेडमील नहीं है, घर में कुछ नहीं है, वजन नहीं उठाता हूँ; पर मैं वॉक बहुत पसन्द करता हूँ। गाडी में कभी सोता नहीं हूँ, देखता हूँ। मैं कहीं भी यात्रा पर जाता हूँ तो मुझे देखने में मज़ा आता है। इन्दौर-भोपाल रोड पर मैंने काले हिरण देखे हैं। यह बहुत कम लोग देख पाते हैं, पर मुझे दिखते हैं। सोनकच्छ के बाद आष्टा और सीहोर में दिख जाते हैं। वहाँ बराबर स्पॉट हैं, मुझे मालूम हैं।

- **आपने अभी जो चीज़ें प्रदर्शित की हैं, उससे हटकर भी कुछ चीज़ें होंगी जो आपने अभी कहीं दिखायी नहीं हैं...**

– खूब हैं। मेरा कलेक्शन भी है। छोटा-मोटा ऐन्टीक भी है

मेरे पास।

- **ऐन्टीक पीस आप अपने लिए ही रखते हैं या सेल के लिए ?**

– नहीं, सेल के लिए नहीं हैं। मैं यूँ ही खरीद सकता हूँ तो फिर दे दूँगा किसी को। लेकिन बहुत हाई प्राइज़ वाले ऐन्टीक नहीं हैं, छोटे-छोटे आइटम्स हैं। क्राइन्स भी हैं, खूब हैं पर उसका स्पेशलिस्ट नहीं हूँ। इनकी पूरी गैलरी है। आप कभी इन्दौर आइए तो आराम से देखिए। जैसे पुराने सरोते हैं, वह मैंने खूब सारे खरीदे फिर स्कल्पचर्स बनाये। मेरा स्कल्पचर पार्लियामेन्ट में लगा है। एक सरोते का इतना बड़ा स्कल्पचर स्पीकर रूम में लगा है। पार्लियामेन्ट में अभी मेर 40 और लगे हैं। उससे भी कुछ बनाता हूँ। आपके दादाजी का सरोता हैं, आपने दो रुपए में अटालेवाले को दे दिया, उसको पचास-सौ रुपए में खरीद लिया, फिर उसका कुछ बना दिया मैंने। या मेरे पास मेरे कलेक्शन में रखे है। आप देखोगे तो कहोगे कि ये तो मेरे यहाँ भी है, मैंने तो हटा दिया। अब क्यों हटाया, यह समझा नहीं। मुझे वह समझ आ गयी है। यहाँ डिफरेन्स ये हो रहा है हमेशा। फिर हम पछता रहे हैं और आज के मॉल में जाकर पता नहीं क्या ला रहे हैं।

अब मॉल में शॉपिंग कैसे है? आपको नहीं पता कि क्या चाहिए? अच्छा ये! चलो दे दो, पैक कर दो, ये भी दे दो, ये भी दे दो। प्लान्ट भी ले लो। प्लान्ट को कैसे लगाएँ, क्या करें, इसके बारे में कुछ नहीं पता। अच्छा लगा तो बस ले लिया आपने। उसके बाद महीने-भर में फेंक भी दिया। सामान्यत: ऐसा ही होता है मॉल में।

- **सर, आपने अपना बहुमूल्य समय दिया, इसके लिए आपका बहुत-बहुत आभार।**

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये ..... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	**300 (व्यक्तिगत)**	**350 (संस्थागत)**
द्वैवार्षिक	**600 (व्यक्तिगत)**	**700 (संस्थागत)**
चार वर्ष	**1000 (व्यक्तिगत)**	**1200 (संस्थागत)**
आजीवन	**10,000 (व्यक्तिगत)**	**12000 (संस्थागत)**

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,

अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016

फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com

वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

छाया-वीथि

पद्मश्री से सम्मानित श्री भालू मोंढे के कैमरे से क्लिक जनजातीय छाया चित्रों की वीथिका...

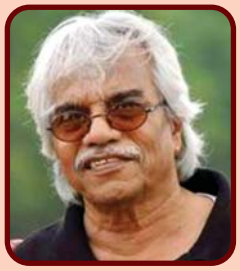

श्री भालू मोंढे

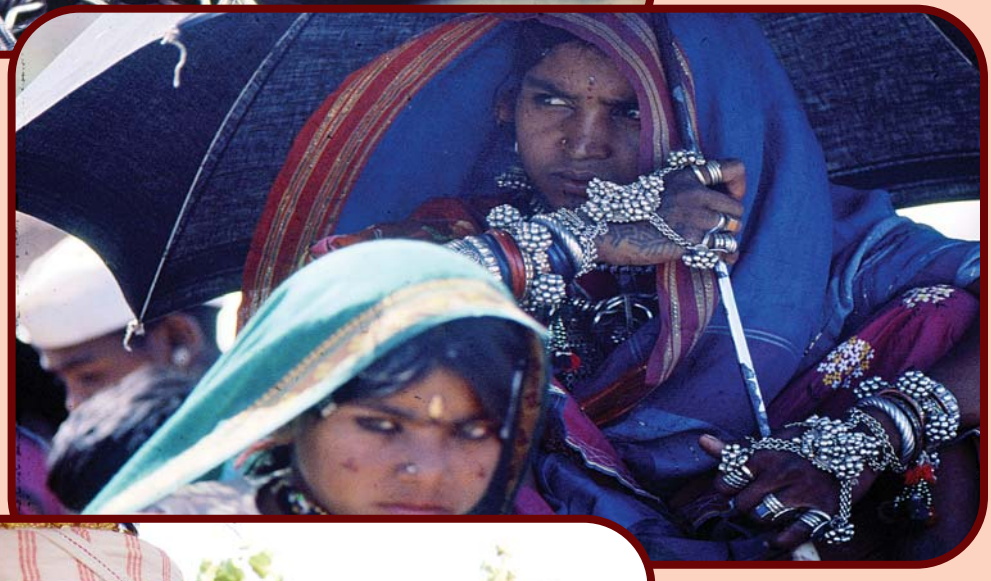

छाया-वीथि

छाया-वीथि

छाया-वीथि

आलेख

जनजातीय संस्कृति में अद्वैत

डॉ. सरोज गुप्ता

आदिम मानव ने जब धरती पर कदम रखा होगा तब वह वृक्षों, गुफाओं, कन्दराओं में विचरण करते हुए कंदमूल फल, आखेट के सहारे आजीविका चलाते हुए सुख दुख, क्रोध की अभिव्यक्ति के लिए ध्वनियों ,इशारों का उपयोग करता होगा फिर धीरे धीरे विकास को गति देते हुए विविध कलाओं, संगीत की धुन पर थिरकते हुए ज्ञान के क्षेत्र में पदार्पण किया होगा। भारत की जनसंख्या में चार जनजातियां–आस्ट्रिक, द्रविड़, मंगोल और आर्य प्रमुख हैं। आर्य और अनार्य संस्कृतियों के साथ विभिन्न जातियों जनजातियों के वैभव से सम्पूर्ण जगत में भारत की अलग छवि रही है। इनमें जनजातीय परम्परायें, मान्यताएं विशेष महत्व रखती हैं। वेदों–उपनिषदों के ऋषियों की आरण्यक संस्कृति, साधना पद्धतियों का प्रभाव भी इन जनजातियों पर निश्चित रुप से दिखाई देता है। प्रकृति पूजा के साथ भारत देश में अनादिकाल से तत्व ज्ञान की परम्परा अबाध रुप से सतत प्रवहमान रही है। पश्चिमी विद्वानों के लिए भारत आकर्षण का केन्द्र रहा है। विदेशी विद्वानों द्वारा हमारे समाज का, आध्यात्मिक संस्कृति का शोधपरक अनुसंधान किया गया तत्पश्चात् उन सभी ने यह घोषणा भी की कि संसार भर के आदिम ग्रंथ ऋग्वेद संहिता ही है। वेद से पुराना साहित्य इस भूमंडल में आज तक कहीं नहीं देखा गया इस प्रकार भारतीय संस्कृति अपनी विश्वविख्यात साधना ,ऐश्वर्य, त्याग एवं धार्मिक तत्वों के कारण अद्वितीय स्थान रखती है।

जनजातीय समाज वह सामाजिक समुदाय है जो राज्य के विकास के पूर्व अस्तित्व में था और आज भी अस्तित्व में हैं। जनजाति शब्द भारत के आदिवासियों के लिए एक वैधानिक पद है। भारत के संविधान में अनुसूचित जनजाति का प्रयोग हुआ है और इनके लिए विशेष प्रावधान लागू किये गए हैं। जनजातीय संस्कृति से आशय उस संस्कृति से है जिसमें आदिवासियों का जीवनदर्शन, उनके सामाजिक आचार विचार, वाचिक परंपरा , आध्यात्मिक दृष्टिकोण से है। हम इनकी संस्कृति में देखते हैं कि जो कुछ उनके जीवन में अभिव्यक्त होता है या हुआ है उन सबके प्रस्तोता वह हैं। जनजातीय जीवन के कुछ मूलभूत तत्व है जैसे इस समाज के लोग अधिकांशतया प्रकृति की लय, ताल और संगीत का अनुसरण करने वाले होते हैं। ये प्रकृति और प्रेम के आपसी संबंध और गरिमा का सम्मान करते हैं। जनजातीय समाज अपने पुरखों–पूर्वजों के ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल को इंसानी बेहतरी के लिए उनके अनुभवों के प्रति आभारी होते हैं। इनका साहित्य सहज सरल भाषा में ज्ञान के बोझ से मुक्त तथा छंद और अलंकार की चिंता से रहित साहित्य होता है।

भारत में प्रागैतिहासिक काल से प्रभावशाली धर्मों की अधिकता रही है। तथाकथित प्रारम्भिक धर्म और हिन्दू धर्म में साभ्यता देखी जाती रही। मध्यप्रदेश की जनजातीय कलाओं और सांस्कृतिक परम्पराओं का सर्वेक्षण डॉ कपिल तिवारी जी ने कराया था। सम्पदा–पुस्तक में कोरकू, बैगा, भील, गोंड, मारिया, सहरिया, कोल आदि जनजातियों की मूल पहचान, उनकी सांस्कृतिक परम्परा की विशिष्ठता के लक्षणों की खोज, प्रदर्शनकारी रुपंकर कलाएं, उनके पर्व उत्सव त्यौहारों मेलों, धार्मिक आस्था अनुष्ठान,देवलोक, जनजातीय वाचिक परंपरा के संग्रह आदि कार्य निदेशक डॉ कपिल तिवारी एवं उनकी पूरी टीम श्री बसंत निर्गुणे, श्री महेश चंद्र शांडिल्य, श्री शेख गुलाब द्वारा आदिवासी लोक कला अकादमी भोपाल द्वारा सांस्कृतिक परम्परा का साक्ष्य विविधता के साथ संकलन किया है। मुंडा जाति के लोग ईश्वर की स्वतंत्र शक्ति में विश्वास रखते थे। कोरकू जाति के लोग अपना इष्ट देव शिव को मानते हैं। इनके पूर्वज दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत मानने के साथ अपने आपको रावण का वंशज और महादेव को सृष्टि के रचयिता मानते हैं। अनेक किंवदंतियां इनके समाज में प्रचलित हैं। आर्यों और अनार्यों के पारस्परिक तुमुल युद्धों से हम सब परिचित हैं। दोनों ने भारतीय संस्कृति के अत्यंत पुनीत तथा महान कलेवर को देदीप्यमान करने में बहुत योगदान दिया है। ऋग्वेद में अनेक प्रमाण मिलते भी हैं। भारत वर्ष के सातवीं शताब्दी में गिरिकंदराओं को लांघ कर चीनी यात्री ह्वेनसांग यहां आया था। वह कई साल भारत में रहा। उसने भारत की

तस्वीर का जो विवेचन किया पह बहुत महत्वपूर्ण है। उसी के शब्दों में भारत के प्रत्येक ग्राम में देव पुरुषों का वास था। प्रत्येक प्रांत में यज्ञ होता था। घर घर में खजाना भरा रहता था हरेक मनुष्य धार्मिक था।

''ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो, देशे देशे स्थितो मठ।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं, धर्मश्चैव जने जने।''

उस समय एक ही संस्कृति थी,एक सी प्रथायें थीं। सम्पूर्ण राष्ट्रजीवन में अद्भुत आनन्द था। ईसा पूर्व 3000 साल पहले आदिवासी प्रजा द्रविड़ प्रजा के नाम से जानी जाती थी। बर्बर आर्यों के अचानक हुए हमलों से उनको अपने मूल स्थान से विस्थापित होना पड़ा। इसीलिए मिश्र, यूनान, बेबीलोनिया, चीन, अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, सभी संस्कृतियों का अन्वेषण भारतीय पथ से ही सम्भव हो सकेगा। वैदिक काल में इन जनजातियों, आर्येतर लोगों को असुर, राक्षस, दानव जैसी उपमाएं दी गयी। रामायण महाभारत काल में आदिवासी जनजातीय समूह उस समय थे। कोल, किरात,भील, केवट, शबरी, निषाद जैसे पात्र हमारे सामने हैं। जिस आर्य संस्कृति को आज हम देख रहे हैं उसके जीवन के इतिहास में अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिनको आज समझने की आवश्यकता है। जिन्हें तथाकथित अनार्य व इन्हें आर्यतर भी कहते हैं। इतिहासकारों ने भारत देश के आर्य अनार्य तथा आदिवासी जनजातीय समूहों को विश्व की प्राचीनतम और सुनियोजित नगर रचना करने वाले हड़प्पा और मोहन जोदड़ो जैसे नगरों को विकसित करने वाली सिंधु सभ्यता के जनक, पूर्वज, पुरखों के रुप में प्रतिष्ठित किया है । भारतीय संस्कृति के अत्यंत पुनीत तथा महान कलेवर को देदीप्यमान करने में इन आर्य और अनार्य दोनों का महत्वपूर्ण योगदान है। महाभारत काल में गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य से दक्षिणा के रुप में उसका दाहिने हाथ का अंगूठा ले लिया था। जबकि एकलव्य ने गुरु द्रोण से दीक्षा नहीं ली थी। गुरु के प्रति भक्ति व समर्पण से एकलव्य ने कौशल प्राप्त किया था। मुगलकाल एवं अंग्रेजी शासन की दासता, पराधीनता एवं परचक्र ने हमारी परम्पराओं एवं संस्कृति को नष्ट भ्रष्ट किया है।

जनजातीय समाज की अपनी संस्कृति अपनी सभ्यता के विधान सामाजिक, धार्मिक नियमों के अनुसार ही चलते हैं। पर्वों उत्सवों के अवसर पर इनका उत्साह देखने लायक होता है। इनकी अपनी आस्था, विश्वास, सामाजिक मान्यताएं ,लोक गीत,लोक नृत्य,जन वाद्यों का प्रचलन देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति आर्य संस्कृति मानी जाती रही है। भारत देश में जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत जनजातीय समूहों का है। प्राचीन काल में आदिवासियों ने भारतीय परम्परा ज्ञान और सौंदर्य बोध को विश्वव्यापी बनाने में महती भूमिका निभाई है। इनके केंद्र देश काल और परिस्थितियों से तथा अपनी संस्कृति की प्रधानता के कारण विशेष अस्तित्व रखते हैं।

भारतीय जनजातियों का धार्मिक जीवन स्वदेशी धार्मिक संस्कारों और अनुष्ठानों को चित्रित करता है। इन जनजातियों के लोग धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाजों के तहत एकजुट रहने में विश्वास करते हैं। कई जनजातियां हिंदू धर्म के साथ काफी तालमेल प्रदर्शित करती हैं। कुछ जनजातियों के अपने अलग नियम रहे हैं। भारतीय जनजातियों में धार्मिक जीवन सबसे पहले संथाल धर्म से शुरू होता है, जिसके अनुसार सर्वोच्च देवता 'ठाकुरजी' हैं। वह बुरे प्रभावों को दूर करने के लिए आत्माओं की प्रार्थना भी करते हैं। अलग-अलग जनजाति अलग देवताओं की पूजा करते हैं। भारतीय जनजातियों के धार्मिक आदर्श प्रकृति और पारिस्थितिक तंत्र से संबंधित हैं और वार्षिक उत्सवों की एक श्रृंखला चलती रहती है। आम तौर पर ये लोग शगुन और स्वप्नें पर भी विश्वास करते हैं। जादू टोना, झाड़ना, फूंकना आदि परम्पराओं का व्यापक रूप देखने को मिलता है।

भारतीय जनजातियों के धार्मिक रीति-रिवाज कृषि चक्र से आंतरिक रूप से जुड़े होते हैं। 'उरांव','मुंडा' और 'खरिया' जनजातियां समान धार्मिक रीति-रिवाजों अनुष्ठानों का पालन करती हैं। बस्तर में सामगायन की परम्परा मिलती है जिन्हें गायता कहते हैं जो सामवेद के उद्गाता का अपभ्रंश है। सायणाचार्य से लेकर आधुनिक विद्वानों ने इंद्र वरुण महादेव व महादेवी को इनके प्रमुख देवता बताये हैं। इंद्र देवता ऐसे देवता हैं जो दाढ़ी रखते हैं। अग्निशिखा की तुलना उनकी दाढ़ी से की गयी है। ऐकेश्वरवाद के वरुण और आत्मवाद के इंद्र की पूजा प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से की जाती रही है। शैवों का अद्वैतवाद भी इन जनजातीय समुदाय में देखा जा सकता है। इस प्रकार जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा शक्ति में विश्वास रखते हुए

सृष्टि और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव इनकी विशेषता है धरती को संसाधन मानने के बजाय धरती को मां मानकर, प्राकृतिक वैभव को बचाने के लिए जान की कुर्बानी करने तक से पीछे न हटने वाले आदिवासी जनजातीय समुदाय का उपेक्षा भाव सर्वविदित है। आज वर्तमान समय में जनजातीय समुदायों की देशज ज्ञान प्रणालियों के संरक्षण की आवश्यकता है।

- लेखिका- वरिष्ठ साहित्यकार एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग पं. दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय सागर-470001 (म.प्र.)

■

आलेख

जनजातियों का अद्वैत दर्शन

डॉ. सुमन चौरे

धन्य है ये जनजातियाँ जिन्हें बिना ग्रंथों का अध्ययन किए यह सब ज्ञान प्राप्त है, जो श्रुतियों से वर्णित है। श्रुतियों में जो चार महाकव्यों का उल्लेख है, वे सब जनजातियों के जीवन और परम्पराओं में पूर्ण रूप से देखे जा सकते हैं। वे इसे अपने व्यवहारिक जीवन में जी रहें हैं। वे चार महाकाव्य हैं : पहला–'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऋग्वेदान्तर्गत ऐतरेय उपनिषद), दूसरा–'तत्वमसि' (सामवेदान्तर्गत छान्दोग्य उपनिषद), तीसरा–'अहंब्रह्मास्मि' (यजुर्वेदान्तर्गत बृहदारण्यक उपनिषद), चौथा–'अयमात्मा ब्रह्म' (अथर्व वेदान्तार्गत माण्डूक्य उपनिषद)

ब्रह्म विद्या का उल्लेख बृहदारण्यक छान्दोग्य कठ सहित अन्य उपनिषदों में विस्तार से किया गया। हैं। इसको पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है, कि जनजातियों की उपर्युक्त गीतों और परम्पराओं में श्रुतियों का सार भरा पड़ा हैं। विशेष रूप से उल्लेख करें, तो हम देखेंगे, कि कठोपनिषद् के अध्याय एक कि तीसरी वल्ली के चौथे, मंत्र की पूरी विस्तार से व्याख्या जनजातियों द्वारा गाये जाने वाले उपर्युक्त व्यवहार लोक गीतों और परम्पराओं में देखने को मिलती हैं।

आज से कोई चालीस पैंतालिस साल पहले की बात हैं, ट्रेन से कहीं जाना होता था, तो पैसेंजर गाड़ी ही पहली पसन्द होती थी, क्योकि वह सुविधा जनक और सर्वोत्तम होती थी, हम खण्डवा से चढ़े थे, भुसावल इटारसी पैसेंजर में। गाड़ी बहुत अच्छे से चल रही परन्तु जाने क्यों एकाएक रूक गई और वह रूकी भी तो किसी जंगल में। शायद पटरियाँ दूरुस्त करने का काम चल रहा था। पास ही मजदूरों की एक छोटी सी अस्थाई बसाहट थी। कुछ लोग गाड़ी से उतर कर काम करने वालों से चर्चा करने लग गए, और कुछ लोग इंजन के ड्राइवर से जानकारी लेकर आए थे कि गाड़ी कब तक चलेगी।

अचानक पटरियों के साथ की सड़क पर कुछ लोगों का गाता बजाता झुण्ड चला आ रहा था उस झुण्ड में चार लोग अपने कंधो झण्डियों से सजे एक सुन्दर डोल को लेकर चल रहे थे साथ ही पीछे–पीछे कुछ लोग झांझ मृदंग पर भजन गाते चले आ रहें थे। मैंने अपने मन से सोचा कि शायद इन लोगों के देवी–देवता की सवारी निकल रही होगी या कोई बड़ा उत्सव होगा, मेरे मन में इस जन–जाति की इस परम्परा के विषय में जानने की उत्सुकता हुई। उनसे चर्चा करने पर ज्ञात हुआ कि इस डोले में अपने प्रिय जन को मुक्ति–धाम ले जा रहे हैं। इनके द्वारा गाये जा रहे गीतों के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि हमारी समाज में जब शीशु का जन्म होता है, तो खुशी के बजाय रोना धोना होता है, जो गीत गाये जाते हैं, उसमें कहा जाता हैं–''कि हे आत्मा तुने ऐसे क्या पाप किए जो तुझे इस मानव देह में मृत्यु लोक में आना पड़ा'' और जब मृत्यु होती हैं तो, बड़े हर्ष के साथ नाच गाना होता हैं, गीत में गाया जाता है हे आत्मा अब तू धन्य हो गई। जो तू इस मृत्युलोक से ब्रह्मलोक में ब्रह्मलीन होने जा रही है। तू ब्रह्म में अपने स्वामी में लीन हो गई। आगे चर्चा में उन लोगों ने बाताया जिस देह में यह आत्मा रही वह काया एक मंदिर था, आत्मा के निकल जाने पर हम इस खाली मंदिर को विसर्जन करने जा रहें हैं। हमें इस बात का आनन्द है कि यह आत्मा परिब्रह्म में मिल गई। आत्मा परमात्मा एक है, इस मूल तत्त्व को यह जन–जाति कितने गहन रूप से जानती है, कि मृत्यु को बुरा नहीं समझते। आनन्द मानते हैं हर्ष मानते हैं। अपितु आत्मा को अपने गंतव्य पर पहुँच जाने का सुख मानते हैं। यहीं सब तो गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा था। निमाड़ के शव के साथ जाते समय जो गीत गाये जाते हैं, उनको 'नारद भजन' या 'मसाण्या गीत' कहते हैं। आत्मा और परमात्मा एक है– 'अहम ब्रह्मास्मि' को जानने वाले ये

लोग कहीं-कहीं इन भजनों में ब्रह्म को पति और आत्मा को पत्नी स्वरूप भी मानते हुए गाते है -

आणों सो आयो पारी ब्रह्म को ऽ...
सासऽरया खऽ जाणो हो ऽऽ...
स्वामी नऽ भेजी नवलखऽ चूँदड़
तारा जड्या रे हजार चाँद सूरज चमकिय ऽ...
बराती ढ़ोलऽ, वजाव ऽ...
आणोंऽसो आयो पारी ब्रह्म को ऽऽ...

भावार्थ- हे आत्मा, पर ब्रह्म तेरा गौना लेने आए हैं। तुझे ससुराल जाना है। तेरे स्वामी ने नवलख की चुँदड़ भेजी है, उसमें हजारों तारे जड़े हैं, वह चुँदड़ चाँद, सूरज से चमक रही हैं। बराती ढ़ोल बजाते तुझे ले जायेंगे। तेरा मिलन तेरे ब्रह्म में हो जायेगा।

भील जनजाति के लोग देह से प्राण निकलने के दस दिन तक ''काया भजन'' गाते हैं। उन भजनों में यही तत्व रहता है, कि आत्मा और परमात्मा एक है, यह अद्वैत कर एक धारणा है। आत्मा जिस शरीर में वास करती है, उस शरीर का एक परिवार रहता है। जिसका उनसे व्यक्तिगत सम्बन्ध रहता है। उस शरीर का परिवार से बिछुड जाना, परिवार जन को शोक का एक कारण होता हैं। उस शोक को कम करने के लिये वे नौ दिनों तक रात में गाये जाने वाले इन भजनों को निरगुण्या गीत भी कहते हैं। कुछ गीत आत्मा परमात्मा के संवाद के गीत होते है-

केटला वरसऽ तूऽ रमी रैऽ आत्मा
कठे थारो रैऽवासऽ
तटऽ कूनऽ पोसितोऽ
एटला दिवसऽ बिलमायऽ
थारों रेऽ पारिबिरमऽ तरसियों
तुझऽ सी परण्योंऽ जायऽ

भावार्थ:- हे आत्मा तू इतने बरस कहाँ रमी रही? तेरा रहवास कहाँ था? कौन ने तुझे खिलाया, पिलाया तू किसमें विलम गई? हे आत्मा, तेरा परब्रह्म जिसने तुझे वरण किया वह तरस रहा है।

आत्मा कहती हैं, हे पारिबिरम मैं तेरे से बिछुड़ कर बंजारी बन गई हूँ। मेरे पास कोई मार्ग नहीं है तुझ तक पहुँचने का मैं यहाँ माया मोह में फँस गई हूँ। तू स्वयं मुझे लेने आ।

भील लोग दसवें दिन सवा घड़ा भरते हैं, जिसमें गाय के गोबर से जमीन लीप कर उस पर जुवार के आटे से पुतला बनाते हैं, जिस पर जुवार बिछा कर काला घड़ा रखते हैं। इस घड़े में छेद रहते हैं। घड़े के भीतर दीया जलाकर रखते हैं और घड़े के मुख पर भी दीया जलाकर रखते हैं, भीतर जलता दीया आत्मा है, और घड़ा काया हैं। इस घड़े के पास मिटटी के कुल्हड़ो में वे सब भोज्य वस्तुऐं रखते हैं, जो मृतक को प्रिय थी।

अब परमब्रह्म आत्मा से कहते है कि 'तू आजा क्यों भटक रही है'। गीत है-

चलऽ बणजारणऽ आत्माऽ
देसऽ अपनाऽ वणिक बसतऽ रैऽ
केटले माँगऽ नाजऽ
सुपड़ा सु फोतराऽ फेकऽजे ऽ
चोरवोऽ रवाई जाऽ भातऽ
तू बिलमऽ गई ओऽ मोह मऽऽ
अऽऽ सारूऽ छेऽ अम्मर पाटऽऽ...

भावार्थ:- हे बंजारन आत्मा, तू इधर उधर भटक रही है। तुझे क्या चाहिए। अपने देश में बनिया रहता हैं, तुझको कितना अनाज चाहिए। तू सूपड़े से कचरा फटक कर फेंक देना और अच्छा उत्तम अनाज खाना। तेरे लिये यहाँ सब अमर है। राज पाट हैं, तू वहाँ का मोह छोड़कर आ जा। ऐसी जन मान्यता है, कि जिस शरीर में आत्मा ने इतने दिनों तक वास किया, वह शरीर आत्मा निकलते ही जला दिया गया। अब आत्मा बंजारे जैसे बिना शरीर के भटक रही है। ऐसे अवसर पर 'सवा घड़ा' भरकर, आत्मा को दीपक रूप में बुलाकर उसे अपनी पसन्द की चीजें खिला कर घड़े के साथ जल में विसर्जित कर देते हैं। इन गीतों को 'काया खोजी' गीत भी कहते हैं।

जब घट और दीपक को एक साथ जल में विसर्जित कर देते हैं, तो गाते हुए आते हैं कि आज इस आत्मा का मंगल हो गया हैं। अभी तक वह परब्रह्म से विलग थी अब एक हो गई। गीत-

प्रथमऽ मंगल आत्माऽ...
कऽऽ कऽऽ बिलमी जायऽ...
थारों रेऽ पारिबिरमऽ...
रमतो रमतो लई जायऽऽ...
प्रेम पियारी म्हारी आतमाऽ...
वरी लऽ वरी लऽ रेऽ भरतारऽ...
हिवड़ा री पियारी थारी आतमाऽ...
कतरों रे आतमाऽ को

भावार्थ:- हे आत्मा, यह तेरा मुख्य मंगल हैं। तेरा परब्रह्म तुझे बुला रहा है। तुझे बड़े आनन्द से ले जाएगा तु परब्रह्म की प्रेम प्यारी आत्मा हैं, परब्रह्म ने तेरा वरण किया है। अब तु धरती की माया मोह को छोड़कर अपने परब्रह्म का वरण कर ले, वह ह्रदय से तुझे

प्यार करता है। हे आत्मा तू मेरा ही भाग है। तू अब लौट आ ऐसा परब्रह्म कहते हैं। संत, ऋषि, ज्ञानी, महात्मा जिन्होंने साधना- जप-तप, तपस्या करके जीवन का मूल सार प्राप्त किया, उसी गूढ़ को जन-जाति के लोगो ने अपने व्यवहार अनुभव से सरलता से प्राप्त कर लिया है, वे जानते है, व्यवहार में द्वैत है। आचरण में आत्मा परमात्मा अलग-अलग दो नजर आते हैं। किन्ते यथार्थ में सब ही जीव आत्मा, परब्रह्म का स्वरूप ही है। इस अध्ययन से हम कह सकते हैं, कि परम्पराएँ हमें अद्वैत के दर्शन करा देती है। वे जन जातियाँ जो वन वनवान्तर खुले गगन तले रहती हैं। विशुद्ध भाव ग्रहण करती हैं, परमात्मा का उन्हें एक ही ज्ञान हैं, आत्मा ही परमात्मा है। संस्कारों के साथ ही लोक परम्पराएँ भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्हीं परम्पराओं के तहत ये लोग चिता में ही होम करते हैं। और कहते हैं- हे आत्मा तू इस अग्नि शिखा के साथ ही अपने गंतव्य में पहुँच जा मरतलोक का मोह भंग कर दे अपने देश जा और अपना भेद मिटा। तू जीवात्मा और परमात्मा की पहचान भूल गई क्या रे आत्मा तू दो (द्वैत) नहीं है एक ही है। परमात्मा ही हैं उसमें समा जा। जलती चिता को छोड लोग स्नान कर पुन: वही बैठकर भोजन करते हैं। 'जिसे''मसाण्या भोज'' कहते हैं।

यह भोजण प्रसन्नता से किया जाता है कि क्योकि आत्मा परिब्रह्म में समा गई। इसके पश्चात् तीन दिन पश्चात् अस्थि को पवित्र जल में विसर्जन कर देते हैं। जनजातियों में ऐसी मान्यता है, कि आत्मा दस दिन तक घर के डाँडे में रहती है, वास करती हैं। वह अपनी उस काया को खोजती है, जिसमें उसका वास था। काया जल जाने पर वह भटकती हैं इसी मान्यता को ध्यान में रखकर ''घट और दीपक'' को काया और आत्मा मानकर सवा घड़ा भरा जाता है, यह घट दीपक सहित जल में विसर्जन करते हैं ताकि जीव और देह याने देहात्मा एक साथ चली जाये ऐसा।

- लेखिका- वरिष्ठ लोक साहित्यकार है।
13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेंशन, बावड़िया कला, पोस्ट ऑफिस,
त्रिलंगा, भोपाल-462039
मो.: 9819549984

आवरण-चित्र के कलाकार संदीप कुमार मेघवाल

संदीप कुमार मेघवाल भारतीय कला परिदृश्य में एक सशक्त युवा कलाकार के रूप में जाने जाते हैं। उनकी कृतियां रहस्य, आध्यात्म और आदिम बिंबों की विरल छवियों को प्रस्तुत करती हैं । उनकी पेंटिंग दर्शक को, रूप के द्वैत से, अरूप के अद्वैत तक यात्रा पर ले जाती हैं। संदीप लोक-क्षेत्र से आते हैं तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कला का अध्यापन करते हैं, ऐसे में हम देख सकते हैं कि उनकी कृतियों का कलेवर लोक का आलोक लिए होता है। साथ ही उनकी कलाकारी तकनीक के स्तर पर नितांत अधुनातन शैलीगत विशेषताओं को अभिव्यक्त करती है। उनकी पेंटिंग में उनकी अपनी निजी शैली दिखाई पड़ती है। कैनवास पर रंग और आकार की बुनावट इतनी महीन, पोतदार और विस्मयकारी होती है कि देर तक निहारते जाने को मन करता है।

किसी भी स्तर पर संदीप किन्हीं अन्य कृतियों का अनुकरण नहीं करते। उनकी मौलिकता उनके चित्रों के वलयाकार आकारों, रंग योजना तथा अंतराल संयोजन में देखी जा सकती है । वे जमीन से जुड़े कलाकार हैं अत: रंगों के प्रति बर्ताव उन्हें विशिष्ट बनाता है । प्रस्तुत चित्र लोक शैली की आधुनिक अभिव्यंजना में बनाया गया एक अद्भुत चित्र है जिसमें अध्यात्म की गहरी परतें बिछी हैं। लोक जीवन का अद्वैत, किस रूप में, अथवा किस संवेदन में अभिव्यक्त हो सकता है उसकी बानगी यह कृति है । गहरी आस्था से जोड़ते आदिम आकार तथा मनस्थितियों के उर्ध्व विहान का संयोजन आकार से निराकार तक ले जाने वाला दीख पड़ता है। वस्तुत: संदीप मेघवाल का लोक आस्थाओं से गहरा जुड़ाव रहा है साथ ही लोक आस्थाओं के विविध आयामों में भी उनकी रुचि रही है इसी के बूते वे लोक में अद्वैत की अवधारणा पर इस चित्र में काम कर पाए हैं । जनजातियां पूरी तरह से आस्था के द्वार से होते हुए अद्वैत तक यात्रा करती हैं। यद्यपि उनका अद्वैत उस तरह से मुखर नहीं होता जिस तरह से हम वेदांती विचारधारा में देखते हैं किंतु इतना तो स्पष्ट है कि वह प्रकृति के प्रति शरणागत होते हुए अद्वैत को साधते हैं। इसी भाव भूमि पर यह आवरण चित्र प्रस्तुत किया गया है। कहा जा सकता है कि संदीप मेघवाल की कला-यात्रा आने वाले समय में और भी गहरे पक्षों को रचते हुए जीवन के मर्म के प्रति लोक आस्था को प्रगाढ़ करेंगी।

-चेतन औदिच्य

आलेख

आबू के अग्नि कुंड से जुड़े आदिवासियों की उद्भव कथा के उत्स

डॉ. महेन्द्र भानावत

अन्य सभी लोकों में आदिवासी लोक अलग है- वाचिक परंपरा में, सुर-लय में, जीवनधर्मिता में, आस्था-विश्वास में और मान्यता-मनौती में, संस्कार, सौहार्द तथा नानाविध सरोकारों में, मन-मस्तिष्क की चिंतना में, पूर्वजन्म-पुनर्जन्म की अवधारणा में, धर्म-अध्यात्म से जुड़े अनुष्ठान में, प्रकृति की सहजता में, रहस्यों के घेरे में, मन बहलाव में और ऐसे ही अनेकानेक लोकसंदर्भित विचार-व्यवहार, जल-जंगल तथा जड़ चेतन में। खोज की पगडंडियां कितना नाप पाती हैं- 'ज्यों-ज्यों बूड़ै श्याम रंग, त्यों-त्यों उज्वल होय।' जैसे एक परमेश्वर अनेक के हो सकते हैं वैसे ही आदिवासियों में जो कुछ मिलता है, उसका रूप-प्रतिरूप-स्वरूप अन्यत्र भी, अन्य वासियों में भी छाया-प्रतिछायावत चलन-प्रचलन में हो सकता है। किससे किसने कैसे कब कितना ग्रहण किया, कहना मुश्किल है।

किसी छापरड़े, अन उपजाऊ वीरान क्षेत्र में चलते पथिक को कोई वेरा-वेरी, बरसाती छोटा नाला-नाली मिल जाय और उसके रेतीले किनारे खबड़ी खोद कर, हाथ-आधा हाथ रेती इधर-उधर कर तनिक गहराई में से ही खुणच्ये-खुणच्ये, दोनों हाथों की हथेलियां मिला पानी निकाल अपनी प्यास बुझाकर तृप्त होने का सुख मिलता है, उसी प्रकार मैंने विगत अर्द्धशताब्दी के दौरान अपने यात्रा-प्रवास में अनेक लोगों से भेंटकर सार्थकरूपेण जो विविध सामग्री एकत्र की उसका संग्रह ही बड़ा अद्भुत है। यों भी हमारा देश बहुवाची, बहुवचनिक है। अनेक जातियां, अनेक सम्प्रदाय, अनेक वर्ग, अनेक वर्ण, अनेक सभ्यता, अनेक संस्कृति और अनेक समूह, जीवनधर्म, अध्यात्म तथा सत्कर्म। इन सबका सबरंग, सबरूप एक नहीं हो सकता लेकिन सबको बांधने वाली आत्मीयता तथा अंतरंगता अपने संवेदन में एकसूत्र बंधी है।

आजादी के बाद भारत की लोकतांत्रिक पहचान आदिवासियों, वंचितों तथा आखिरी पायदान पर खड़े आदमी तक पहुंची है पर हुआ क्या? उस लोकतांत्रिक सत्ता ने उनका कितना विकास किया? जो सर्वेक्षण, अध्ययन, अनुसंधान अब तक हुए हैं वे तो नकारात्मक प्रभाव ही अधिक बता रहे हैं। कई बार ऐसा लगा कि उनके लिए नियम, कानून तथा योजनाएं बनाते समय उनकी जीवनदृष्टि, उनकी परिस्थिति-परिवेश तथा उनकी चाह-चिंता का कोई ध्यान नहीं रखा गया।

आदिवासी जीवनधारा का कोई लिखित शास्त्र नहीं है। उसका बहुत सा हिस्सा अलिखित है। हर चीज लिखित से नहीं चलती। लिखित कानून होता है पर हर चीज कानून से भी नहीं चलती। आदिवासी समाज अपने ढंग से, अपने रंग में जीने वाला समाज है। जितने भी प्राचीन समुदाय हैं वे अपनी परम्परा से जीने के विश्वासी हैं। समूह में जीने के अभ्यासी हैं। वहां कानून और नियम कायदों की जरूरत क्यों हो? हो तो कैसी हो? यह विचारणीय है।

आदिवासियों में सामूहिक जीवन जीने की प्रधानता अब समाप्त होती जा रही है। तब गलती के लिए जो कानून और दंड विधान था वह सामूहिकता लिए था। भील समाज में प्रचलित मौताणा प्रथा को ही लें। अब उसका स्वरूप बड़ा भयंकर बनता दिखाई दे रहा है। प्रख्यात समाज विज्ञानी प्रो. ब्रजराज चौहान से हुई बातचीत में उन्होंने मुझे बताया, 'मौताणा आधुनिक हिसाब से क्राइम है, अपराध है। आदिवासियों ने जिसे सिविल माना, हमने उसे क्राइम मान लिया। सिविल रूप में मौताणा समस्या है, क्राइम नहीं। जो हानि हुई है, क्षतिपूर्ति द्वारा वह संभव है। मौताणा में समझौता है। जिस किसी की गलती की क्षतिपूर्ति संभव हो, उस समाज को पिछड़ा कैसे कहेंगे? वह तो अधिक विकसित समाज है।'

आदिवासियों के सामूहिक अनुभूति-स्वर से गंगासहाय मीणा भी उतने ही सहमत हैं। उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है, 'आदिवासी जीवन से लेकर आदिवासी साहित्य तक में शास्त्रों और सिद्धांतों के लिए कोई जगह नहीं है। उनके समाज में साहित्य अन्य कला-माध्यमों से अलग और श्रेष्ठ नहीं माना जाता। उनकी लम्बी परंपरा में सामूहिकता का बोध ही सर्वोपरि है। उनमें मौजूद मौखिक साहित्य या पुरखौती में कौनसा-कौनसा गीत, नृत्य किंवा संगीत

किसने रचा, बताना मुश्किल है। सभी रचनाएं सामूहिक रूप से हुई हैं।

उनकी दृष्टि में आदिवासी पूर्णत: प्रकृति पुरूष हैं। उनके दर्शन में प्रकृति और पुरखों के प्रति आभार का भाव निहित है। पुरखों के कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आदिवासी रचनाकार कृतज्ञता व्यक्त करता है। उनका दर्शन परलोक के बजाय समूचे जीवजगत को महत्वपूर्ण मानता है तथा मनुष्य की श्रेष्ठता के दंभी दावे को खारिज करता है। यह समाज खुद को तमाम नदियों, पहाड़ों तथा जंगलों का संरक्षक मानता है और उन्हें बचाना अपना कर्तव्य समझता है।

ऐसे सहजीवन, सहभागिता, सहअस्तित्व तथा समता-सुखजीवी आदिवासी समाज का अध्ययन समग्रत: उनकी मातृभाषी परंपराओं में सुरक्षित है इसलिए उनके जीवन-जगत और विश्व-विशाल दृष्टिकोण को समझने के लिए भी उन्हीं की मातृभाषाओं तक पहुंचना होगा।' (जनसत्ता, 6 जुलाई 2014)

भविष्य पुराण का श्लोक भी यही कह रहा है-

दश कूप समा वापी, दश वापी समो ह्रदः।
दश ह्रद समः पुत्रो, दश पुत्र समो द्रुमः।।

अर्थात् दश कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावडियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष। जल, जंगल और जीवन तीनों का अस्तित्व अन्योन्याश्रित है।

मैने भी लिखा था-

वृक्ष कटता है जैसे परिवार कटता है
अपनी ऊंगली तो काटकर देखो तुम
कितनों का सहारा होता है वृक्ष
कितनों का घरबार, जीवन और
संसार होता है वृक्ष
तुम्हें क्या मालूम।

-(कोई-कोई औरत, पृष्ठ 15)

उदयपुर में 50 वर्ष पहले मैं जिस बस्ती कृष्णपुरा में रहने आया, उसमें सभी जातियों के निवासी थे। इसलिए मैं यह देख सका कि एक ही त्यौहार, उत्सव, संस्कार, अनुष्ठान को अलग-अलग लोग किस-किस अंदाज में मनाते हैं। फिर उन्हीं चीजों को, उन्हीं जातियों में गांवों में जाकर देखा। अलग-अलग जातियों में भी उनके कुछ आधे, कुछ अधूरे, कुछ मिटते, कुछ सिकुड़ते तो कुछ फैलते रूप देखे। जाने-अनजाने में भी एक-दूसरे ने एक-दूसरे का प्रभाव ग्रहण किया। उस प्रभाव पर अपनेपन की, समाज की, अंचल विशेष की छाप भी लगी दिखाई दी। फिर परिवार में जो बालिका वधू बनकर आई या वधू बनकर गई, वह भी बहुत कुछ संस्कार-संस्कृतिगत सौजन्य अपने साथ लाई-लेगई। सूक्ष्म अध्ययन करने पर कुछ प्रभाव का तो पता लगता है किंतु बहुत सी बातों का प्रभाव दिखाई नहीं देता, मात्र महसूस होता है, कभी-कभी नहीं भी होता है।

आदिवासियों की जीवनधारा, समस्याएं एवं चुनौतियों को लेकर बड़ी-बड़ी जगह, बड़े-बड़े तामजाम और बड़े-बड़े ज्ञानीजनों के साथ बड़े-बड़े सेमीनार, बड़ी-बड़ी संगोष्ठियां, बड़ी-बड़ी कार्यशालाएं तथा बड़ी-बड़ी प्रदर्शनियों का आयोजन होता है। मैं इनका साक्षी रहा। वहां सब कुछ होता है परन्तु जिन्हें प्राथमिकता से होना होता है, वे आदिवासी नहीं होते। वहां विचार करनेवाले तो होते हैं मगर कुछ करनेवाले नहीं होते। सुझाव देने वाले तो होते हैं मगर साझा करनेवाले नहीं होते। कहते हैं, दीवालों के कान होते हैं तो वहां दीवालें अवश्य सुनती होंगी किंतु जिनसे सुनना, सुनकर समझना, समझकर चिंतन करना तथा चिंतन कर समस्या का स्थायी निष्कर्ष-निदान करने वाला आदिवासी नहीं होता।

आदिवासियों की एक हस्तकला प्रदर्शनीपरान्त वैचारिक वीथिका में मैंने कहा कि उनके द्वारा निर्मित कुछ ही चीजों का यदि आकर्षक स्वरूप निखारा जाय तो उनका बाजार बन सकता है। खासतौर से उदयपुर क्षेत्र में, आदिवासी अपने गवरी नृत्य में नायक राईबुडिया तथा खेतुड़ी जो मुखौटा धारण करती है उसका ओपमा देता रूप तलाशा-तराशा जाना होगा। ऐसे प्रयोग हमने राजस्थान की पड़ कला, कावड़ कला, कठपुतली कला में उनसे जुड़े चितेरों-कलाकारों से करवाये हैं फलस्वरूप इन मृतप्राय कलारूपों का पुनर्नवीकरण हुआ और वे कलाकार आर्थिक दृष्टि से भी सबल बने हुए हैं।

वहीं बैठे समाजशास्त्र के एक प्रोफेसर ने बिना सोचे-समझे सुझाव दे डाला कि क्या ही अच्छा हो, राईबुडिये के मुखौटे की बजाय ओबामा और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के मुखौटे बनाये जाय ताकि उनकी बिक्री से असीम धन-राशि प्राप्त की जा सके। मैंने तत्काल उनके इस कथन से असहमति जाहिर की और कहा कि तब क्या उन मुखौटों में आदिवासी समाज के आदिमपन की सांस्कृतिक एवं कलात्मक गंध रह पायेगी ?

यहीं मुझे वह संगोष्ठी याद आ गई जिसे 8 अक्टूबर 1972 को मैंने भारतीय लोककला मंडल में आयोजित की थी। इसका विषय था- 'लोककलाओं का पुनरूद्धार और भावी संभावनाएं।' श्री

जगदीशचन्द्र माथुर की अध्यक्षता में हुई इस संगोष्ठी में सर्वश्री देवीलाल सामर, कोमल कोठारी, विजय वर्मा, डॉ. नरेन्द्र भानावत, मालती शर्मा, पुष्कर चंदरवाकर आदि की महत्वपूर्ण भागीदारी रही।

'लोककलाएं: पुनरूद्धार की प्रक्रिया' शीर्षक अपने परचे में मैंने जो प्रश्न उठाये, उनका उल्लेख करते हुए अपनी 51 पृष्ठीय भूमिका के लेखक डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा, 'लोककला भ्रष्ट हो रही है, उसमें विकार आ रहा है, साथ ही उसका व्यावसायीकरण और शहरीकरण हो रहा है। यह भी कि जिन संरक्षकों और पोषकों में लोककला समाहित थी, उसमें परिवर्तन हो रहा है। इन बातों को दृष्टि में रखकर ही डॉ. महेन्द्र भानावत ने ये प्रश्न खड़े किए हैं। खड़े नहीं किए उन्होंने, पर उन्हें परिस्थितियों और परिवेश में ये प्रश्न खड़े होते दिखते हैं। उनके प्रश्न ये हैं–

(1) आज की बदलती हुई जीवन–व्यवस्था में इन कलाओं का क्या रूप हो ?

(2) क्या ये कलाएं अपने पारंपरिक परिवेश में ही जीवित रह सकती हैं ?

(3) और यदि इनमें परिवर्तन–परिवर्धन हो तो वह किस सीमा तक हो ?

(4) यह परिवर्तन–परिवर्धन कलाकार स्वयं करे या कोई अन्य दृष्टिवान कला–पुरूष ?

(5) और क्या यह परिवर्तन ऐसा नहीं लगेगा जैसे थोपा हुआ हो ?

(6) क्या दर्शक और प्रदर्शक का एक मन उसे आंख मींचकर स्वीकार कर लेगा ?'

–लोककला: मूल्य और संदर्भ, भूमिका, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 46

आबू पर्वत राजस्थान का अत्यन्त पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्थल तो है ही किन्तु उतना ही रहस्यमय, अनुपम और अलौकिक भी। पूर्व में यह अर्बुदाचल नाम से प्रसिद्ध था जो आगे जाकर आबू के रूप में परिवर्तित हो गया।

प्रसिद्धि है कि पौराणिक काल में उत्तक मुनि द्वारा इन्द्र के व्रज–प्रहार से बने पाताल पर्यान्त विशाल खड्डे में महर्षि वशिष्ठ की कामधेनु नन्दिनी गिर गई। इस पर वशिष्ठ पर्वतराज हिमालय के पास गये और आग्रह किया कि किसी पर्वत को भेजकर उस खाई को समतल करवादें। हिमालय ने कहा कि इन्द्र द्वारा सभी पर्वतों के पंख काट देने से यह कार्य दुष्कर है। इस पर वशिष्ठ ने उपाय बताया कि आपके पुत्र नंदीवर्धन का मित्र अर्बुद नाग है, वह चाहे तो किसी भी पर्वत को धारण कर आकाश मार्ग से वहां पहुंच उस खाई को पाट सकता है।

इस पर वशिष्ठ के साथ नंदीवर्धन पर्वत अबुर्द नाग पहुंचे और खड्डे में नंदीवर्धन को स्थापित कर दिया। तब से अबुर्द नाग अर्बुदांचल के रूप में जाना गया।[1]

यहां अग्निकुण्ड स्थापित है। इसके लिए कहा जाता है कि हैहयवंशीय सहस्त्रबाहु अर्जुन ने अपने बाहुबल–अभिमान से जमदाग्नि ऋषि का वध कर उनकी कामधेनु का अपहरण कर लिया तब ऋषि–पुत्र परशुराम ने है हयवंशीय क्षत्रियों का उनके सहयोगियों सहित 21 बार संहार कर उनका राज्य ब्राह्मणों को दे दिया। इससे शासन–व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई परन्तु वशिष्ठजी के आग्रह करने पर भी कोई क्षत्रिय राज्य लेने को तैयार नहीं हुआ। इस पर उन्होंने एक विशाल सर्वमेघ यज्ञ किया जिसमें चार महान देवताओं का आव्हान कर उनके अंश से विविध अस्त्र–शस्त्रों से सुशोभित चार राजकुमार अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए जो अग्निवंशीय कहलाये। इससे क्षत्रिय जाति का विस्तार हुआ।

चार महान देवताओं में विष्णु के अंश से चौहान, इन्द्र के अंश से परमार, शंकर के अंश से सोलंकी तथा ब्रह्म के अंश से प्रतिहार किंवा परिहार हुए। वशिष्ठ ने उन्हें क्षत्रित्व प्रदान कर राजपुत्र की संज्ञा दी जिससे इनका गोत्र वशिष्ठ हुआ।[2]

अपनी खोजयात्रा में उदयपुर के निकट बड़ी ऊंदरी निवासी 102 वर्षीय उदा पारगी ने 02 जून 2002 को हुई बातचीत में भी इसी अग्निकुण्ड का हवाला देते बताया कि चह्वाण वंश में एक नरु राजा हुआ। एकबार विवाह की खुशी में वह एक कलाली के घर में घुस गया और खूब छककर दारू पी। कुछ समय बाद जब उसे तेज भूख लगी तो पाड़ा काट खाया। ये दोनों ही कार्य उसकी प्रतिष्ठा और मर्यादा के अनुकूल नहीं थे। सुबह जब नरु राजा का मद उतरा और सरदारों की नजर पाड़े की पूंछ पर पड़ी

तो बात फैल गई कि नरु राजा तो आधी में ही वास गया था, पाड़ा खाने से वटल गया था। लोगों में एक कान से दूसरे कान बात फूटी कि नरु राजा आधी (अर्द्धरात्रि) में वासी (वासने–बू देने वाला) हो गया। इससे लोग उसे 'आधी–वासी' कहने लग गये। इसी आधीवासी से कालान्तर में 'आदिवासी' नाम चल पड़ा।

इस नरु ने 108 विवाह किए पर संतान एक भी नहीं हुई तब बांसवाड़ा जिले के धारणा गांव (वर्तमान में यह गांव प्रतापगढ़ जिला बनने से उसमें है) के आमवृक्ष पर एक सौ आठ पालने बांधे गए। इस आम वृक्ष के नीचे लोकदेवता आमल्या बावसी का स्थान है। संतान नहीं होने की स्थिति में देवता को मनौती बोली गई और पालने बंधवाये गये फलस्वरूप नरुके एक सौ आठ बालक हुए। आगे

जाकर आदिवासियों की एक सौ आठ खांपें अथवा गोत्रें चलीं।[3]

संतान नहीं होने की स्थिति में लोकदेवी-देवता के थानक (देवरे) पर आज भी पालना बांधा जाता है जिससे देवता प्रसन्न होकर नि:संतानों को संतान देते हैं। बांसवाड़ा में ये आदिवासी सब ओर फैल गए। पूरे राजस्थान में यदि आदिवासियों की गणना की जाय तो आज भी सर्वाधिक आदिवासी बांसवाड़ा जिले में मिलेंगे।

नरु राजा से निनामा निकले। बांसवाड़ा जिले में यदि आदिवासियों की सभी खांपों का अध्ययन किया जाय तो सर्वाधिक संख्या निनामा आदिवासियों की मिलेंगी। कई गांव ऐसे मिलेंगे जिनमें निनामा आदिवासियों का बाहुल्य पाया जाता है। आदिवासी लोकसंगीत की अध्येता मालिनी काले ने मुझे बताया कि जोगी लोग नरु राजा से सम्बन्धित कथा-गाथा का गान भी करते हैं। गुजराती आदिवासी लोक के जानेमाने विद्वान डॉ. भगवानदास पटेल ने सूचना दी कि इधर आदिवासियों में नर राजा का आख्यान प्रचलित है। संभव है यह नर ही नरु राजा हो। राजा नरु से 108 गोत्रें चलीं। गोत्र को आदिवासी अटक बोलते हैं। इनकी संख्या इस प्रकार है-

(1) अंगारी (2) अमरात (3) अहारी, अहारा, अहार, अहीर (4)उठेड़ (5) उदावत (6) कटारा (7) कपाया (8) कलउवा, कालासुआ (9)कसीटा (10) कूरिया (11) कोटेड़ (12) खरवड़ (13)खराड़ी (14) खूंखड़ (15)खोखारिया (16) गमेती (17) गराया, गरासिया (18) गेलोत, गेहलोत (19) गोगरा (20) गोदा (21) गोरणा (22) घुघरा (23) घोड़ा (24) चदाणा (25) चवाण, चव्हाण (26) चरपोटा (27) जोगात, जगावत (28) जोसियाला (29) झड़पा (30) डगासा (31) डागर, डामरत (32) डैंडोर, डींडोर, डोडियार (33) डामर, डामरत (34) डामोर (35) डूंगरी (36) तंवर (37) तावड़, तामड़, (38) तावेड़ (39) तेजोत (40) दमणात (41) दरांगी (42) दाणा, दायणा (43) दामा, दायमा (44)धलोविया (45) धांगी (46) धोरणा (47) नटारा (48) ननामा, निनामा (49) ननोत (50) नीबो (51) पडियार (52) पटेला (53) परमार (54) पांडेर (55) पांडोट (56) पारगी (57) पालिपी (58) बंडोडा (59) बड़ (60) बरंडा (61) बरगट (62) बरोड़, बरड़ (63) बाणिया (64) बामणा, बामणिया, बूमडिया (65) बूज, बोज (66) भगोरा (67) भदावत (68) भणात (69) भाकलिया (70) भाटी (71) मंडोत (72) मईड़ा (73) मकवाना (74) मतात, मनात (75) मदुड़ा (76) मनात (77) मसार (78) महेडिया (79) माल, मालर (80) मालीवाल (81) मावी, मारी, मोरी (82) मोगिया (83) रंगोत (84) रतनात (85) राठौड़ (86) राणा, राणोत, रेड़ोत (87) रोत (88) रेलावत (89) रेवाल (90) रावत (91) लउर (92) लट्ट (93) वगाणा (94) वडेरा (95) वेणोत (96) वरहात (97) वराड़ा (98) वाहिया (99) सदाणा (100) सरपोटा (101) सांगिया (102) सारल (103) सीवणा, सीवाणा (104) हड़ात, हड़ाल (105) हरमर, हरमोर (106)हिंडोर (107) हीराता हीरोत, हुरात (108) होंता।[4]

संदर्भ सूत्र :

1. अर्बुदांचल स्मारिका, 2018, राजस्थान पेंशनर समाज, आबू रोड़, पृ. 92
2. वही, ऐतिहासिक अग्निकुण्ड, सीताराम वैष्णव, पृ. 93, यह स्मारिका आबू रोड़ निवासी मगनलाल खण्डेलवाल से प्राप्त हुई।
3. आदिवासी लोक, डॉ. महेन्द्र भानावत, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2015, पृ. 12-13
4. उदयपुर के आदिवासी, डॉ. महेन्द्र भानावत, भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर, 1993, पृ. 18-20

352, श्री कृष्णपुरा, सेंट पॉल स्कूल के पास, उदयपुर- 313001 (राज.)
मो.- 9351609040

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

आलेख

जनजातीय संस्कृति बहुदेवतावादी, पर अद्वैत को भी स्थान

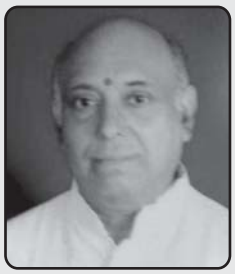

शिव कुमार पाण्डेय

जनजातीय संस्कृति का उद्भव और विकास की कहानी वन्य प्राणियों से जुड़ी है। जहाँ पहले एकाकी घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करते हुए शनैःशनैः समूहों में मानव रहने लगा इसलिये इसको जनजातीय संस्कृति कहना ठीक नहीं यह वनवासी संस्कृति है। यहाँ निवास करने वाले प्रारम्भ में एकाकी फिर समूह में रहते हुए समुदाय के रूप में परिवर्तित हुए। उन्हें वातावरण पेड-पौधे, नदी और तालाब, वन, वन्य जीवों का भरपूर मिला। पेट भरने के लिए प्रचूर मात्रा में खाने के लिए फल-फूल, मूल, उपलब्ध मिला नहीं शिकार करने सहित पेट भरने के किये वन्य-जीव, प्यास मिटाने के लिये नदी-तालाबों का अस्तित्व था। प्रकृति के इस सुरम्य वातावरण में उन्हें आकाश के दर्शन हुए जिनमें झिलमिलाते तारे रोशनी फैलाते सूर्य एवं चन्द्रमा के दर्शन सहित दिन, रात का आभास हुआ साथ ही गर्मी, वर्षा एवं ठंडक का अनुभव किया उन्हें प्रकृति का बहुत से अनुभव सुखभर लगा। कुछ अनुभवों से उसे संघर्ष को विवश किया। इस वातावरण में जिन पेड़-पौधों ने, वन्यजीवों ने, नदी तालाब ने, आकाश में विद्यमान, सूर्य, चन्द्रमा, तारे ने उसे सुख और आनंद दिया। हवा के झोंके से उन्हें सुखमिला उनकी वे पूजा करने लगें, अर्चना की आराधना में उन्हें सुख-शान्ति की अनुभूति हूई। ये सभी चीजों उसके सामने थी जिनका प्रत्यक्ष अनुभव वे कर सकते थें वे सभी साकार थे इसलिये वह देवता वाद अस्तित्व में आया। प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की पूजा ही उनकी प्रथम पूजा है। जो इनकी आस्था-विश्वास का केन्द्र बना। प्रकृति पूजा होने के कारण ही प्रकृति में आने वाली प्रत्येक वस्तु जो उन्हें लाभकर लगी वह उनके लिये अर्चना की वस्तु बनी। ये सभी वस्तुएँ उनके आँखो के सामने थी इसलिये इनकी पूजा साकार की पूजा रही निराकार की नहीं। पेड़ सहित सभी उपल्ब्ध वस्तुओं की उपलब्धता में विविधता रही इसलिये वनवासियों की पूजा अर्चना विविधता लिये है। प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की पूजा ही उनकी प्रथम पूजा है उसी आस्था और विश्वास के साथ वह आज भी प्रकृति के विभिन्न अंगों की पूजा कर रहा है। वनवासियों की यही प्रकृति पूजा समूदाय से समाज में आई इसलिए वनवासियों के अतिरिक्त भी सभी पेड़-पौधे, जलस्त्रोत, आकाश के सूर्य चन्द्रमा की पूजा करते हैं। भारत के अतिरिक्त विश्व में भी प्रकृति पूजा का अस्तित्व पूर्व में था, आज भी हैं। स्वरूप में परिवर्तन अवश्य है।

वनवासियो की प्रकृति पूजा के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें Animist कहा। अर्थात् उसने माना कि ये किसी धर्म के खांचे में नहीं प्रकृति पूजक हैं परन्तु ऐसी प्रस्थापना करने वाले यह भूल गया कि पूरे संसार का गैरवनवासी भी प्रकृति के विभिन्न अंगों की पूजा करता हैं। स्वरूप भले ही भिन्न हो। इस प्रस्थापना को भारतीय मानव शास्त्रीयों का भी सम्बल मिला और आज विश्वविद्यालयों के मानव शास्त्री तथा समाज शास्त्री इन्हें Animist ही मानते हैं। वे यह भूल गये कि पूरा संसार ही किसी न किसी रूप में प्रकृति की पूजा करता है। यह प्रस्थापना सच को अस्वीकार करने जैसी हैं।

वनवासियों ने मनुष्य को मरते जीते देखा प्रारम्भिक अवस्था में यह उनके किये आश्चर्य की घटना थी परन्तु इस घटना क्रम ने उन्हें पूर्वजों की पूजा की ओर प्रेरित किया। कालान्तर में उसकी यह धारणा बनी कि मरने वाला पुनः उनके ही घर जन्म लेता है। यह जानने के लिये कि किस पूर्वज ने उनके घर जन्म लिया है। अलग-अलग विधियाँ विकसित हुई और जन्मने वाले का नामकरण भी उसी पूर्वज के नाम किया गया। पूर्वजों यह पूजा गैरआदिवासी समुदाय ने भी अपनायी और पूर्वजों की पूजा का अनुष्ठान प्रारम्भ किया न केवल भारत में वरण पूरे विश्व के अलग-अलग हिस्सों में पूर्वजों वे प्रति पूजा अथवा सम्मान के विविध प्रकार प्रचलन में आये।

बदलते क्रम में जंगली वस्तुओं पर अपना स्वयं का दावा करने वाला मनुष्य समूह से समुदाय में परिवर्तित होते ही व्यक्तिगत-अधिकार छोडकर सामुदायिक अधिकार को मान्यता देने तथा इसी क्रम में वन उपलब्धता की सामूहिक पहचान बनी उसने पेड़-पौधों, वन्य जीवों से अपनी पहचान बनाई एवं दूसरे से पृथक अस्तित्व

दर्शाने वाला 'गोत्र' संस्था जन्म हुआ जिसने कालान्तर में विवाह नामक संस्था को नियामक करने में अपनी महती भूमिका अदा की वनवासी क्षेत्र के क्रमों में ग्राम देवता की पूजा, कुल देवता की पूजा, का अस्तित्व है। इनके स्थान बने हैं। पूरा गाँव किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में पूरा इलाका इसमें समाहित होता हैं। देवताओं के साथ देवी का स्थान भी हैं। पशुओं के बाँधने के स्थान पर भी पूजा होती है। फसलों के बोवाई कटाई पर भी पूजा होती हैं। वनों में उपल्ब्ध औषधीय पौधे,पेड़ों से औषधि मसलन छाल उमाल, पत्री, जड़ आदि बिना पूजा अर्चना के नहीं लिये जाते। किन्ही-किन्ही इलाकों में तो औषधि लेने के पहले कुछ न कुछ अर्पण करने का रिवाज है। यहाँ तक कि पकाया हुआ भोजन में अर्पण के काम आता है।

महादेव शंकर जी पूजा अर्चना का अस्तित्व पूरे वनवासी अंचलों में है। दक्षिण भारत की जनजातियाँ तो महादेव के भजनों का गायन कर महादेव शिवजी की पूजा अर्चना का प्रचार करती शदियों पूर्व में पाई गई हैं। दक्षिण भारत में शिव के साथ साथ शिव पूजक (अर्थात् शिव भक्त) की भी पूजा का अस्तित्व हैं। शिव मंदिरों में भक्तों की मूर्ति भी स्थापित है। जिसकी पूजा अर्चना शिव की ही भाँति की जाती है मध्यप्रदेश के महाकाल को भी वनवासियों के देवता के रूप में प्रतिष्ठापित माना जाता है। कहा जाता है कि यहाँ पहले मैदान था उस मैदान में पेड़ की डाल गाड़कर उसके इर्द-गिर्द वनवासी घूमघूम का नृत्य करते थे। वनवासियों द्वारा गाई जाने वाली गाथाओं में रामकृष्ण, दुर्गा, महादेव, इन्द्र, वरूण आदि देवी-देवताओं की प्रशस्ति गीत गाये जाते हैं। 'रामायनी' 'पण्डुवानी' रामकथा एवं महाभारत की कथा का गुणगान करती हैं। हाँलाकि उसकी विषय वस्तु एवं कथा का पृथक हैं। रामायनी लक्ष्मण एवं इन्द्र की कन्याओं के संघर्ष की कहानी विभिन्न सर्गो में गाती हैं जिसके फलस्वरूप राम और इन्द्र के बीच संघर्ष होता है जिसमें राम की ओर से कई देवी देवताओं के समिल्लित होने का उल्लेख है। रामायणी लक्ष्मण की अग्नि परीक्षा को उद्घाटित करती हैं। नव कि गैर वनवासी रामायन में सीता को अग्नि परीक्षा करने का उल्लेख हैं। पण्डुवानी भी महाभारत की कथा पृथक रूप में वनवासी संस्कृति अनुरूप गाती हैं। जिसमें वनवासी प्रथा परम्परा का दिग्दर्शन होता है इसके अतिरिक्त राजा भरथरी, सत्यवादी हरीशचन्द्र, आदि नायको की गाथाओं को गाने का चलन भी है। गोंड़वानी गाथा गायन में युद्ध में जाने वाले राजाओं के शस्त्र पूजन, शक्ति पूजन एवं अपने कुल देवताओं की पूजा-अर्चना का अस्तित्व प्रस्थान करते समय है।

वनवासी अपने-अपने वर्ग की उत्पत्ति की कथा भी कहते हैं जिससे विभिन्न देवी, देवता के अस्तित्व का उद्बोध होता हैं।

कोरकू जनजाति की कथा में महादेव से जनजाति की उत्पत्ति का उल्लेख हैं जिनमें एक नारी एक पुरूष की आकृति बनाकर उसमें प्राण फूँक दिए। इस प्रयास में रावण एवं इन्द्र का जिक्र भी आता है। बैगा जनजाति में उत्पत्ति की अनेक कथाएँ प्रचलन में है। एक कथा अनुसार ब्रह्मा ने जल में धरती बनाई। धरती फोड़कर दो साधु निकले। पहला ब्राह्मण और दूसरा साधू नागा बैगा था। ब्रह्मा ने ब्राह्मण को लिखने पढ़ने के लिये कागज थमा दिया और नागा बैगा को कोदो, कुटकी देकर खेती करने का आदेश दिया एवं अन्य कथा में एक को बैगा और दूसरे को गोंड बताती है नागा बैगा को टंगिया लेकर जंगल काटने चला जाता है और गोंड नागर संभाल लेता है भील जनजाति भी अपनी उत्पत्ति महादेव से मानती हैं। उनसे उत्पन्न एवं कुरूप वानर ने महादेव के नांदिया का बध किया। महादेव ने क्रोध में उसे वन्य प्रान्तर में छुडवाया उसी के वंशज भील कहलायें। गोंड जनजाति की उत्पत्ति भी महादेव से उत्पन्न होने की कथा प्रचलित है जिसमें कहा गया है कि एक दिन भगवान के हाथ में फोड़ा हुआ। फोड़ा पका, फूटा उससे महादेव पार्वती का जन्म हुआ। महादेव के पेशाब से पृथ्वी पर वनस्पतियाँ उगी। जिन्हें खाकर पार्वती गर्भवती हुई। पार्वती के गर्भ में ब्रह्माण्डों के देवों के अठारह खलिहान और गोंड के देवों के बारह खलिहान पैदा हुए। भारिया वनवासी अपने आप को शिव का वंशज बतलातें हैं जब कि सहरिया ब्रह्मा द्वारा रचित मुंडा समूह के सिंग बैगा अर्थात् सूर्यदेव से अपनी उत्पत्ति की कथाएँ कहती हैं। उक्त सभी उत्पत्ति सर्वेदित देवी-देवताओं की पूजा अर्चना विभिन्न प्रचलित तीज त्योंहारों पर की जाती हैं।

वनवासियों के अधिकतर तीज, त्यौहार वनों एवं कृषि कार्यो से सम्बंधित है विभिन्न अवसरों पर विभिन्न देवी देवता की पूजा अर्चना की जाती है।

वनवासी अंचलों में ग्राम देवता, कुलदेवता, स्थान देवता की पूजा धूमधाम से की जाती हैं। ग्रामों में ग्राम देवता के स्थान हैं जिनमें मंदिर मढिया बनी है यहाँ पूरा ग्राम जूटता है और अपनी पारम्परीक पद्धति को अपनाते हुए गुनिया, भूमिका बैगा द्वारा पूजा सम्पन्न की जाती है। प्रत्येक वनवासी घरों में उनके कुल देवता का स्थान है जहाँ या तो त्रिशुल गड़ा हैं अथवा चबूतरा बना हैं इस पवित्र स्थान पर कुल देवता की पूजा की जाती हैं खेत, खलिहान, पैदावार के लिये विभिन्न त्यौहार व उत्सव है जहाँ सभी अवसरों पर पूजा का विधान हैं। वनवासी अंचलों यात्रा करते समय वनों में वंजारी माता अथवा मारूति के स्थान हैं जहाँ बसें रोककर नारियल, ऊदबत्ती, चढ़ाई

जाती है। हिंगलाज माता के मंदिर की कुछ क्षेत्रों में विद्यमान बस्तर की दन्तेश्वरी, मेहर की माता, शमलेश्वरी, वमलेश्वरी, विजयामन की पूजा भी स्थान देवता की पूजा के रूप में की जाती है। इसमें भी कई साकार, कई निराकार वर्ष भर तीज त्यौहार मनायें जाते है। जिसमें विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा अपने-अपने विश्वास के अनुसार की जाती हैं त्योंहारों पर सामूहिक गीत एवं नृत्य के पूर्व पूजा करने की परम्परा हैं करमा त्योंहार पर करमगच्छ की पूजा की जाती हैं। ओरॉव जनजाति अपने वार्सिक सरना पूजा के अवसर पर शाल वृक्ष के डाल की पूजा की जाती है।

आचार्य शंकर अद्वैत दर्शन के प्रतिपादक हैं जो परिवर्तन शील एवं सीमित सभी आकार-प्रकार एवं नाम रूप को मिथ्या मानते हैं इसलिए नहीं कि वह बदल जाती हैं अथवा इसलिए भी नहीं कि वह है ही नहीं यह निराकार का दर्शन है।

वनवासियों में भी कई पूजा ऐसे देवों की की जाती हैं जो निराकार कहे जा सकते हैं जैसे भीलों की जल पूजा, गाँव से रोग भगाने की प्रक्रिया की पूजा, गाँव में रोग न आने देने की पूजा, कहीं-कहीं रोग न आने देने के बदले पूजा, पाठ के बाद पोटलियाँ टॉगी जाती हैं ताकि उस जगह के पशचात् गाँव में रोग न घुस सके भूत-प्रेत, जादू-टोना, झाड-फूँक, तंत्र-मंत्र के साथ पूजा के अनुष्ठान भी किये जाते हैं।

उपरोक्त विशेषता से स्पष्ट हैं कि वनवासी संस्कृति मूल रूप से अद्वैत संस्कृति न होकर बहु देवता वाद की साकार संस्कृति है। सनातन संस्कृति है जो परिवर्तित रूप से वर्तमान में भी गैर जनजातीय संस्कृति में भी विद्यमान हैं। सनातन संस्कृति मूल रूप से वनवासियों की देन हैं।

-लेखक वरिष्ठ जनजातीय अध्येता है।
सेवानिवृत संयुक्त संचालक,
आदिम जाति अनुसधान संस्थान, म.प्र.
188, कल्पना नगर, रायसेन रोड, भेपाल- 462022
मो. 9893494461

पयोधि का लिखा फिल्मी गीत टी-सीरीज़ ने किया जारी

भोपाल। राजधानी भोपाल के प्रतिष्ठित साहित्यकार लक्ष्मीनारायण पयोधि द्वारा 'ऑपरेशन मेफ़ेयर' फिल्म के लिखा गया 'ख़्वाहिशे रूह की' गीत का वीडियो अग्रणी म्यूजिक कंपनी टी-सीरीज़ ने गुरुवार को अपने यूट्यूब चैनल पर जारी किया। शाम को 4 बजे जारी इस वीडियो को कुछ ही घंटों में 80 हज़ार से अधिक लोगों द्वारा देखा गया। फिल्म के संगीत निर्देशक सेव्वी दवारा कंपोज्ड पयोधि के इस गीत को देव अरिजित ने अपनी आवाज़ दी है। घोषणा के अनुसार यह फिल्म 24 मार्च 2023 को रिलीज़ होगी।

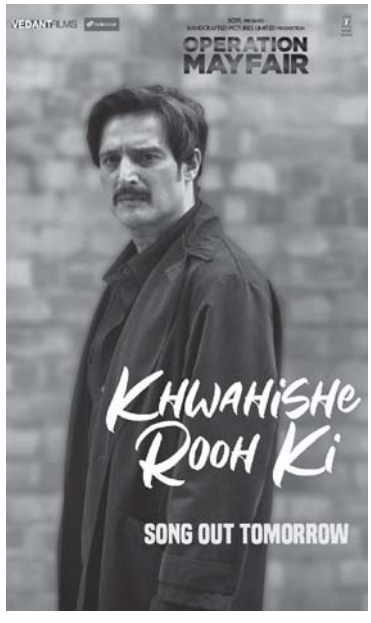

गौरतलब है कि अंथोनी खट्चुरियन की मूल कथा पर आधारित फिल्म 'ऑपरेशन मेफ़ेयर' की पटकथा फ़िल्म के निर्देशक सुदीप्तो सरकार ने लिखी है। फ़िल्म में जानेमाने अभिनेता जिम्मी शेरगिल मुख्य भूमिका में हैं। इनके अलावा अंकर भाटिया, वेदिक दत्त रितिका, छिब्बर, वेदांत और अंजली सरकार भी इस फिल्म में दिखाई देंगे।

उल्लेखनीय है कि 'कला समय' पत्रिका के मार्गदर्शक लक्ष्मीनारायण पयोधि की अब तक 20 काव्यकृतियों सहित 43 विविध पुस्तकें प्रकाशित हैं। इनकी कहानियों पर टेलीफिल्म और डाक्यूड्रामा भी बन चुकी हैं। जनजातीय संस्कृति के अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित श्री पयोधि के आलेखों पर निर्मित आदिवासी संस्कृति संबंधी डाक्यमेंट्री फ़िल्में दूरदर्शन, एपिक सहित विभिन्न राष्ट्रीय चैनल्स पर प्रसारित हो चुकी हैं। श्री पयोधि ने पहली बार किसी फिल्म के लिये निर्देशक की माँग पर यह गीत लिखा है और जिस प्रकार से टी-सीरीज़ के यूट्यूब चैनल पर संगीत प्रेमियों का रिस्पॉन्स इसे मिल रहा है, उससे यह उम्मीद भी जागी है कि उन्हें आगे भी और फिल्म के लिये गीत लिखने पड़ेंगे। यह सुखद संयोग है कि श्री पयोधि के पुत्र प्रतीक पयोधि बॉलीवुड में सक्रिय हैं और 'लंदन कॉन्फिडेंसियल',काठमांडू कनेक्शन, ग्रहण सहित कई चर्चित फिल्म और वेब सीरीज़ की स्क्रीनप्ले और डॉयलॉग्स लिख चुके हैं।

- भँवरलाल श्रीवास

काले आदमी चलोगे नहीं चाँद पर!

अफ्रीकी जनजातीय कविता

मूल-जावा एप्रण्टी (घाना) अनुवाद-रमेश दवे

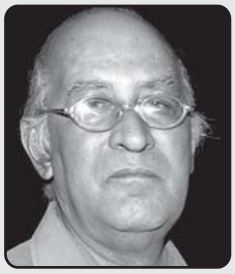

अनुवादक: रमेश दवे

अफ्रीकी कविता- जनजातीय चेतना की कविता है। पश्चिम अफ्रीकी देश घाना के कवि जावा एप्रेण्टी का जन्म 1940 में घाना के केटा नगर में हुआ था। घाना के विश्व विद्यालय में साहित्य और भाषा विज्ञान का शोध सहायक रहा है। वर्ष 1977 में नाइजीरिया के लागोस नगर में 'विश्व ब्लेक एंड अफ्रीकी फेस्टिवल ऑफ आर्ट एंड कल्चर में साहित्य विभाग का अध्यक्ष रहकर साहित्यिक पत्रिका 'ओकयीमा' का संपादन किया। अफ्रीकी साहित्य में विशेष प्रतिष्ठा यह उनकी अत्यंत लोकप्रिय कविता है।

काले आदमी -
चलोगे नहीं चाँद पर ?
क्या करूँगा चल कर
तुम ही ले जाओगे
जो यहाँ करवाते हो
वहाँ भी करवाओगे

इसलिए मुझे बताओ
क्या मेरे यू-यू गीत से
क्या मेरे आदिम संगीत से
ऊँचा है तुम्हारा चाँद ?
मेरा संगीत
जो बरसता बारिश की तरह
बातें करता पितरों से-
जीवितों की भाषा में !
मेरे गीतों की बारिश से
क्या ज्यादा मीठा है
तुम्हारा चाँद ?
अब क्यों करते सवाल
काले आदमी !
चलोगे नहीं चाँद पर ?

रेखांकन : मनोहर काजल

तुमने गहरी शांति के साथ
देखे वे जहाज़
जो बताये दूसरों ने
जो ले गए हमें
जंजीरों से जकड़े
लोगों की जमीन पर
तुमनें भौचक होकर देखा
छोटी-छोटी ताकतों ने
लौह-अश्वों का फुसला कर
बाँध लिया इस तरह
जैसे कोई नर्स
बच्चों को फुसला कर
जकड़ लेती बाँहों में
या
जाल में उलझ जाते
जैसे पक्षी चमकीले
तुम बैठे रहे वहाँ
जब कि थके हुए लोग चले गए
चमकीले आकाश ग्रहों में
और वे पूछ रहे तुम से
काले आदमी !
चलोंगे नहीं चाँद पर ?

यह साल चाँद का साल है
ठाकाली है अमरीकियों ने
जँजीर-गेंग-और
इस साल वे
चाँद पर ले जा रहें तुम्हें !

अपनी जड़ी-बूटियाँ तोड़ लो
अपनी प्रार्थनाएँ गालो
अपनी कौड़ियाँ खड़खड़ा लो
ढोल बजालों
अपनी तुरही फूँक लो
आगे बढ़ो

मै सोचता हूँ-
तुम जा सकते हो चाँद पर
जाने लायक भी हो
जवाब दो
पूछ रहे हैं वे
काले आदमी !
चलोगे नहीं चाँद पर ?

■

अफ्रीकी देश नाइजीरिया की जन-कविता

- मूलः गेब्रियल ओकार, अनुवाद-रमेश दवे

गोब्रियल ओकार नाइजीरिया के महत्वपूर्ण कवि रहे हैं। वे वर्ष 1989 में विश्व-कविता में भाग लेने भोपाल आए थे।, तब मैंने उनका साक्षात्कार लिया था जिसे 'अक्षरा' पत्रिका ने छापा था। उन्हें प्रतिष्ठित कॉमन-वेल्थ पोएट्री सम्मान मिला। वे 'नाइजीरियन टाइम्स' अखबार के संपादक रहें। द काल ऑफ द रिवर नत' पर उन्हें ब्रिटेन में पुरस्कृत किया गया। उनके अनेक संग्रह ब्रिटेन से प्रकाशित हुए। उनका नाम भी नोबेल सम्मान के लिए प्रस्तावित था मगर उसी वर्ष उनके ही समकालीन कवि वोले शोपिंका को नोबेल मिला। नाइजीरिया में अनेक महत्वपूर्ण कवि हुए है मगर ओकार उनमें सर्वाधिक लोकप्रिय रहें।

मेरे बेटे!

मेरे बेटे!
एक ज़माना था
बहुत पहले का जमाना
वे हँसा करते थे
दिल खोलकर
पूरे दिल से!

वे हँसा करते थे
चमकदार आँखों से
लेकिन, अब हँसते हैं
सिर्फ दाँत निपोर कर
सिर्फ दाँत के जरिये!
और
उनकी बर्फानी-सर्द
जमी-जमी आँखे
खोजती मुझे, टोहती मुझे
मेरी छाया के पीछे पड़कर!

सचमुच बेटे!
एक जमाना था,
बहुत पहले का जमाना
वे अभिवादन करते थे
हाथ मिलाकर
खुले दिल से, भरे दिल से!

वे गले मिलते थे
सच्चे दिल से, पूरे दिल से

लेकिन बेटे!
वह एक अतीत है अब
महत्र एक संस्मरण है
वे मिलाते है सीधा हाथ
बेमन से, महज एक
दस्तूर की खातिर
लेते हैं बाँये हाथ से तलाशी
मेरी खाली खाली
निहायत खाली जेबों की!

अपना ही घर समझिए'
फिर तशरीफ लाइए'
वे कहते बार-बार
मैं जब अपना ही घर समझकर
फिर जाता-
एक बार, दो बार
तीसरी बार नहीं आती
और पाता हूँ
अबकी बार दरवाजे बन्द!

इसलिए मेरे बेटे!
मैंने सीख ली हैं
कई बाते
बदलती पोषाक की तरह
सीखा है पहनना
तरह-तरह के चेहरे-
एक चेहरा, दफ्तरी-चेहरा
मोहल्लाई चेहरा
मेजबानी चेहरा
कॉकटेल-नुमाँ मिलावटी चेहरा
और, इन तमाम चेहरों पर
सीखा है, नफरती मुस्कान टाँगना
ठीक किसी टँगे हुए पोर्ट्रेट पर
चित्रित स्थाई मुस्कान की तरह!

मेरे बेटे!
सीख लिया है मैंने भी हँसना
दाँत निपोर कर,
यानी दाँतों के जरिए
हाथ मिलाकर अभिवादन करना
महज एक दस्तूर की खातिर
सीख किया है, गुडबाँय कहना
उस वक्त, तब मेरा मतलब
होता है- गुड-रिडन्स यानी
अच्छा पिण्ड छूटा!

मै कहता हूँ बिना खुश हुए-
'ग्लेड टु मीट यू' और कहता हूँ
आपसे बातें करके बड़ा मजा आया
जबकि वास्तव में
बहुत बोर हो चुका होता हूँ मै!

मेरे बेटे!
विश्वास करों, मेरे बेटे!
मै दरसल वहीं होना चाहता हूँ
जो हुआ करता था-
एक जमाना पहले-
जब ठीक तुम्हारी ही था।
मै ये सारी नकली बातें
असीखी कर देना चाहता हूँ
मैं बेकरार हूँ सीखने को
सही कैसें हँसा जाए
कब हँसा जाए?

मैने शीशे में
जब-जब भी झाँका है
मैने देखा मेरी हँसी-हँसी नही
खुला सर्प दंश लगी मुझे!
इसलिए तुम ही बताओं
मेरे बेटे!
मै हँसू कैसे उसी तरह
एक जमाना पहले
ठीक तुम्हारी ही तरह!

■

कविता

धर्मपाल महेंद्र जैन की कविताएँ

धर्मपाल महेंद्र जैन

धड़कनें

दिल प्रति मिनट बहत्तर बार धड़कता है
तुम्हारे लिए
मुझे यह पता ही नहीं था।
बहुत देर हो चुकी है अब कि
मैं दिल से कह दूँ
किसी और के लिए इतना
धड़कना ठीक नहीं
कभी तो अपने भी लिए
धड़क लो यार।

कल जब डॉक्टर एंजियोग्राफी कर रहे थे
मुझे शक था कहीं तो
धमनियों में रुकावट होगी
जो तुम्हें इधर-उधर
निर्बाध दौड़ने से रोकती होगी
और तुम अपनी झुंझलाहट
इसलिए मुझ पर लाद देती होगी
पर तुम्हारी आवाजाही रोकने वाला
ऐसा कुछ नहीं मिला वहाँ।

रेखांकन : मनोहर काजल

मुझे लगता था तुम
दबे पाँव आती हो जब भी
मेरे कान नहीं सुन पाते
तुम्हारे फुसफुसाते कदमों को
पर मैं गलत था,
तुम कभी तेज दौड़ती
आई थी हवा पर सवार
बस गई मेरे भीतर बिना बताए
कभी मुझे मालूम ही नहीं हुआ
कि तुम फिर गयी ही नहीं मुझसे बाहर।

मैं नब्ज़ टटोल धड़कने गिनता हूँ
कभी फुर्सत में
तुम्हें धड़कते हुए पाता हूँ
अब तुम यहाँ हो, मैं कहीं नहीं।

चलो न

तुम्हारे कदम कछार की नर्म रेत को
जब चूमते थे
छोड़ जाते थे पदचिन्ह
झील के किनारे तोड़ उफनती,
दौड़ती, सी लहरें
उनमें समाने की कोशिश करती थीं।

बीच के किनारे
कितनी मनोरम कहानियाँ तुमने
हवा से सुनी थी
यहाँ घरौंदे बनाते हुए
कुछ शब्द तुम्हारे होठों पर
आकर अटक गए थे

कुछ फुहारें बालों में उलझ गई थी
अनगिनत भावों ने तुम्हारी
देह को भिगो रखा था
हल्की सी धूप फिर से वहाँ
बिछा दी है सूरज ने
चलो न
झील की बलखाती लहरों में
चमक लौट रही है।

22 फैरल एवेन्यू, टोरंटो, कनाडा

■

कविता

सुबोध चतुर्वेदी की कविताएँ

श्रीमती सुबोध चतुर्वेदी

बंद दरवाजे

बेशक बंद कर लो सभी दरवाजे
बस एक खिड़की खुली छोड़ देना
जिससे मैं निहार सकूं
आसमान में उड़ी हुई चिड़ियाँ
मेरे शिथिल हो चुके पैरों में
कुछ तो होगी हरकत।

बेशक बंद कर लो सभी दरवाजे
एक खिड़की खुली छोड़ देना
जिसमें से झांक कर, मैं देख सकूं
आसमान में उग आये चाँद, सितारे
कम से कम मेरे अँधेरे जीवन में
कुछ तो हो जायेगा उजियारा।

बेशक बंद कर लो सभी दरवाजे
एक खिड़की खुली छोड़ देना
चारों पहर निहार सकूं, नीला आसमान
झांक सकूं बादलों के पार की दुनिया में
बादलों का एक ही कतरा, काफी है
हौसलों के लिए।

रेखांकन : मनोहर काजल

बेशक बन्द कर लो सभी दरवाजे
बस एक खिड़की खुली छोड़ देना
जिससे झांक कर देख सकूं लहराते हुए पत्ते
उनसे आने वाली बयार ही काफी है
मुझमें उल्लास भरने के लिए।

बेशक बन्द कर लो सभी दरवाजे
बस एक खिड़की खुली छोड़ देना
जिससे मैं देख सकूं
किसी खम्बे में फंसी पतंग
उसका फड़फड़ा कर
छूट जाने का प्रयास ही काफी है
मुझमें सोया हुआ आत्म विश्वास
जगाने के लिए।

बिरजू महाराज

बिरजू महाराज धन्य हो
कहां से पाई है इतनी ऊर्जा
बिजली की गति से चक्कर खाते
तुम्हारे पांव उम्र के इस मोड़ पर भी
कभी थकते नहीं कभी रुकते नहीं
वाद्य यंत्रों के सम पर
तुम्हारे घुंघरू की झंकार
जब गूंजती है चारों ओर
दर्शकों को करती है सम्मोहित

संपूर्ण मंच पर चक्कर लगाती
तुम्हारी निर्मल काया
किसी और ही लोक में ले जाती है
धन्य हो बिरजू महाराज
तुम धन्य हो, धन्य हो।

पुल

पिता और बच्चों के बीच
माँ हमेशा बन जाती है पुल
कभी एक को संभालती
कभी दूसरे को समझाती
अक्सर हो जाती हैं हताश

दोनों ही छोर तने रहते हैं
अपनी अपनी जगह पर
बीच के बिंदु पर खड़ी हुई माँ
जोड़ने की करती है कोशिश
मिटा देना चाहती है, पीढ़ी की दूरियाँ

इस प्रयास में जब वह हो जाती है विफल
सबसे ज्यादा टूटती है मां
दोनों ओर के झेलती है वार
मजबूती से थामे खड़ी रहती है डोर
फिर भी कभी आस नहीं छोड़ती है माँ।

■

आलेख

आदिवासी जन समुदायों की ललित कलापूर्ण लोक संस्कृति

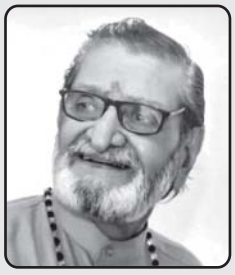

डॉ. पूरन सहगल

आदिवासी जन समुदाय मूलत: प्रकृति जीवी समुदाय है। वृक्ष उनके जीवन आधार हैं। वनों में उनके प्राण बसते हैं। वन पशुओं से उनका अपनापन सदा बना रहता है। वस्तुत: उन्होंने वन वृक्षों से झूम-झूम का नृत्यमय होने की प्रेरणा ली। मयूरों से नृत्य प्रशिक्षण लिया। कपोत-कपाती से परस्पर प्रेमालाप सीखा। बादलों से ढोल-मांदल और अन्य घन वाद्यों को गतिमान करने का गुणधर्म प्राप्त किया। वर्षा की बूंदों का एक पत्ती से दूसरी पत्ती पर गिराकर एक अद्भुत ताल लय की सृजना से ताली बजाकर नृत्यमय होने की प्रेरणा प्राप्त की। कुल मिलाकर वन जीवन और वन समूचे आदिवासी जन समुदायों के प्रेरक, रक्षक, पालक और आश्रयदाता होते हुए इनकी पहचान हैं। वन हैं तो आदिवासी समुदायों का अस्तित्व है।

आदिवासी समुदाय अवतारवाद पर विश्वास नहीं करता। जितने भी आदिवासी अंचल हैं सबके अपने-अपने कुलदेवता, पितृ, पितृाणियाँ होती हैं। गाँव फालियों के अलावा वंश-गौत्र के अपने-अपने लोक आराध्य देवी देवता एवं पूर्वजबावजी, सतियाँ स्थापित होती हैं। सबके स्थानीय नाम होते हैं। प्रत्येक गोत्र का एक गोत्र वृक्ष होता है। उस वृक्ष की पूजा एवं रक्षा करने का दायित्व प्रत्येक गोत्र वंशज करता है। इस प्रकार वन वृक्षों के रक्षण का यह अद्भुत और अनोखा आयोजन है। महुआ वृक्ष तो आदिवासी जन समुदायों का सर्वप्रिय वृक्ष है। वह उन्हें आनंद भी देता है और भरण-पोषण भी। उसकी मदिरा पीकर वे झूम उठते हैं तथा उसके फलों से कई व्यंजन बना कर उदर पोषण भी करते हैं। उसके पक्के डोड़नों को बेचकर अर्थाजन भी करते हैं। गीताचार, नृत्य और संगीत की त्रयी तो आदिवासी समुदायों की उत्सवीय लोक परंपरा एवं लोक संस्कृति की ''जीव जड़ी'' है। दिनभर के श्रम को शिथिल करने में गीत और नृत्य इनके प्राण तत्व हैं। इन समुदायों की अनूठी व मन-मोहक चित्रावण कला तो अद्भुत लोक लुभावन होती है।

आदिवासी जनजीवन प्रकृति से प्रेरित एवं वन प्रेरित जैसा संघर्षमय जीवन है। जहाँ पर्वत होता है वहाँ नदी भी तो होती है। वह नदी ही वस्तुत: उस पर्वत की द्रवित वेदना है। वही सलिला अपनी तटीय क्षेत्र को सिंचित करती हुई सदा प्रवाहमान बनी रहती है। वह नदी अपना मार्ग और मंजिल स्वयं निर्धारित करती है। आदिम संस्कृति भी उस सलिला की भाँति प्रवाहित हो रही है। उसमें संघर्ष है तो प्रवाह भी है। उसमें शीतलता है तो संधर्ष भी है। उसमें वेदना है तो आनंद भी है। वह कल-कल प्रवाहित होती है कभी दहाड़ती हुई विकराल रूप ले लेती है।

आदिम जातियों की भाषा, संस्कृति, कला, साहित्य, मिथक, वास्तु, विज्ञान, जल विज्ञान, नृत्य, गान, संगीत सब अद्भुत-अनुपम एवं अनूठा होता है। उसकी लय, लोच-लालित्य एवं कला का सामजस्य जब एकमेव हो उठता है तब ऐसा लगता है मानो एक साथ कई मयूर अपने बहुरंगों के पंख फैलाकर नृत्यमय हो उठे हों। आदिम समुदायों की गीत-नृत्य संगीत की त्रयी में अद्भुत रूप से समानता पाई जाती है। ऐसा लगता है मानो सबने एक ही पाठशाला में पढ़ाई की है। जीवन के संघर्षों में भी आदिवासी समुदाय कुछ क्षण आनंद के बचाकर रखता है सूरज की तपन में वह दिनभर श्रमरत रहता है और चन्द्रमा की शीतलता में गीत-संगीत और नृत्यमय होकर दिन भर की श्रम थकान और अवसादमय बनाने के बजाय आनंदमय बना लेता है।

आदिवासियों का लोक जीवन, नृत्य-गीत और संगीत से परिपूर्ण है। वही इन लोगों को जीवन-मंत्र और जीवन यात्रा का बहुमूल्य संबल है। यही तो वह जादू है जिसके बल पर ये लोग जीवन की क्रूर विभिषिकाओं को भी छूमंतर करते आए हैं। यदि इसे इन लोगों से अलग कर दिया जाए तो इनका जीवन निष्प्राण हो जाएगा। इन लोगों की स्थिति 'जल बिनु मीन' जैसी हो जाएगी। इन लोगों का कोई त्योहार, नृत्य-गीत संगीत से शून्य नहीं है। भीलों के रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, होली और संज्ञा के अतिरिक्त आँवली, ग्यारस, हाथीमना, घण्णा तथा गरासियों के आखातीज, गणगौर, सियावा, धुलेंडी आदि जातीय अनुष्ठान हैं।

इन अवसरों पर तो इनके नृत्य-गीत संगीत का माहौल रहता ही है, पर यदि रात सुहानी और युवक-युवतियों का जी चाहता हो तो रात के प्रथम पहर से लेकर उनके पिछले पहर तक इसके नृत्य-गीत संगीत के अखाड़े गुलजार रहा करते हैं। भीलों के अखाड़े तो लगभग प्रतिदिन ही जमा करते हैं। नृत्य गीत के साथ पुरुषों द्वारा बजाए जाने वाले ढोल, मांदल, चांप, ढोलक, बांसुरी तथा स्त्रियों द्वारा बजाई जाने वाली झांझ इन लोगों के जातीय वाद्य हैं। गाय आदि ढांढाढोर चराते हुए अपने काम से क्षण भर विश्राम करते हुए भी ये अपनी-अपनी ताल में कोई न कोई गीत-स्वर छेड़ते रहते हैं। जंगलों में पत्ते तोड़ती हुई, मेला-ठेला जाती हुई या किसी के यहाँ मजदूरी करती हुई भी आदिवासी युवतियाँ जब-तब अपनी मधुर स्वर लहरियाँ बिखेरा करती हैं। गीत इन आदिवासियों के लिए मात्र मनोरंजन के साधन और मनोभावों के प्रकाशन के माध्यम नहीं, श्रांति परिहरण के हेतु भी हैं।

आदिवासी लोकगीत भिन्न-भिन्न रागों के होते हैं। गरासियों के लीलामोरिया, ढोला, बेवाई, मोदल, वाजे, हल्दी मूंगी, भीलों की दुखिया राजा, मोरिया, खेतला, भरतार नी आरती तथा काल-बेलियों के रामुड़ी, मनवेर, पिंगल गढे आदि मुख्य लोकगीत हैं। एक प्रकार के गीत और हैं जिन्हें 'जंगल गीत' कहते हैं। उनमें यौन सत्ताओं और उत्तेजक काम-भावनाओं का वैविध्य मिलता है। ऐसे गीतों का प्रचलन कालबेलियों व कंजरों में बहुतायत से हैं। फलत: ऐसे गीत घर-गाँवों के बाहर जंगलों में, शयन स्थलों पर, पुरुषों द्वारा साग पत्ते तोड़ते समय एवं धुलेंडी के दिन स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं।

काम और प्रेम सम्बंधी आदिवासी गीत और भी हैं परंतु वे प्रतीक, रूपक, बिम्ब या संकेत की शैली में हैं। उनमें जंगल के गीतों की तरह नग्नता नहीं है। घर गाँव के अखाड़ों में भी ऐसे गीत निर्बाध रूप से अपना सौंदर्य बिखेरा करते हैं। जीवन में घटित होने वाले दुख-सुख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग, आशा-निराशा, घात-प्रतिघात, हास्य-विनोद आदि के आकर्षक शब्द चित्र इन लोक गीतों के आईने में साफ-साफप्रतिबिम्बत हैं। अनुभूतियों की सफल अभिव्यंजना, सरल प्रकृति लोक संस्कृति जनजीवन हृदयों के सहज उदगार इन लोकगीतों में सहज उद्‌भाषित है। जीवन की सामान्य घटना भी यहाँ के आदिवासियों के कंठों से गीत बनकर निसृत होती है तब यह बात प्रमाणित हुए बिना नहीं रहती है कि अकेला रोना ही नहीं, अपितु गाना भी मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है। यों ये गीत परंपरागत रूप से ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी आदिवासियों के कंठों में बिराजते आए हैं, परंतु नए-नए गीतों के अंकुर भी इनके अधरों पर जाने-अनजाने फूटते ही रहते हैं, जो जीवन की विषमताओं में भी इन लोगों की जिविविषा को उद्‌घाटित करते हैं।

मालवा हो या राजस्थान पहाड़ी, वनांचल अथवा रेगिस्तान। कला पक्ष और भाव पक्ष दोनों ही दृष्टियों से यहाँ के आदिवासी लोकगीतों की अपनी विशेषताएँ हैं। इनकी भावभूमि विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है। यौवन और प्रेम, सौंदर्य और माधुर्य, स्वागत और बिदाई, संयोग और वियोग, अभाव और जीवन संघर्ष, नैतिक और सामाजिक आदर्श, ऐतिहासिक और पौराणिक आख्यान चराचर जगत की विराट सम्पदा से ये लोकगीत अलंकृत है। प्रकृति की समान्य से सामान्य वस्तु या घटना के सूक्ष्म निरीक्षण और मानव प्रकृति पर उसकी प्रतिक्रिया हृदयग्राही शब्द-चित्र तो इस आदिवासी लोकगीतों में मिलते ही हैं, आलम्बन और उद्दीपन के रूप में भी प्रकृति की झलकें मिलती हैं। विवाह पूर्व के प्रेम प्रसंग, मिलन की उत्कंठा, प्रेमी की प्रवंचना, प्रेमिका की परवशता, बिछुड़न की वेदना, जीवन संगी की कामना, बेटी की बिदाई के क्षण, वैवाहिक जीवन की प्रतिबद्धता, दाम्पत्य के आमोद-प्रमोद, ससुराल के दुख-द्वंद्व, अभाव की व्यथा, आर्थिक विपन्नता की व्यथा कथा, वन पर्वतीय जीवन यात्रा, परंपरागत आदर्शों का समादर, स्वर्णिम अतीत की स्मृतियाँ, जीवन दर्शन की झलकियाँ रिश्तों में हास्य विनोद के प्रहसन आदि इन गीतों के मुख्य विषय हैं।

यौवन की देहली पर पांव रखने के पूर्व किशोरावस्था का आदिवासी मन नाचते थिरकने लगता है। एक भीली गीत में कहा गया है-

आवो आवो रे सोरियाँ, घूमसी रे लोल।
काका बाबा नी सोरियाँ, घूमसी रे लोल।
आंखयों नी काजलस रली-रली जाय।
कापड़ी ना फूंदा, नमी नमी जाय।
रिसाई ना जाजो रे सोरयाँ , घूमसी रे लोल।
दारू लावो रे सोरियाँ , पी घूमसी रे लोल।।
आवो आवो रे सोरियाँ, घूमसी रे लोल।

एक युवा भील स्त्री काका बाबा की लड़कियों को बुलाकर नाचने के लिए कहती है- आओ-आओ छोकरियों खूब नाचें। इस तरह उन्मुक्त होकर नाचें कि आंखों का काजल बह-बह निकल जाए और चोली का फूंदा झूक-झूक नीचे गिरता जाए। हे लडकियों तुम गुस्से होकर चली मत जाना। शराब लाओ और फिर हम खूब नाचें कूदें। विवाह संस्कार के गीतों में अधिकांश आदिवासी स्त्रियाँ अपनी व्यथा कहती हैं। कन्या पक्ष के लोग तो विवाह होते ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं परंतु उस नववधु के दिल पर क्या गजरती है यह सब इस आदिवासी लोकगीत में बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है।

मचिइहं बैठी कौसिल्य पूछड़ बात रे।
जवनि बनिज सासू गए तोर पुतवा तवने के बाद बताव रे।
हाथ हू बउहरि तेलवा, फुलेलवा, अऊर गंगा जल नीर रे
पूछत-पूछत जायेक बहुहरि जहाँ बसै तोर कन्त रे

काम और प्रेम के उपभोग क मर्यादित स्वच्छंदता के परिपेक्ष में जीवन संगी की कामना के स्वर भी इन आदिवासी लोकगीतों में विद्यमान हैं। एक गरासिया लोकगीत में कहा गया है-

देख-देखकर मेरा मन लगेगा
क्या करके रोकू कहाँ जाते हों
कन्या कुंवरी रह जाएगी ढोला कहाँ जाते हो ?
विवाह की बड़ी इच्छा है ढोला कहाँ जाते हो ?

क्षुधा-पिपासा आदिवासी जीवन की सहचरी रही है। स्वाभाविक है कि पेट की ज्वाला की अनुभूति भीली लोक को भी हो-

पड़ती सानो सपना रे, दुखिया राजा।
नगरा खूटा सारौ रे, दुखिया राजा।
नदियाँ टूटा नीरा रे, दुखिया राजा।
खांणा टूटा नीरे रे, दुखिया राजा।
लखमी मखे लागी रे, दुखिया राजा।
धान खूटा कोठारा रे, दुखिया राजा।
खाई वे खूटी मकी रे, दुखिया राजा।
दनिया डगवा लागी रे, दुखिया राजा।

हे राजा! छप्पन के साल घोर अकाल पड़ा है जिससे सारा नगर उजड़ गया है। नदी का पानी सूख गया है। महूड़ा का खाना भी खत्म हो गया है। मवेशी भी मरने लगे हैं। कोठरा का अनाज भी खुट गया है। मक्का भी खाते-खाते खत्म हो चुका है और धनी लोग भी डगमगाने लग रहे हैं।

युवक और युवती दोनों शादी के बाद एक-दूसरे से दूर होना नहीं चाहते। साथ-साथ रहना, साथ-साथ मेले, बाजार एवं मजदूरी पर जाना पसंद करते हैं। प्रस्तुत गीत में यह बताया गया है कि नव-वधू अपने नौजवान पति को कमाने के लिए घर से दूर जाने की तैयारी करने पर उसे किस प्रकार रोकने का प्रयत्न करती है।

जोई न जोई मार मन रीझे परणा।
हाथों वारों हाथ पान मेली जान परणा।
कौनों वारो कौन फूल मेली जान परणा।
बालों वारू कोक्यू मेली जान परणा।
हातों वाली घेटियार मेली जान परणा।
केरो वारो कंदरो मेली जान परणा।
पेंगो वाली मोजरी मेली जान परणा।

देख-देखकर मेरा मन लगता रहेगा। हाथों में पहनने का हथपान छोड़कर जाओ। कानों के कर्णफूल छोड़कर जाओ। बाल बनाने का कंघा छोड़कर जाओ। हाथ की घड़ी को छोड़कर जाओ। कमर पर करधनी छोड़कर जाओ। इन्हें देखकर मेरा मन लगता रहेगा।

चोरी करने का अपराध में अपराधी को शारीरिक यातना, आर्थिक दंड या जाति से अलग होने की सजा दी जाती है। इस बात को लक्ष्य करते हुए गमेती आदिवासियों का गीत देखिए-

किण गोमे आई रे चेकर पेरियु।
धोबजो वेली धोमजो चेकर पेरियु।
मांडवा वारा मारगे चेकर पेरियु।
पेटलो बोलवो चेकर पेरियु।
पोलिस धोमा रे चेकर पेरियु।
कोई चेकर है लाभारी चेकर पेरियु।
मेरचों चोरी कीनो चेकर पेरियु।
मेरचों नी एक बोरी चेकर पेरियु।

कौन से गांव में चक्कर पड़ गया ? दौड़ो भाइयों दौड़ो। चक्कर पड़ गया। माण्डवा गांव के रास्ते में चक्कर पड़ गया। पुलिस भाग-दौड़ कर रही है। चक्कर पड़ गया मिरची चुराई गई है। उसका चक्कर है। मिरची की केवल एक बोरी चुराई गई है उसका चक्कर है। इतना बड़ा चक्कर है।

घर में वधु आने पर देवी-देवता की पूजा कर आशीर्वाद दिया जाता है। कुछ समय बाद जब वधु का भाई उसे लेने आते हैं तो भाव-विभोर होकर वह अपने भाई की तारीफ करती है। देखिए सहरिया आदिवासियों का लोकगीत- भैया तुम सौ कोस की एक सौ की समझ कर आए हो। यह जानकर कि मैं ससुराल में हूँ मेरा भाई सात समुद्र पार करके वहाँ आया है।

वीरेणा सौ कोसे न कोस करन।
आयेसे विरणा-आहिणा
वीरेणा सात समंदर पार करन
आयेसे वीरणा आहिया।

शहरी युवा की अपेक्षा आदिवासी युवक अधिक भावुक होता है। प्रणय निवेदन के लिए भी उसे अधिक अवसर मिलते हैं। विवाह के शुभावसर पर तो रात भर नाच गाना चलता है तब प्रणयी युवक-युवतियों को प्रणय व्यापार का अच्छा अवसर मिलता है। वर पक्ष के युवक कन्या पक्ष की युवतियों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। नारी सौंदर्य के प्रति आदिवासी युवक के आकर्षण की इस गीत में कितनी कोमल अभिव्यक्ति मिलती है-

बारे तेरी घणियों ने तेले बले

बेवाणी ने मीहड़े दीवा बले
बारे तेरी घाणियों ने तेले बले

तेरी बारह घानियों का तेल जल रहा है, प्रेमिका समधिन का चेहरा एक दीप सदृश है जो ऐसे चमकता है जैसे- बारह घानियों का तेल एक साथ जले। अन्ततः इन आदिवासियों के जीवन दर्शन की एक झांकी भी देखें-

सिरियू लई ने कामठी लई बायड़ा मां अमु फरिये रे
मनखाँ मारी डगरा, मारी, बागड़ मां अमु राजा सिये रे
सीर करी लोकों लुटी ने, दाणा पेस्या लावहूं रे
गडरा ने बोकड़ा मारी ने, तीनु माह खाहु रे
महुड़ा गाली हरो पीने, कीरी आरी करी नाचहुं रे
मन मा भावे तेम फरी एली, खाई पी मजा करिये रे।

भील अपने आपको कहता है कि, मैं तीर और कमान लेकर बागड़ प्रदेश में फिरुँ और मनुष्य और जानवरों को मारकर वहाँ का राजा बन जाऊँ। नाज और पैसे लाऊँ और मवेशियों को मारकर तीनों महीनों तक खाऊँ। महुआ की भट्टी निकालकर किलकारी करने नाचूं। मन में आवे वहाँ फिरुँ और खा-पीकर मौज करुँ।

आदिवासी गीत किसी भी अंचल के क्यों न हों उनमें अद्‌भुत रूप से समानता पाई जाती है। इसका कारण है उनका समान रूप से संघर्षमय जीवन एवं जीवन के प्रति समान आस्था।

आदिम मनुष्य भले ही वह मालवा का हो अथवा मेवाड़-मारवाड़ का, डूंगरपुर का हो या बांसवाड़ा का वह ईडर का हो अथवा झाबुआ, बस्तर अथवा गोंडाना का, निमाड़ का हो अथवा गुजरात का। सबका जीवन संघर्ष समान होता है। जीवन के प्रति आस्था समान होती है। पारिवारिक संबंधों की सोच समझ समान होती है इसी कारण उनके रीति-रिवाज और परंपराओं में भी समानता स्वाभाविक रूप से होती है। उनकी रहनी, कहनी, विचरनी समान होती है इसलिए उनके गीत-संगीत, नृत्य भी भाव शैली एवं कहन में भी स्वाभाविक समानता पाई जाती है।

प्रकृति जीवी आदिवासी समुदायों के लोक जन के जीवन में नैसर्गिक जीवन में प्रकृति का हस्तक्षेप सर्वाधिक रहा है। प्रतिदिन उगते सूर्य और अस्त होते सूर्य, पृथ्वी में पड़े बीज के अंकुरित होने से लगातार पेड़ बनने, बादलों से पानी बरसने, हवा के चलने आदि प्राकृतिक गतिविधियाँ मनुष्य के मस्तिष्क में कल्पना को चकित किया। लगभग यह स्थिति सभी आदिवासी अंचलों और समुदायों में भी तो होती है। एक जैसी जीवन शैली और एक जैसी परंपराएँ। यही कारण है कि, उनके गीतों की भावाभिव्यक्ति लोच-लय और लालित्य भी एक समान होती है। इन्हीं गीतों में उस समुदायों की संस्कृति के बीज निहित होते हैं। उनकी सोच समझ भी एक समान होती है। भले ही भाषा में भिन्नता हो भावों में तो अभिन्ता स्वाभाविक रूप से देखी जा सकती है।

भारत के सभी आदिवासी क्षेत्र घने जंगलों, पर्वत, श्रृंखलाओं और घाटियों के बीच रहते हैं। ऐसा माना जाता है कि आर्य व अन्य संस्कृतियों के हमलों में इन्होंने अपनी संस्कृति को बचाकर ये आदिवासी उसे सुरक्षित रखने हेतु घने जंगलों, पर्वतों व घाटियों में सिमट गए हों। मालवा के आदिवासी भी अरावली की पर्वत श्रृंखला व सघन वनों के बीच बसे हुए हैं। मालवा के सिरोही आबू क्षेत्र में गरासिया, मेवाड़ मारवाड़ सीमा पर राजस्थान में कामरिया, भील, डूंगरपुर, बांसवाड़ा क्षेत्र में सहारिया आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। इसके अलावा कुछ भील मीणा अजमेर तथा बूंदी में भी बसे हैं।

भारत के किसी भी क्षेत्र की कोई भी आदिवासी जाति हो, इनके जीवन में रहन-सहन, गीत व नृत्यों में कई प्रकार से समानता पाई जाती है। मनुष्य को जीवन में एक बहुत बड़ा गुण व साधन मिला उसे वह भुला नहीं सकता। जहाँ एक ओर उसे दुख-सुख को समझने व विचारने हेतु ज्ञान मिला उसी के साथ उसे भुला देने हेतु गान मिला। जहाँ दुखों की पराकाष्ठा आ जाती है और अपनी सीमाओं को लाँघने लगती है, मनुष्य विवश हो अपने को खोया सा देखकर जीवन के हर क्षण को कोसने लगता है। तब उसे आशा के दीप के समान सहारा मितला है, वह अपने भावों को साधारण स्वरों में गुनगुनाता है और दूसरी ओर बह जाता है, जैसे उसके सर का बोझा स्वरों द्वारा उठा लिया गया हो। झरनों के कलकल स्वर व हवा के झोंको के साथ उसके स्वर मिल जाते हैं।

कभी अधिक परिश्रम पर जब मनुष्य थक जाता है और विश्राम भी नसीब नहीं होता, तब भी वह गुनगुनाकर गीत गाते हुए वापस अपने परिश्रम में उसी प्रकार जुट जाता है, मानो पसीने की बूंद स्वरों के झोंको में सूख गई हों। मनुष्य की गति गुनगुनाहट आरम्भ होते ही बदल जाती है, मानो उसमें नया प्राण फूँक दिया गया हो। इसी से हम विचार कर सकते हैं कि गायन मनुष्य को कैसी धराहर के रूप में मिला है।

आदिवासी क्षेत्र में जहाँ सघन जंगलों नदी-नालों और घाटियों के बीच मनुष्य का जीवन व्यतीत हो रहा है, जिसे भरपेट भोजन और तन ढकने को पूरे वस्त्र भी न मिलते हों, ऋतुओं के कठोर झोंको को रोकने की शक्ति जिसकी कुटिया की पतली लकड़ी की सीकों में न हो, उस जीवन में क्या शेष रह जाता है, जिससे वह आनंद का अनुभव कर सके। किन्तु गीत सहगान और नृत्यों के साथ

वह झूमने लगता है न केवल आनंद का ही अनुभव करता है किन्तु साथ ही वह सभी कमियों को भूल जाता है। जो कुछ भी उसको जीवन में प्राप्त है उससे वह अपने आपको पूर्ण तथा संतुष्ट मान लेता है। उस मस्ती के स्वरों में कंठों से निकले गीतों के साथ पैर ठुमकने लगते हैं, वे ही नहीं, प्रकृति भी उनके साथ नृत्य करती प्रतीत होने लगती है, सारा वातावरण गूंज उठता है। आदिवासियों के जीवन में सबसे महत्व का स्थान उसके गीतों को मिलता है। गीत हीन जीवन उनके हेतु पूर्णतया शून्य है। कहावत भी है, 'मरयो भील मांदल नाचे' अर्थात मरे हुए भील के भी मांदल की आवाज पर पैर ठुमकने लगते हैं।

आदिवासी क्षेत्रों के गीतों में तथा लोकगीतों में काफी अन्तर रहता है। हम भारत के किसी भी प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों का अध्ययन करें तो हमें सबमें एक प्रकार की समानता प्रतीत होती है। मालवा-मेवाड़ का आदवासी क्षेत्र तो सीमित सा है केवल (गंमतीव कामरिया) भील मीणा, गरासिया और सहरिया जातियाँ ही सीमित सी है। वह सारा क्षेत्र पहाड़ी व सघन जंगलों के बीच का क्षेत्र है। चाहे ये आदिम जातियाँ एक दूसरे से काफी दूर-दूर बसी हुई हैं, परंतु इनके गीतों में समानता है। जहाँ तक उसके ध्वनि पक्ष का प्रश्न है इनमें बहुत ही समानता है। अधिक से अधिक चार स्वर में बंधे होते हैं। गीत में लंबी ध्वनि गुजरित होती है। चाहे गीत आरंभ में या अंत में हो। गीत में रे...ए....या हे.... को लम्बा बोलकर पंक्ति आरंभ करेंगे और अंत में ओ...है...आ... या ए...की गूंजती हुई लंबी ध्वनि के साथ उसे समाप्त करेंगे। उदाहरणार्थ सहरिया जात का गीत प्रस्तुत है-

हे देवी तेरे सेवगने दीवा घालो बीजना.....
हेरे.....काहै केरे तेरे बीजना,
हेरे.....काहे को चारो फुंदना.....
ऐ देवी तेरे सेवेगने दीवा घालो बीजना.....

इसी प्रकार इनके रसिया, कन्हैया आदि की गायकी में भी सभी गीतों के आरंभ और अंत में यही प्रथा प्रचलित है। उदाहरण के रूप में गरासियों के भी ऐसे कई गीत लिए जा सकते हैं वर को सजाते समय के गीत की पंक्तियाँ हैं-

ए बोर कुंडोजी हेठो मारियो
बोर-हेठा गासरो हेणा गारिओ.....

इसी प्रकार विवाह का गीत है-

ए-रेन मांय डेरा दीदा रे.....
होराणों रेन मांडरी डेरा देवरिया.....

भीलों के गीतों में भी समानता के उदाहरण मिलते हैं-

1. ए-काल बोरिया टूटो रे कान पियर जावा दे....
2. ए-मंगरांरो माली रे जनावर बोल्यो रे....
3. ए-कठे थारो रेवेरे काली अंगल वारो रे.....

ए- जैपुर मारो रेवो रे चीरमा चुरला वाली रे.....

आदिवासी समुदायों के अधिकांश गीत सामुहिक गान हैं जो स्त्री पुरुष समूह में एकत्रित होकर गाते हैं।

इसी प्रकार आदिवासियों के गीतों की अपनी एक निराली ही शैली है, अलग ही परंपरा है तथा सबसे भिन्न उसका एक स्वरूप है जिसे अपनी संस्कृति के सामने आज तक उन्होंने सुरक्षित रखा है और बदलते समय के झंझावतों का प्रभाव उन पर नहीं पड़ने दिया। यह विषय आज भी आदिवासी जीवन पर कार्य कर रहे विद्वानों को आकर्षित करता है कि इस पर और अध्ययन किया जाय वर्ना आज के बदलते परिवेश में वह समानताएँ और ये मस्ती के गीत कब तक टिक पाएँगे।

गीत अन्तर्मन की कोमलता, कमनीयता एवं कसमसाहट का प्रकटीकरण है। संगीत इन्हीं गीतों के साथ संगत कर उन्हें रसीला बनाता है और गीत, संगीत को धन्यता प्रदान करता है।

आदिवासी समुदयों के गीतों में शब्दों का महत्व कम और स्वरों का महत्व अधिक होता है। इसी कारण इनमें समानता का भाव हम देखते हैं। इन गीतों को संगीत ही लोच और लालित्य से संवारता, सजाता और मनोरम बना देता है। जिस प्रकार चिड़ियों की भाषा नहीं होती उनका मधुर कलरव ही उनकी भाषा है। स्वर है। लय और लोच है। इसी कारण चिड़िया कहीं की भी हो उनके प्रभाती गान एक जैसे लगते हैं उसी प्रकार स्वर प्रधान होने के कारण आदिवासी गीतों में भी समानता स्वाभाविक है।

इन प्रकृति जीवी जनजातीय समाजों को न तो द्वैत से सरोकार है और न अद्वैत से अथवा द्वैताद्वैत से। इन्हें तो अपने वनों से रिश्ता-नाता स्वीकार है। प्रकृति ही उनकी माँ है। वन और वन वृक्ष ही इनके सखा-संगाती हैं। वनों में रहते हुए ही इन्हें आनंदानुभूति का आभास होता है।

जनजातीय संस्कृति, इनके पर्व-त्योहार इनकी चित्रावण भारतीय समूचे लोक जीवन को प्रभावित करती चली आ रही है। वस्तुत: यही संस्कृति हमारे लोक जीवन की मूलाधार भी है।

आदिवासी जन जातियों की गीताचार उनकी लोक संस्कृति उन्नायक एवं गायक है। उनकी कलाएँ उनकी संस्कृति का अद्‌भुत, अनुपम एवं भावपूर्ण प्रदर्शन करती कभी भी थकता नहीं हैं। प्रकृति माता के ये आदिवासी जन हमारी समूची संस्कृति के मूलाधार हैं।

-लेखक मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान के निदेशक है।
मनासा जि. नीमच (म.प्र.)
मो. 9424041310

■

आलेख

आदिवासी सृष्टि, संस्कृति और जीवन-दर्शन

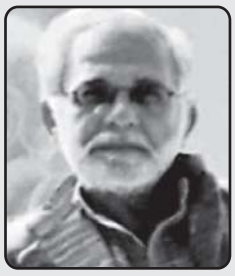

मनोहर काजल

इस सृष्टि पर सभी मानव जातियों के जन्म की अपनी अपनी मिथक और प्रतीक कथायें हैं वैसी ही इन आदिवासी जन जातियों के पुरखों की इस पृथ्वी पर जन्म और उनकी सृष्टि की अनेक मिथक कथायें हैं। पर हाँ इन मिथक कथाओं में प्रलय और जल से जीवन उत्पन्न होने की कथा का मिथक सब में विद्यमान हैं। हिन्दुओं के सनातन धर्म में भी प्रलय के साथ मनुष्य जाति के प्रथम पुरूष मनु के अवतरण की कथा आती हैं।

ऐसी ही सृष्टि तथा आदिवासियों के जनजीवन से जुड़ी हैं जिसमें पृथ्वी का जन्म बस्तर के यालनार गाँव में हुआ था। चारों तरफ जल ही जल था। एक तुम्बा तैर रहा था। जिसमें डडइे बुरका अपनी पत्नी के साथ बैठा था। और मीमुल देव (गोण्ड जाति के कृषि देवता) पानी में नागर (हल) चला रहें थें हल तुम्बें से टकरा गया। और बुरका कावासी और बारालो (पत्नी) पृथ्वी पर उतर पडें। और पृथ्वी पर जीवन की शुरूआत हुई।

ऐसी ही सृष्टि कथा बैगा जनजाति की हैं। बूढ़ा देव का जल से केकड़ा उत्पन्न करना और केचुँए के पैर से मिट्टी निकालकर जिससे पेड, पौधे और यह सब सृष्टि की शुरूआत नागा बैगा और नागी बैगिन की पुतलियों से हुई।

इस तरह आदिम जनजाति समाज में समस्त चराचर सृष्टि और प्रकृति कि सत्ता को ही सर्वशक्तिमान की सत्ता के रूप में मानते हैं। शायद इसीलिए इस सृष्टि के जड़ जीवन में जो भी विद्यमान सजीव और निर्जीव तत्व हैं वे उसी में उस अदृश्य सत्ता को स्वीकारते है और इसकी व्यवस्था को सत्य रूप से मानते हैं। इसी कारण उनके मन में जितनी आस्था श्रद्धा प्रकृति के लिये हैं। उतना ही उनके मन में उसके प्रति मय और सम्मान का भाव हैं।

उनका संम्पूर्ण जीवन ही प्रकृति से जुड़ा हुआ हैं। इससे अलग अस्तित्व की वे कल्पना भी नहीं कर पाते शायद इसलिए उनके सभी देवी-देवताओं की कल्पना भी पूर्ण रूप से प्रकृति से ही जुड़ी हुई हैं। उनके जीवन, गोत्र, देवता, पेड-पौधे, पशु-पक्षी या अन्य कोई भी जीव-जन्तु हो सकते हैं। जिस जनजाति का जो प्रतीकात्मक गोत्र देव और अधिष्ठाता होता हैं। उसे उस जनजाति के लोग संरक्षित करते हैं। और पूजते हैं इस दृष्टि से वे अपने पुरखों की स्मृति को भी पूज्य मानते हैं। और उनकी समाधि स्थल पर काष्ठ या पाषाण का स्तम्भ गाड़ते हैं एवं उसकी पूजा करते हैं

शायद इन्हीं सब सहज सरल मान्यताओं और परम्पराओं के कारण इनका जीवन भी सरल सहज आडम्बरहीन और निश्छलता से पूर्ण होता है। वे स्वार्थ धोखा-धड़ी और दिखावे कि संस्कृति से दूर रहते हैं। उनके समाज में ऊँच-नींच का कोई मान नहीं हैं। और नहीं स्व की विशिष्ट अनुभूति का कोई भाव होता है वह अनुभूति सामूहिक मुल्यों और सद अस्तित्व-सहजीविता में विश्वास से रखता हैं। उनकी संस्कृति में कोई आडम्बर और भेदभाव नहीं है। उनकी दृष्टि में सुन्दर-असुन्दर, अच्छा-बुरा, मनुष्य-अमनुष्य जैसी कोई अवधारणा भी नहीं हैं। संम्पूर्ण सजीव और निर्जीव जगत तथा प्रकृति सबका अस्तित्व एक समान हैं। मनुष्य का धरती प्रकृति और सृष्टि के साथ सहजीवी सम्बन्ध हैं। और यही उनकी संस्कृति और समुच्चय जीवन की सहज धारणा हैं। शायद इसीलिये जब वे जगंल जाकर अपनी आवश्यकता के लिए पेड़ काटते हैं। वे जड़ी-बूटी उखाड़ते हैं। तो पहले उसकी पूजा करते हैं। उसे आदर सम्मान देते

हैं फिर उस पर हँसिया या कुल्हाड़ी चलाते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन ही प्रकृति की सहजीविता और उनका संरक्षणता से संचालित होता हैं। इसलिये वे नतभाव प्रकृति से अपने को जोड़ने का प्रयास करते हैं। यहीं उनकी अरभ्य संस्कृति का निकष और निष्कर्ष हैं। यदि प्रकृति बची रहेगी तो सब कुछ बचा रहेगा।

सभी आदिम जनजातियों में सृष्टि और प्रकृति के प्रति यही सम्मान और एक मेय का भाव आपको देखने मिलेगा। उनके सभी पर्व पूजा-अनुष्ठान सब प्रकृति से जुड़े हुए हैं। गोण्डों के लिंगोंदेव, कोरकुओं के महादेव, बैगाओं के बूढ़ा देव, भारिया सहरिया के दूल्हादेव तथा भीलों के बड़ा देव, सब प्रकृति और सृष्टि के नियामक हैं। बड़ा देव सार्वभौम है। उसकी सत्ता सर्वव्यापक हैं। सभी जनजातियों के लोग विभिन्न रूप में उन्हें मानते हैं। और पूजते हैं।

उनके पूजा अनुष्ठान पर्व त्योहार जातरा आदि देवी-देवताओं और पूरखों के पूजने स्मरण करने और भावी विपत्तियों से रक्षा की प्रार्थना के अवसर होते हैं इसमें पकवानों और मदिरा का भोग कराया जाता हैं। मुर्गे, बकरी, चूजे आदि की बलि दी जाती हैं। यह सब कार्यक्रम व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तर पर आयोजित होते हैं। और इसमें सब एक आदर और उल्लास के भाव से सम्मिलित होते हैं। इसमें नृत्य गीत के साथ उत्सव का उल्लास भी बिखरता हैं।

उनकी इस सहजीविता के सिद्धान्त में किसी दुराव वैमनस्य का भाव नहीं होता। बल्कि सभी ऐसे कार्यक्रम पूर्ण रूपेण सामूहिकता और सहयोग के भाव से जुड़े होते हैं। जिसमें सब स्त्री पुरूष मिलजुलकर भाग लेते हैं।

इस प्रकार आदिम जनजातियों के पूजा अनुष्ठान, नृत्य, संगीत, मेला, मड़ई, जातरा न केवल आदिवासी संस्कृति के प्रतिकात्मक संवाहक हैं। बल्कि उनकी जनजातीय चेतना और आस्था के भी प्रतीक हैं। और आदिवासीयों के जीवन का सबसे बड़ा नैसर्गिक सत्य तो यह है कि उनका कोई कार्य चाहे वह पूजा अनुष्ठान हो जन्म विवाहादि कार्यक्रम हो में का मड़ई पर्व हो नृत्य संगीत के बिना जैसे होता ही नहीं हैं। उनकी उत्सव धर्मिता नृत्य लय जैसे उनकी रग-रग में भरी होती हैं।

ऐसे ही शिष्पकलाओं का और दैनंदिनी काम में आने वाली वस्तुओं का औसतन निर्माण आदिवासी परिवार ही करते है। और चूँकि सब कुछ उनके रोजमर्रा के जीवन से जुड़ा हुआ कार्य होता हैं। इस कारण उस सबको वे किसी कला की अवधारणा में नहीं लेते वह उनका सहज कर्म, सहजभाव और नैसर्गिक जीवन शैली से जुड़ा होता हैं। और सबसे बड़ी बात में अपना कार्य सहज संतुष्टि और रूचिभाव से करते हैं। तो अपने आप ही उनके कार्य में एक सुघड़ता और सुन्दरता या दूसरे शब्दों में एक कलात्मकता का आभास होने लगता हैं। पर ये हमारी सोच हैं। उनके लिये तो वह रोजमर्रा उनकी दिनचर्या और कार्य में शामिल होता है।

आप उनके घर आँगन, दीवारों की सफाई देखे, इनके रंगबिरंगे गेरू या गोबर के आलेखन देखे। उनकी गृहस्थी के काम में आने वाली चीजों को देखें। उनके घासफूस और मिट्टी के कच्चे-पक्के मकानों को देखें। उनकी साज सज्जा और उनकी सफाई और स्वच्छ प्रियता देखें। तो आप अपने आप ही उनकी कलात्मकता और उनकी सुघड़ता से परिचित हो जायेंगे। यह उनकी रोजमर्रा की जीवन प्रक्रिया का सरल अंग होती हैं। उसमें कोई दिखावा या आडम्बर नहीं होता। जैसा कि हमारे नगर समाज में होता हैं। अवसर विशेष पर जो भी होता है वह दिखावे के लिये होता है। प्रशंसा पाने के लिए होता हैं। पर आदिवासी समाज में ये उनकी स्वच्छप्रियता और उनकी सहजीवन का अभिन्न अंग होता हैं। वह उनकी परम्परा और जातीय अस्मिता का प्रतीक होता हैं। यदि जंगल में बसी आप उनकी बस्ती में जायें। तो अपने आप ही उनके जीवन की श्रमशक्ति और कलाप्रियता और उनकी रोजमर्रा की साफ-सफाई के प्रशंसक बन जायेंगे।

सच तो यह हैं कि आदिवासी जनजीवन पुर्ण रूप से प्रकृति से जुड़ा हुआ जीवन है। उसमें श्रमनिष्ठता, साफ-सफाई, सुघड़ता के साथ जीवन की आत्मीयता भी जुड़ी होती हैं। वे सब अपना कर्तव्य समझ कर करते

हैं। उनमें आडम्बर दिखावा या किसी किस्म की जल्दी या समावेश नहीं होता। उनका अपना काम हैं। इसलिये पूर्ण संतुष्टि के साथ अपना काम करते है। यह उनकी परम्परा है, यह उनकी संस्कृति है, यह सब उनकी जातीय अस्मिता का प्रतीक है।

वे बहुत सहज और सरल जीवन जीते है, उनकी सभी आवश्यकतायें जंगल, जमीन और प्रकृति से पूरी हो जाती है इस कारण इन्हें किसी के आगे हाथ भी नहीं फैलाना पड़ता हैं। और सबसे बड़ी बात उनके समाज में सामूहिकता का भाव होता हैं। छोटे-बड़े काम वे मिल-जुलकर कर लेते हैं। और यही आदिवासी जन जातियों की सबसे बड़ी विशेषता हैं, जो सहज ही नागर समाज से उनको विशेष बना देती हैं।

पर अब समय बहुत बदल गया है और बहुत तेजी से बदल भी रहा हैं जंगल भी खत्म हो रहे है। आदिवासीयों को उनके जंगल उनकी जमीन से विस्थापित किया जा रहा हैं विकास और औद्योगिकरण और बाजारवाद की अंधी दौड़ ने हमारी पृथ्वी के पर्यावरण को एकदम लहुलुहान करके हमें और हमारी पृथ्वी को विनाश की कगार पर ला खड़ा किया हैं। जंगलो का कटना और पृथ्वी के संसाधनों का अंधाधुन्ध दोहन उसे बंजर और खोखला बना रहा हैं। ऊपर से औद्योगिक विकास में परमाणु शक्ति का उपयोग कर पर्यावरण को और जहरीली गैसों से प्रदूषित कर दिया हैं। परम्परा द्वेष और स्वार्थ के लिये युद्धोन्माद और परमाणु युद्ध की तैयारी हो रही है। अंतरिक्ष को भी मिसाइल और राकेटों के कबाड़ ने भर दिया हैं। अपार ओजोन पर्त के छिद्रों ने ग्लोबल वार्मिग की चुनौति दे दी हैं। वे मौसम हिमखण्ड और ग्लेशियर पिघलने लगें हैं। महासागरों की सीमायें तौड़कर उफनती हुई। जलराशि पृथ्वी लीलने को तैयार है। न जाने कितने जीव जन्तुओं और पौधों की प्रजातियाँ नष्ट हो गई हैं।

सन् 2023 लग गया हैं रूस और यूक्रेन का युद्ध खत्म होनें को नही आ रहा हैं। और पूरी दुनिया एक प्रकार से विश्व युद्ध की आशंका से त्रस्त होकर बस संपूर्ण विनाश की कगार पर आकर खड़ी हो गई है। यानि सचमुच समय आ गया है हमारे चेतने का संपूर्ण मानव जाति के भविष्य की चिन्ता करने का और अपनी इस सुन्दर पृथ्वी को बचाने का।

अतीत में सृष्टि की प्रलय की मिथक कथायें महज काल्पनिक नहीं थी। वे आदिम युग की जागृत चेतावनी थी। जिन्हें स्वीकारने का समय आ गया है यदि हमने अभी भी अपनी धरती-प्रकृति और इसके प्रदूषित होते पर्यावरण को सुधारने के लिये कोई सम्मिलित प्रयास नहीं कियें। तो जल प्रलय की बड़ी मिथक कथायें फिर दुहरायी जायेगी। फिर भीमल देव को अपना नागर चलाना होगा और फिर नयी धरती को खोजना होगा।

आज नहीं तो कल देर सबेरे यह स्थिति आनी ही हैं। बस उसे टालने के लिये कुछ प्रयास ही कर सकते हैं। क्योंकि आधुनिक विकास ही इस विनाश का पर्याय बन गया है।

जो सामने के समय का कठोर सत्य है उसे हम नकार नहीं सकते पर अपनी इस सुन्दरता को इस मयावह विनाश की विभीषिका से बचाने का सम्मिलित प्रयास तो कर ही सकते हैं। और यदि अतिशंयोक्ति न माने तो आदिवासी जनजीवन जीने का सरल सहज सिद्धान्त और उनका जीवन दर्शन जरूर हमें प्रेरणा दे सकता हैं। और हम इस संपूर्ण पृथ्वी को बचाने का सम्मिलित प्रयास कर सकते हैं। और यह स्वयं सत्य सिद्धान्त हैं।

1. प्रकृति के साथ सहजीविता के साथ जीना सींखे प्रकृति का उतना ही उपयोग करें जितना जीवन के लिये जरूरी है।
2. व्यक्तिवाद छोड़कर सामूहिकता में बिना ऊँच-नींच का भाव

लेकर जीने का प्रयास होना चाहिये। यानि सबका हक एक समान–और जीने का स्तर एक होना चाहिये। सामूहिमता सबका हित करती हैं। और एक दूसरे के प्रति गंभीरता से सोचने का अवसर देती हैं। जैसा कि आदिवासी समाज में होता है। उनमें अधिकार की भावना नहीं होती। वे पूरे समाज के भले के बारे में सोचते हैं।

3. दूसरे के अधिकार का मान सम्मान करें आदिवसी लोग गाय, भैस का दूध नहीं पीते क्योकि उनका मानना है कि दूध पर पहला हक उसके बछड़े का है।
4. आदिवासी समाज श्रम निष्ठ समाज है सबको मिलजुलकर काम करना चाहिए। अपने कार्य के प्रति उनमें एक स्वाभिमान का भान होता है।
5. आदिवासी आदिम समाज प्रकृति को एक सार्वभौमिक एकता के रूप में देखता है। और सहज सम्मान और भय के साथ उसे पूजता हैं भय का भाव उसे अति करने से रोकता है।

यही वह जीवन दर्शन है आदिवासीयों के जनजीवन को जीने का यदि समस्त विश्व अपने स्तर पर इसे मानने लगे। पर्यावरण और प्रकृति के प्रति एक सहजीविता के भाव से जुड़ने का प्रयास करें। तो बहुत कुछ बदल सकता है। एक लम्बे समय के लिये आदिवासीयों के बीच रहने और सीखने का मौका मिला। उनके जड़ी–बूटी विज्ञान और टोटकें दोनों और उनकी धार्मिक अनुष्ठानों और पूजा पाठ को समझने का प्रयास किया। भले ही हम उसे अंधविश्वास माने पर आप जब इसकी सफलता और आश्चर्यजनक परिणामों पर विचार करें। तो आपको अपनी राय उनके प्रति बदलनी होगी। एक जमानें में अँग्रेज यहाँ आये। उन्होंने यहाँ शासन भी किया पर भारतीय काले जादू और उनके टोटके टोने को वे पूरी तरह से जुठला नहीं सकें। सन् 2016 में अमरकंटक यूनिवर्सिटी ने बैगा चक के चाड़ा ग्राम में आदिवासीयों का सम्मेलन किया था। और उनके विकास के लिये बहुत से प्रोजेक्ट पर चर्चा हुई थी।

उस कार्यक्रम में राँची विदार से एक MD. Spacials डॉक्टर याल अपनी डॉक्टर बेटी के साथ आये थे। वे दरसअल एक बूजुर्ग बैगा से मिलने आयें थें। जिसने जड़ी–बूटियों और कुछ टोने टोटको से उनका ब्लड कैन्सर जड़ से खत्म कर दिया था। एह एक लाइलाज बीमारी थी। पर खत्म होना एक चमत्कार की ही तरह था। सम्मेलन में उस वृद्ध वैद्य और औफा में उनकी भेट हुई। वे उस जड़ी–बूटी की जानकारी लेना चाहते थे। और उसके लिये एक बड़ी रकम भी देने को तैयार थे। उस बैगा ने पैसा लेने को सख्त मना कर दिया था।

यह उसकी आस्था विश्वास पर परम्परा पर चोट थी।

खैर इस घटना को आप जिस अर्थ में भी ले पर मेरा यही मानना है कि आदिवासी समाज अभी भी अपनी जड़ो और जड़ी–बूटी के कौशल से जुड़ा है। और हम इनका समूचित आदर और सम्मान करते हुए इनके ज्ञान विज्ञान को अपने स्तर पर समझने और सीखने का प्रयास करना चाहिए। और इसी सब में हमारा सबका और हमारी संपूर्ण पृथ्वी और इसके पर्यावरण का भला है। हमारी पृथ्वी रहेगी तो हम रहेंगे अन्यथा एक दिन तो सब खत्म होना ही हैं। ''बीसवी सदी के महान वैज्ञानिक'' आइसेटीन की भविष्य का कठोर सत्य हम अभी से अनुभव करने लगे हैं। कि परमाणु युद्ध में सब कुछ नष्ट हो जायेगा। कुछ भी नहीं बचेगा और भविष्य की आगत पीढ़ी को अपना युद्ध पत्थरों से लड़ना होगा। क्योकि कहने के लिये पत्थरों के सिवा कुछ होगा ही नहीं।

लेखक– वरिष्ठ छायाकार और लेखक है।
सम्पर्क: काजल कला वीथिका, 'शेफालिका' पाठक कॉलोनी, किल्लई नाका, दमोह (म.प्र.)–470661
मो.: 9871436757

■

आलेख

पिठौरा कथा में कथा-प्रतीक

डॉ. राजेश राठवा

मध्य गुजरात के पाल क्षेत्र की राठवा जनजाति के बाबा पिथौरा की पुराकथा में सृष्टि का क्रम पृथ्वी की उत्पत्ति, वर्षा का अवतरण, वनों की वृद्धि और अन्न की उत्पत्ति है। यह अवधारणा आदिवासी निर्माण के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रकट करती है। राठ क्षेत्र स्थित जनजातियों की इस अवधारणा से प्रकृति के विभिन्न भागों के विकास को भी जाना जा सकता है। दक्षिण गुजरात के देहवाली भीलों में अखंड धरती, 'नवखंड धरती' जैसे शब्द पाए जाते हैं। राठ क्षेत्र के पिठौरा पुरकथा में 'तेरखंड धरती' शब्द भी इसी संदर्भ में मिलता है। जो पृथ्वी के मौसमी परिवर्तनों का सूचक है।

पृथ्वी के बारे में मिथकीय प्रतीक 'कणी-कंसरी' की कहानी में देखने को मिलता है। पृथ्वी के जन्म के कुछ वृत्तान्तों के अनुसार जिस प्रकार एक स्त्री गर्भवती हो जाती है और उसके दिन और महीने बीत जाते हैं, यहाँ भी पृथ्वी के जन्म की दशा में कुछ दिन और महीने उसे गर्भ धारण करने लगते हैं और वह सात वर्ष की हो जाती है। इसके सात कोणों वाले वृत्त की तह, यह विश्वास कि पृथ्वी का निर्माण हुआ और पृथ्वी के जन्म की घटना और 'कोल तोरती' अर्थात पृथ्वी के गोल होने का विचार भीलों को विज्ञान के बहुत करीब लाता है।

प्रतीक और मिथक का गहरा संबंध है । प्रतीक मिथक की आंतरिक ऊर्जा है । प्रतीकों की अर्थवत्ता से मिथकों के केंद्रीय भाव की सत्ता में गहराई और सौंदर्य वृद्धी होती है। मिथक में जितने अधिक प्रतीक चमकदार और संश्लेषी होते हैं, मिथक की संरचना उतनी ही गूढ़ और समष्टिगत होती है। मिथक आदिम मनुष्य की भाषा है, जिसके माध्यम से वह जीवन और प्रकृति के रहस्यों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को अलौकिक कथा-गाथाओं के रूप में अभिव्यक्त करता था, मिथक यह आदिम यथार्थ के प्रति सामूहिक अचेतन मन के अंदर का सहज स्फूर्त बिबात्मक सृजन है। डॉ. जगदीश गुप्त ने 'शैल चित्रों' में पाए जाने वाले प्रतीक चिन्हों का सोदाहरण विस्तृत विवेचन उनकी पुस्तक प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला के अध्याय पूजा-प्रतीक में किया है। उतका मानना है, प्रतीक आदि मानव द्वारा गुफाओं में निर्मित चित्रांकनों से ही शुरू होते है, जो बाद में मानव विकास के साथ नए-नए अर्थ धारण करते गए । उनके अनुसार इसे प्रजनन प्रतीक, उर्वरता प्रतीक, पुरातत्व व्यापारिक चिन्ह , अलंकरण, अभिप्राय, अग्नि, विद्युत, वज्र, जल, आदि को सांकेतिक रुप में व्याख्यायित किया गया है।[1]

'बिंब जहाँ मिथ' की रचना में चित्र की उपस्थिति के लिए अनिवार्य अंग है, वही प्रतीक उस चित्र को, कथा को तर्कपूर्ण ढँग से स्पष्ट करता है। प्रतीक अपने आप में पूर्ण और सार्थक अभिव्यंजना होते हैं ।

आदिम समुदायों के कथा वाहकों ने सृष्टि निर्माण के बाद अनेकों जीवों का इस धरती पर आगमन होने से लेकर आज दिन तक

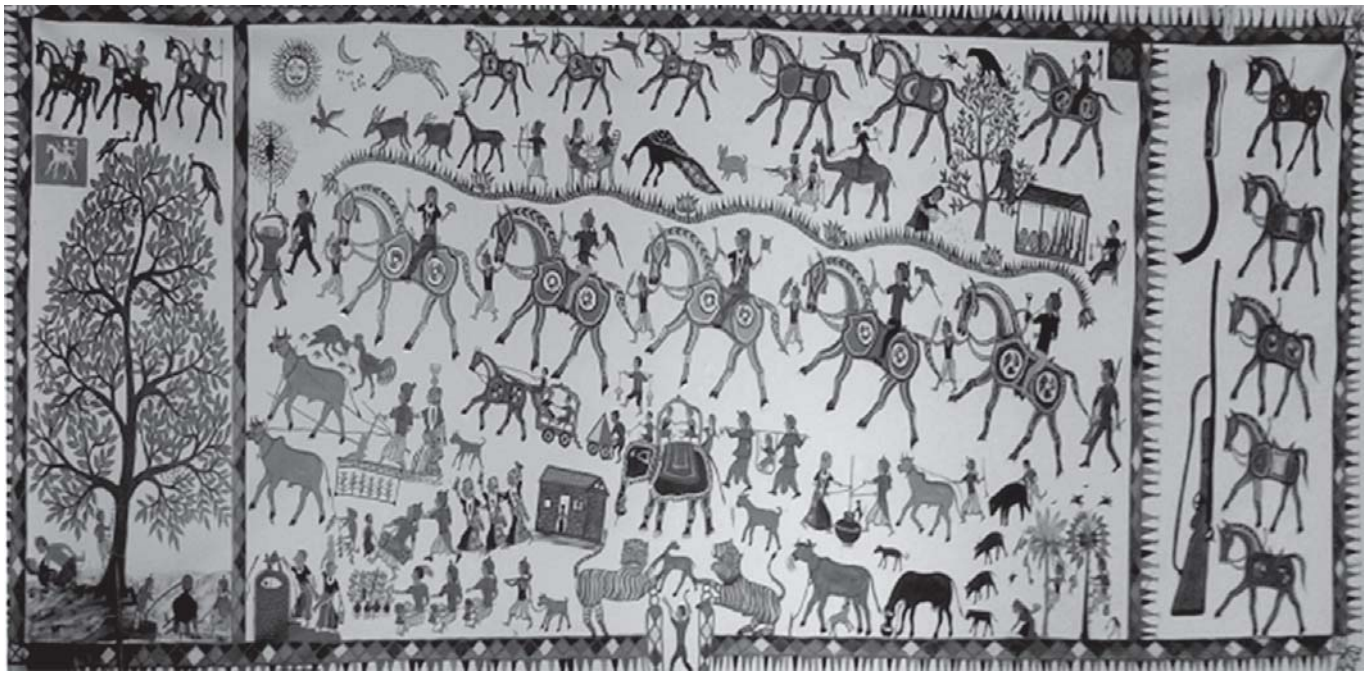

पिठौरा कलाकार : मानसिंग धनजी राठवा, मलाजा (गुज.), हरी मानसिंग राठवा, मलाजा (गुज.), नजरू चेकला राठवा, गुनाटा (गुज.), देसिंग चिलिया राठवा, रंगपुर सढली (गुज.)

का जो प्रकृति का नज़ारा था वो परिदृश्य बना सके, जो पिथौरा कथा में मौजूद है। पिथौरा पुराकथा में हजारों वर्ष पुराने अनुभवों का वर्णन किया गया है। इसमें प्रकृति के सभी तत्वों को सजीव माना गया है। यह ऐतिहासिकता जबकि छोटा उदेपुर जिले के कोराज पहाड़ स्थित पुरातत्वविदोने अनुसंधान के जरिए प्रमाणित किया तब बारह हजार (12000) साल पुरानी चित्रलीपि घोषित हुई ।

साहित्य कला और जीवन में प्रतीक के माध्यम से बात करने की पद्धति अति प्राचीन है। आदिम मानवों ने प्रतीकों के माध्यम से बात करना सीख लिया था । बाद में वहाँ साहित्य और कला की प्रत्येक विधा में सशक्त माध्यम बनकर आया । यहाँ तक कि साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रतीकवाद का प्रादुर्भाव हुआ । प्रतीक में उपमा का योगदान सबसे महत्वपूर्ण होता है । प्रतीक में कहीं गई बात बिंबों की समानता पर आधारित होती है और मस्तिष्क में किसी वस्तु, विचार या भाव का चित्र बनने लगता है । चित्रकला में वही बात रंगों और उनमें बनाए गए प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट होती है।[2]

क्लाद् लेवी स्त्रास ने अमेरिकन जनजातियों के प्रतीकों और मिथकों पर काम करते हुए लिखा है, जनजातियों के आदिम प्रतीक और मिथक उनके प्रारंभिक विकासशील जीवन के दस्तावेज हैं, जो उस काल के मनुष्य के सोच और समझ के सारे तत्वों को प्रकट करतें हैं। मनुष्य की इस संचेतना को हर देश, काल और परिस्थिति में अभिव्यक्ति मिली है।

आदिम मानव प्रकृति के हर रहस्य को अपनी बुद्धि और रीति से जानना चाहता था । जानने की यह प्रक्रिया मानव विकास के साथ निरंतर जारी रही है । मनुष्य के विकास का लेखा-जोखा अर्थात् इतिहास मनुष्य के इसी प्रयास के कारण और प्रयास में विविध विधाओं में संरक्षित होता चला गया । प्रकृति के रहस्य और मानव इतिहास की कड़ीयाँ और उसे जानने की प्रज्ञा प्रतीक में निहीत होती चली गई। बहुत हद तक मनुष्य प्रतीक और मिथक के सहारे प्रकृति के रहस्यों की खोज और छान-बीन करने में सक्षम रहा है। उसमें सूर्य, चाँद, पृथ्वी, जल एवं जीव-जगत आदि की उत्पत्ति संबंधी रहस्यों को अपने प्रतीक और मिथक के सहारे खोजा है और उसने उसके अपनी तर्क और कल्पना शक्ति से उत्तर भी दिए हैं, यही उत्तर प्रतीक और मिथक हैं।[3]

उपरोक्त प्रतीकवत्ता के उदय से सम्बन्धित दोनों प्राकृतिक आधार राठ क्षेत्र की पिठौरा कथा में वर्णन एवं पिठौरा भितिचित्र में प्रतिकात्मक रूप में रखा गया है । पिठौरा चित्रांकन के ऊपरी भाग में सूर्य और चन्द्र का चित्रण अंधकार मिटाने के प्रतीक के रूप में किया गया है । चित्रांकन के मध्यभाग में कृषि कर्म के निर्माण में कृषक का चित्रांकन किया गया है ।

कणी कनसरी जो इस धरती पर पहला धान्य लाने वाली देवी

के रूप में उनका चित्र 'कण' अर्थात् 'धान्य' के प्रतीक रूप चित्र बनाया जाता है। दूसरी ओर उस धान्य (बीज) की सिंचाई के लिए वर्षा की देवी राणी काजल का चित्रण किया जाता है, जिससे सृष्टि पर हरियाली बनी रहती है । पिठौरा चित्रांकन के बायीं ओर पेड़ की आड़ में कामदेव को चित्रित किया गया है जो प्रतीकवत्ता के दूसरे आधार कृषि कर्म और प्रजनन कर्म को आदिम चित्रांकन ने हजारों सालों पहले अपनी जगह बना ही ली थी। फेजर का मत था कि मिथक-निर्मिति का मूल बिन्दु प्रकार और अन्धकार का संघर्ष न होकर कृषि और काम है । उपरोक्त सूर्य और अन्धकार का संघर्ष, कृषिकर्म और प्रजनन (काम) यह सभी का वर्णन पिठौरा चित्रांकन का आदिम लोक कथाओं में इन सभी पहलूओं को गहराई से सोच समझकर रखने की परम्परा आदिम समय से लोक कथाओं में सृष्टि निर्माण से लेकर कई घटना क्रमों का वर्णन मिलता है ।

प्रतीकों के लक्षण

प्रतीक किसी भी जाति की सांस्कृतिक धरोहर होते है। उनकी रचना या कि उनका अन्वेषण घटित पर होता है। घटमान जब घटित हो जाता है, तभी उसमें अर्थ खोजने-पाने का प्रश्न उठता है।

भवन्ती के अनुसार-भारतीय संदर्भ में यह बात और भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ का कलाकार प्रतीक की खिड़की से देखता है और यह देखना इतना गहन होता है कि वह वस्तु के पर अवस्थित 'वस्तुसत' को संवेध बना लेता है। पश्चिम का कलाकार रूप (काम) की खिड़की से देखता है और वस्तु तक सीमित रहकर संतोष कर लेता है। अपनी जातीय प्रकृति को समझने के लिए प्रतीकानुसंधान हमारी पहली आवश्यकता है। हमारे सुदूर अतीत, प्रागैतिहासिक युग का संप्रेक्ष्य बन पाना।[4]

कालरिज का कहना है कि- 'प्रतीक' व्यक्ति में विशेष और विशेष में सामान्य की और सबसे बड़ी बात यह है कि कालबध्य में कालातीत की झलक देता है।[5]

'फेटिश की निर्मिति के चार सोपान है- 'विस्मब', वस्तु का स्वरूप और तत्व संबंधी कारणात्मक विचारशीलता, वस्तु और उसके प्रभाव के बीच के आकस्मिक सम्बन्ध की सहज स्वीकृति और वस्तु में शक्ति का अस्तित्व मान लेना । इस प्रक्रिया से आस्था का मनस्तार्किक समाधान मिल जाता है । मोहनजोदड़ो के पुरातात्विक अन्वेषण से इस बात के प्रमाण मिले है कि वैदिक युग में वृक्ष, अग्नि और जल की पूजा होती थी।''[6]

'फेटिश' की निर्मिति के चार सोपानों एवं वैदिक युग में प्रकृति पूजन के मूल में वृक्ष, अग्नि, और जल पूजन का जिक्र किया गया है । मालवा एवं राठ क्षेत्र की लोककथाओं में कई वृक्षों को प्रतीक माना गया है । अग्नि को साक्षात देव का प्रतीक माना गया एवं जल को लेकर हरियाली की आदिम लोककथा में बारह धारों की वर्षा और सवा सो समुद्रों का वर्णन प्रतीक के रूप में मिलता है ।

उपरोक्त सभी प्रमुख प्रतीकों से मैंने वृक्षों को प्रतीक मानकर हजारों सालों से घने वनों में जो आज हम सबसे पुराने वृक्ष देख सकते है और ऐसे कई गाँव एवं आदिवासी क्षेत्रोंमें हमें प्रकृति पूजन के स्थलों पर देखने को मिलते है । ऐसे वृक्षों के विषय में मैं अपनी पुरखों की आवाज़ कथा के माध्यम से उ.दा. के रूप में प्रस्तुत किया है ।

राठ क्षेत्र की इन्दल पुराकथा में 'कठा मराठी ला' अर्थात् 'कणबा' नामक वृक्ष को प्रतीक रूप में पूजन की प्रक्रिया देखने को मिलती है । रांची झारखंडमें उन्हें करम के नाम से भी जाना जाता है । पुराकथा के अनुष्ठान के समय सुबह पहले इस पेड़ की शाखाओं को अनुमति लेकर काट लिया जाता है, शाखाएँ कभी नीचे नहीं गिरने देते घर के आँगन में लाकर अनुष्ठान की निश्चित जगह पर गाढ़ दिया जाता है। और उनकी परम्परागत ज्वार के धान्य से पूजन किया जाता है। क्योंकि ज्वार का धान्य इस धरती पर पहले आया था, ऐसा भी पुराकथाओं में वर्णन मिलता है ।

भीलों की जन्म सम्बन्धी विधि-विधानों में इस प्रकार के कोई प्रमुख वृक्षों का कहीं पर जिक्र नहीं होता है लेकिन शादी-ब्याह के विधि-विधानों में वृक्षों का वर्णन मिलता है- जैसे भीली विवाह के सामियाने के पूजन में उमरा, पिपल, काकड़ा के वृक्षों की शाखाओं को ढ़ोल मांदल के साथ नाचते-कूदते लेकर शामियाने में गाढ़ने की परम्परा आज भी देखी जाती है ।

जैसे इन्दल कथा में प्रयुक्त प्रतीक:

उमरा: प्रजनन प्रतीक (विवाहिताओं के संदर्भ में)

ज्वार: धरती का पहला धान्य का प्रतीक

विदूबाई: सृष्टि निर्माण का प्रतीक (धरती के पिंड का प्रतीक)

शिराँ: पुरखों की आत्मा लम्बें अरसे तक जिन्दा रहने का प्रतीक

वीरबारी: अमर पानी का प्रतीक

जलसिन्धी: देव-स्थानकों का प्रतीक

पिपल: पवन-हवा का प्रतीक है। भीली पुराकथा में वर्णन मिलता हैं कि- एक समय पवन पृथ्वी पर से गायब हो गया था। देवोंने पूरी धरती छानमारी लेकिन कहीं पर भी पवन हाथ नहीं लगा,

लेकिन एक घटादार पिपल के उपरी हिस्से पर एक टहनी पर केवल एक पत्ता हील रहा था। देवोंने उसी पत्ते को खिचकर पवन को बाहर निकाला था, तबसे उसके पत्तें का आकार पिछे से लम्बा हो गया था। तब से लेकर आज तक हवा का रूख शांत हो जाने पर भी पिपल का कोई एक पत्ता हमेशा हिलता नज़र आता हैं।

उपरोक्त सभी वृक्षों पर फूल आने से पहले ही फल आ जाता है, तद्उपरांत यह वृक्षों के विषय में भीलों की मान्यताएँ ऐसी है कि काकड़ की शाखा को कहीं पर भी फेंक दि जाये वह कभी निर्जिव नहीं बनती अर्थात् इन शाखाओं में जीव तत्व कायम रहता है। हालाँकि 'उमरा' वृक्ष का विज्ञान बहुत सूक्ष्म है, क्योंकि 'उमरा' के फल में अनगिनत बीज होते है उसी प्रकार विवाहित जीवन में भी अनगिनत बीज धारण करने की शक्ति प्रदान करने वाले वृक्षों को प्रतीक मानकर पूजन-विधियाँ करने की हमारे पुरखों की हजारों वर्षो परम्परा रही है।

गुजरात के राठ क्षेत्र के भीलों में भी वृक्ष विषयक पूजन-विधियों का प्रचलन देखने को मिलता है। पिठौरा एवं इन्दल में वृक्षपूजन का महत्व देखने को मिलता है ।'कूऊड़ी और कणबा' के वृक्ष की शाखाओं को गाढ़ कर पिठौरा व इन्दल पूजन विधियाँ कि जाती है। इस शाखाओं की पूजन-विधि में ढ़ोल-मांदल थाली बजाते हुए नाचते-कूदते सम्मान के साथ पूजन के स्थानक पर लाया जाता है ।निश्चित स्थानक पर शाखाओं को गाढ़कर उन शाखाओं को साक्षी मानकर पिठौरा एवं इन्दल की पूजन-विधियों का प्रारंभ किया जाता है।

-जैसे पिठौरा कथा में प्रयुक्त प्रतीक

पिठौरा-सुख समृद्धि और संतति का प्रतीक

घोड़े (अश्व): नैसर्गिक शक्ति एवं संवाहक का प्रतीक

बैल : कृषि संस्कृति का प्रतीक

सूर्य-चंद्र : प्रकृति की दो आँखें का प्रतीक

कणबा-करम : वृक्ष पूजन एवं आस्था का प्रतीक

राणीकाजल : वर्षा का प्रतीक

कण्डुराणा : मेघ एवं बादल का प्रतीक

पोपट : प्रेम का प्रतीक (उसकी बोली मिठी होती हैं)

गिद्ध एवं उल्लु : अपशगुन का प्रतीक

संभोग युग्म चित्र : प्रजनन सम्बन्धी प्रतीक

शिकार: आखेट कालिन का प्रतीक

सुपड़ कन्या : बहुत लम्बे कान का प्रतिक (जो गाँव भर की बाते सुनती हों)

मालवा और राठ क्षेत्र की इन्दल एवं पिठौरा लोककथा में वृक्षों को लेकर आदिवासियों में प्रमुख रूप से विशिष्ट मान्यताएँ देखने को मिलती है ।

जैसे-'सागौन' का वृक्ष दो प्रकार के पाये जाते है एक सागौन (पुरुष) के नाम से पहचाना जाता है, जिसे भीलों में 'हाग' कहते हैं। यह सागौन का पुरुष प्रकार है उन्हें जरुरत पड़ने पर काटा जाता है, लेकिन 'सागौन' का दूसरा प्रकार है जिन्हें 'हागीळी' कहा जाता है जिसे स्त्री वर्ग का प्रतीक माना जाता है ।

'सागौनी' के वृक्ष के विषय में ऐसी मान्यता है कि संपूर्ण जंगल (वन) में केवल एक ही सागौनी पायी जाती है और वह निरंतर अपना स्थान बदलती रहती है, ऐसा भी माना जाता है। वह सागौनी किसी नेक व्यक्ति को दिखाई पड़ती है अपितु उनका दर्शन करना भी दुर्लभ है।

इस 'सागौनी' वृक्ष को कोई भी व्यक्ति काट नहीं सकता, अगर किसी ने काटने का प्रयास किया तो वह व्यक्ति जिन्दा नहीं रह पाता, सागौनी को काटने से उसमें से खून निकलता है, ऐसा भी जानकार बुजुर्गों का मानना है। अगर किसी ने ये सबकुछ जानते हुए भी काटने का प्रयास किया तब सागौनी से आवाज भी निकलती है जैसे- मारा... माँ, रांदेरा... बा...वड़ो....होमां... (मुझे मत काटो, मत काटो रे.... माय-बाप... मत काटो) इस प्रकास चिल्लाने लगता है वह सागौनी का वृक्ष ।

इसी प्रकार पिपल, बरगद, बेहड़ा, उमरी आदि वृक्षों को थल से काटने वाले कहीं लम्बे समय के लिए बीमार हो जाते है या फिर मर जाते है ऐसी भी एक मान्यता है ।

चूँकी पुरखों की वृक्षों को प्रतीक मानने की एक दीर्घदृष्टि मानी जाती है। जैसे की कई पेड़ बदलते मौसम के कारण जिन्दा रहना बहुत मुश्किल जान पड़ता था । ऐसे पेड़ काटने से उनकी पहचान ही खत्म हो जाएगी ऐसा सोचकर ऐसे पेड़ों को कभी नहीं काटने की मान्यता खड़ी की गई है, ऐसा भी ज्ञाताओं का कहना है । अर्थात् औषधीय गुणवाले किसी भी पेड़-पान लत्ताएँ, घास आदि भी पूर्ण रूप से नष्ट न करने का दृष्टिकोण आदिवासीयों में देखने को मिलता है ।पशु-पक्षीयों एवं प्राणीयों को फल-फूल देने वाले वृक्षों को कभी भी नहीं काटते। डाँग क्षेत्र में आज भी स्त्री गर्भ धारण करने के बाद उनका पति वन में कभी पेड़, पत्ते, लत्ताएँ भी नहीं काटता, ऐसी मान्यताओं का कायम पालन किया जाता है।

लोककथाओं में कोई संवेदनशील बात प्रतीक रुप में कही जाने की परंपरा है। लोककथाओं के शब्दों के माध्यम से रंग-

रेखाओं और आकृतियों के माध्यम से तथा प्रदर्शनकारी कलाओं में स्वर, लय, ताल, और नृत्य के अभिनय से प्रतीक साकार होते हैं। भाषा स्वयं एक प्रतीक है। विश्व का व्यवहार प्रतीकों के माध्यम से होता है। आदिकाल से जीवन के हर पहलू प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त होते आये है । अर्थ, बिम्ब, अभिप्राय से मिलकर प्रतीक बनता है। डॉ. जगदीश गुप्ता के मतानुसार- प्रतीक रुपक के बहुत नजदीक होता है। प्रतीक आरोपित नहीं होते लेकिन रुपक में एक वस्तु दूसरी वस्तु की सदृश्यता के कारण पूरी ढ़क लेती हैं। प्रतीक में ऐसा बलात कभी नहीं होता, प्रतीक किसी के बदले रुप में युगों से प्रचलित हैं।[7]

प्रतीक मनुष्य की हर समय में बनते मिटतें हैं। प्रतीक के साथ यह सार्थकता निरर्थकता परम्परागत रुप से चलती रहती है, लेकिन प्रतीक परम्परा कभी समाप्त नहीं होती। पुराने प्रतीकों की जगह नए प्रतीक बन जाते हैं। प्रतीक मनुष्य की यह अभिव्यक्ति है, जिसे मनुष्य सीधे नहीं कह पाता लेकिन उसे छिपा भी नहीं पाता, उसे सादृश्य भाव के बिम्बों को प्रकट करता है, तब वह संरचना प्रतीक हो जाती हैं। साहित्य और कला में प्रतिकों के माध्यम से बात कहने का प्रचलन आदिम समुदाय से ग्रहण किया गया है। यहा तक की बाद में साहित्य और कला में प्रतीकवाद का आर्विभाव हुआ। प्रतीक में कहीं गई बात बिम्बों की समानता पर आधारित होती है । प्रतीक से मानव मस्तिष्क में किसी वस्तु विचार या भाव का चित्र बनने लगता हैं ।

मराठी के विख्यात लेखक महादेव शास्त्री जोशी ने प्रतीकों के बारे में ठीक ही लिखा है- ''मंत्र दृष्टा ऋषियों के शाश्वत चिन्तन से प्रकट होने वाले आध्यात्मिक आशय को तथा मनुष्य के मन की मधुर मंगल भावना को व्यक्त करने के लिये कुछ विशेष चिन्ह बनाए गये। ये प्रतीक विविध गूढ़ तथा मनोगत अर्थों को प्रकट करते हैं। बाद में इन प्रतीकों को साहित्य, कला और व्यवहार के क्षेत्रों में महत्व प्राप्त हुआ। ये प्रतिक मनुष्य की रसिकता, मंगलकामना तथा अध्यात्मिकता को नवजीवन तथा पोषण देते रहे। यह संस्कृति की तीसरी और श्रेष्ठ व्यवस्था हैं।''[8]

आदिम मानव ने अपने प्रारंभिक विकास से ही, प्रतीकों की खोज शुरु कर दी थी। आज भी आदिम समुदायों में ऐसे प्रतीक अनेक तंत्र-मंत्र, झाड़ फूंक और देवी देवताओ में मिलते हैं। सारत: प्रतीक, भाव और तर्क की वैज्ञानिक अभिव्यक्ति हैं। प्रतीक मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में दिखलाई पड़ते हैं। पौराणिक स्थलों एवं पहाड़ों में तो प्रतीकों की भरमार ही होती हैं।

पौराणिक स्थलों पर प्रतीकों के कुछ पुरानी चीजे मिल जाती है। जैसे- ' देव-स्थलों के में प्रयुक्त प्रतीक मिट्टी के घोड़े-देव-मूर्तियाँ । मिट्टी के बर्तन-पुरानी ईटें, लकड़ी के देवी-देवता, पत्थरों की शौराएं आदि। सामाजिक जीवन में शिष्टाचार तो इन प्रतीकों के द्वारा ही चलता हैं । आने-जाने, उठने-बैठने, बोल-चाल में तथा अन्य व्यवहार में शिष्टाचार प्रतीक के माध्यम से ही होता हैं।''[9]

सारत: सामाजिक जीवन में संस्कारों से सामाजिक नियंत्रण और व्यक्ति तथा समाज का सामन्जस्य बना रहता हैं। आदिम समुदायों की वृक्षों के प्रति उपरोक्त सभी मान्यताओं के लिए ही वनों के साथ उनका सम्बन्ध आदिम समय से सह-अस्तित्व के हिस्से के स्वरूप जीवन में अपना स्थान निर्धारित किया होगा। ऐसी मान्यताओं एवं प्रथाओं के लिए ही भारत भर में आज भी घलनें वनोंमें 500, 700 वर्ष पुराने वृक्ष भीली क्षेत्र में ही सुरक्षित है।

संदर्भ सूची:

1. प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला-डॉ. जगदीश गृप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली। पृ.404
2. लोक प्रतीक- वसंत निरगुणे पृ. 58
3. वही पृ. 58
4. मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृ. 87
5. Theory of Literature cit. P. 246
6. R.C Majoomdar, The Vedic Age, P. 188
7. लोक प्रतीक- वसंत निरगुणे पृ. 69
8. हमारी संस्कृति के प्रतीक,डॉ. महादेव शास्त्री जोशी। सस्ता साहित्य मंडल, 77 कनाट प्लेस, नई दिल्ली पृ. 57
9. लोक प्रतीक- वसन्त निरगुणे पृ. 59

- लेखक - रिर्सच एसोसिएट, ट्राइबल रिर्सच एण्ड ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद (गुजरात) हैं।

श्रद्धांजलि

कला समय पत्रिका परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि

श्री राजुरकर राज
दुष्यंतकुमार पाण्डुलिपि संस्था के संस्थापक, निदेशक
27 सितम्बर 1961-15 फरवरी, 2023

श्री पुष्पेन्द्रपाल सिंह
वरिष्ठ पत्रकार
8 अक्टूबर 1969-07 मार्च, 2023

डॉ. वेदप्रकाश वैदिक
वरिष्ठ पत्रकार, लेखक
30 दिसम्बर 1944-14 मार्च, 2023

कलाएँ साखी हैं नैरंतर्य की

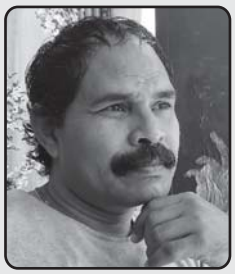

चेतन औदिच्य

कलाकार की अपनी यात्रा होती है और कृतियों की अपनी। कलाकार और कलाकृति की यात्रा में भिन्नता भी है, और अन्योन्याश्रित संबंध भी । कलाकार की यात्रा का एक अवसान-स्थल आता है, जबकि कलाकृतियां सदैव अनंत यात्रा पर रहती हैं। किस तरह से कलाकार अपनी यात्रा पर रहता है और कैसे कलाकृतियां अपना सफर तय करती हैं: यह हम कुछ उदाहरणों द्वारा देखते हैं ।

''ओलंपिया देवी का ही नहीं किसी भी स्त्री का नाम हो सकता है, इसमें आपत्तिजनक क्या है?'' पेरिस के महान कलाकार एडुवर्ड मैने ने 1865 में प्रदर्शित अपनी प्रसिद्ध पेंटिंग 'ओलंपिया' पर यह बयान दिया था। इस बयान पर परंपरावादियों में भयंकर बवाल मच गया था। सच्चाई यह है कि मैने ने रेनेसा चित्रकार तिशियन द्वारा 1534 में बनाए चित्र 'वीनस ऑफअर्बिनो ' से प्रेरित होकर, लगभग वैसी ही 'ओलंपिया' नामक पेंटिंग बनाई, लेकिन मैने के चित्र में सारे संदर्भ बदल गए थे। वीनस ऑफअर्बीनो और 'ओलंपिया' चित्र देखने में एक जैसे लगते हैं, किंतु मैने के चित्र में लेटी हुई विवस्त्र स्त्री, देवी नहीं बल्कि अपने समय की जीवित संभ्रांत महिला के प्रतिरूप में दर्शाई गई है जबकि वीनस एक काल्पनिक देवी के रूप में। तिशियन के चित्र में सेविका के रूप में एक श्वेत महिला है जो खिड़की की ओर झुक रही किसी बालिका को देख रही है। जबकि मैने के चित्र 'ओलंपिया' में एक अश्वेत सेविका ताजा फूलों से भरा पात्र लिए खड़ी है। वह लेटी हुई विवस्त्र स्त्री की ओर देख रही है। यहां आपत्ति यह रही कि कलाकार ने किसी यथार्थ महिला को किसी सेविका के सामने नग्न क्यों दर्शाया! यह परंपरा के विपरीत बात थी। हम दो कृतियों को देख रहे हैं एक तिशियन की और दूसरी मैने की किंतु वास्तविकता यह है कि इन दो कृतियों के होते हुए भी, हमें यह मानना पड़ेगा कि वे दोनों एक ही कृति है, जिसने तीन सौ इकत्तीस वर्षों की अपनी यात्रा पूरी की है। कृति की इस यात्रा के अन्य अर्थ ये भी हैं कि वह अपने समय को पुन: परिभाषित करती है। साथ ही समय के यथार्थ को सामने लाती है। एडुवर्ड मैने को आधुनिक कला का पथ निर्माता कलाकार माना जाता है (सेंजान इसी पथ के कारण आधुनिक कला का जन्मदाता स्वीकारा गया)। हम दूसरे सिरे से देखें तो स्पष्ट होगा कि मैने की कृति आधुनिक कला को रास्ता देती है। वीनस ऑफअर्बिनो, में भी एक महिला लेटी है। एक सेविका खड़ी है और एक पशु निकट है। ओलंपिया में भी महिला, लेटी है सेविका खड़ी है तथा पशु निकट है। परंतु इस चित्र के आंतरिक पक्ष की यात्रा ने सब कुछ बदल दिया है। विवस्त्र महिलाए देवी से वास्तविक महिला के रूप में सेविका श्वेत से अश्वेत निग्रेस छवि में तथा कुत्ता एक काली बिल्ली के प्रतीक में बदल जाता है। एक ही कृति में दो कृतियों का कलेवर अपनी यात्रा पर है ।

डॉ. प्रमोद कुमार सिंह का रेखाचित्र

''मेरा विचार एक ऐसी वस्तु को चुनने का था जो अपनी सुंदरता या कुरूपता से आकर्षित नहीं करे... एक ऐसी कलाकृति जिसका कोई कलाकार नहीं होता... मैं इस कलाकृति द्वारा कलाकार को समाज में दिए गए देवता के समान स्थान से पदच्युत करना चाहता हूँ। रेडीमेड वस्तु का चुनाव आप नहीं करते वह आपको चुनती हैं। जहां अच्छी या बुरी रुचि का प्रश्न आता है, वहां कला नहीं होती। रुचि कला की दुश्मन है।''

ये विचार मार्सेल डुचेंप के हैं। उन्होंने 1917 में एक प्रदर्शनी में एक मूत्र, पात्र को कलाकृति के रूप में प्रदर्शित किया था । उन्होंने उस पर आर, मठ के छद्म नाम से हस्ताक्षर किए। इस कृत्य और कृति

की विश्व भर में बहुत आलोचना हुई । हम इस कलात्मक प्रयोग से देख सकते हैं कि कलाकार की यात्रा कितनी संलिष्ट और भिन्न आयाम की होती है। इसके कोण ये हैं किए, अब बनी बनाई उपयोगी वस्तु भी कला के दायरे में शामिल हो जाती है। कलाकार ही अपनी यात्रा द्वारा उसे वहां लाता है। अब प्रत्यक्ष वास्तविकता के अकल्पित अर्थ सामने आते हैं। भले ही मूल में प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव का तनाव अथवा यंत्रयुग का आगमन इसके कारण रहे हो किंतु यह सच्चाई है कि कलाकार अपनी कलायात्रा में सौंदर्य के तय प्रतिमानों में उपहास, जुगुप्सा, भय, क्रोध, विरोध और हास्य को भी शामिल कर लेता है। कलाकार की यात्रा से कला के सीमा चिन्ह कुछ और फैलाव ले लेते हैं।

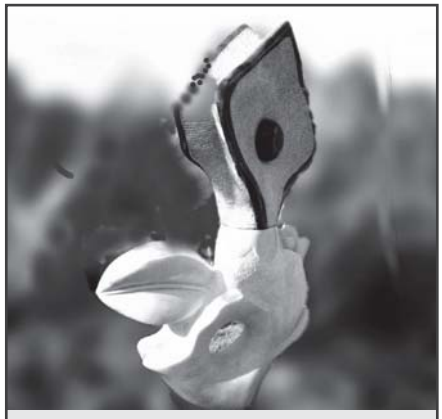

हेमंत जोशी का पाषाण शिल्प

यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात्पुष्पं फलं तथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः।।

कलाकार और कलाकृति की यात्रा के विवेचन का समाहार भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की एक अभिनव कारिका में मिलता है । वे बहुत बारीक संकेत करते हैं कि परिवर्तन होते रहने की स्थिति में भी एक चीज है जो कृति और कलाकार में अपरिवर्तित और अक्षुण्ण रहती है वह है। रस दोनों में यह रस सतत् प्रवाहमान रहता है। इस रस के कारण ही सदियों से कलाओं के प्रति मानव का निरंतर आकर्षण बना रहा है । कृति और कृतिकार में रस अकालाबाध्यम है। फलस्वरूप कृति और कलाकार देश तथा काल से पार हो जाते हैं। कृति और कृतिकार जब भी जहां भी होते हैं। कलात्मक ही होते हैं। वे एक चिर यात्रा में होते हैं।

जैसे किसी वृक्ष का बीज परमात्मा की बनाई एक सूक्ष्म कृति है। बीज अपने आप को मिटाकर पौधा बन जाता है। पौधा एक नवीन कृति है। पौधा परिवर्तित होकर पेड़ बन जाता है। पेड़ अन्य नई कृति है। पेड़ सूख कर लकड़ी में बदल जाता है। लकड़ी अपने आप में फिर नवीन कला रचना है। उस लकड़ी को कोई व्यक्ति या कलाकार फिर से किसी कुर्सी, मूर्ति आदि का भिन्न रूप देता है। वह भिन्न रूप पुनः कृति ही होता है। समकालीन कलाकार उस कुर्सी या मूर्ति को अपनी तरफसे काट, छांट कर, जोड़, तोड़ कर नया आकार देता है। (जैसा कि आपने अनेक बार देखा होगा), अजीब तरह की आकृतियां शिल्प के रूप में प्रदर्शित की जाती हैं वह भी कलाकृति ही होती है। एक समय अंतराल के बाद कोई और व्यक्ति पुनः उसे अपनी तरह का नया आकार देगा यह सिलसिला चलता रहता है। यहां बात का मर्म को यह है कि सबसे पहली कृति 'बीज' के पौधा बनने की प्रक्रिया तथा कुर्सी को जोड़, तोड़ कर बनाई गई नवीन वस्तु बनाने की प्रक्रिया, दोनों ही कला, यात्रा के ही चरण हैं बीज भी और कुर्सी/मूर्ति की जोड़, तोड़ सामग्री से बनाई वस्तु भी। दोनों ही कलाकृतियां हैं। चूंकि कला एक नैरंतर्य है कोई वस्तु या कृति अपनी पहली स्थिति में सामग्री होती है और परिवर्तित स्थिति में कृति। सामग्री का कृति बनने तथा कृति का पुनः सामग्री बनने का क्रम प्रकृति में निरंतर चलता रहता है। यह कला की अद्भुत 'अनवस्था' है। इसके द्वारा हम कला को और व्यापक और उदार दृष्टि से देखने समझने की ओर बढ़तें हैं। सतत् गतिशील कला प्रत्यय के धारक हो पातें हैं।

इस विवेचन का एक सारभूत तथ्य यह भी है कि हम बहुत हड़बड़ी में किसी कलाकृति को बहुत महान अथवा बहुत बेकार कह देते हैं। जबकि वास्तविकता में कोई भी कलाकृति लंबी यात्रा के बाद ही दर्शक के सामने आ पाती है । क्योंकि कला गतिशील प्रत्यय की उपस्थिति है अतः यह मानना होगा कि किसी कृति का मूल्यांकन बहुत फौरी तोर पर नहीं हो सकता। उस पर टिप्पणी से पहले उसके ब्यौरों पर ठहरना होगा उसकी यात्रा के चरणों को समझना होगा उसकी आंतरिक उर्जा और गतिशीलता को पकड़ना होगा तभी हम किसी कृति का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर पाएंगे। शुभमस्तु।

-49-सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर, उदयपुर-313001 (राज.)
मो.: 9602015389

'पद्मपाणि बोधिसत्व' ईसा की आरंभिक शताब्दी में अज्ञात चित्रकार द्वारा बनाया गया अजंता की गुफा चित्र

'पद्मपाणि बोधिसत्व' लक्जेमबर्ग की चित्रकार मिशेल रोका द्वारा सन् 2009 में बनाया गया चित्र

■

गोण्ड संस्कृतिः सृष्टि की अवधारणा और देव-जगत्

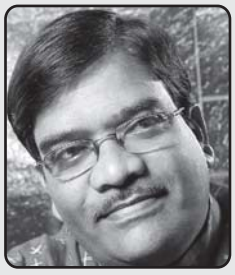

लक्ष्मीनारायण पयोधि

गोण्ड भारत की एक प्रमुख जनजाति है। देश के अनेक राज्यों में इस जनजाति की आबादी है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक यानी, उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना आदि राज्यों में गोण्ड जनजाति की उपस्थिति है। इतिहास में गोण्डवाना साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण कालखण्ड रहा है। गोण्डी मान्यता के अनुसार पंचद्वीपों के समूह गण्डोद्दीप (गोण्डवाना लैंड) के प्रथम अधिपति शंभूसेक (महादेव) थे, जिनकी 88 पीढ़ियों ने इस पर शासन किया। यह ईसा पूर्व 5000 वर्ष तक कुल 10,000 वर्ष का कालखण्ड माना जाता है। इसे तीन भागों में विभक्त किया गया है : (1) शंभू-मूला काल, (2) शंभू-गौरा काल और, (3) शंभू-पार्वती काल।

गोण्ड पुनेम यानी जनजाति समूह यह मानता है कि ''मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो यानी शिव ने इस पंचखंड धरती की रचना की है और वही सृष्टि यानी चराचर जगत का स्वामी है।'' गोण्डी भाषा में यह पारंपरिक स्तुति इसी दर्शन पर आधारित है : ओ ऽऽऽ इद मावा सिरडी सिंगार संयुंग द्विपता सब पेन सर्वशक्तिमान अना सुमरन किया।

पेनतल पुरखाल्क स्यानो-बुढो मुठवल्क पुयनेम, मुठवल्कुन सेलाड गौरा दाई नू मुठवाल कुपार लिंगो, जंगो माई, काली कंकाली ता मावा गोण्डीयाना सगा समाज कोयतुर खण्डाक कोयामूरी इम्मा सारुंग,एरुंग सगा समाज सयमाल अयामीका गुट्टा दीपता कोरता।

नालूंग इदात, नालूंग भिडीते पाडिंग सेरगीते सगा इसकी इमाट माकुन तल्लात पेर्रा आशीर्वाद सीम।

इद बती इदाल, इम्मा गुनना, नरगोदा इदाल इद/निकून बेनाते कुपार लिंगो पुनेम पडापेन सजोरपेन पूजन सुमिरन लाई शुरू आइता।

(हे चराचर जगत के स्वामी! पंचद्वीपों के अधिपति! देवों, पुरखों, गुरु, धर्मगुरु-सबका हम स्मरण करते हैं। हे योगिराज शंभूसेक महादेव/माई गौरा सहित है मुठवा कुपार लिंगो! कोया पुनेम (गोण्ड समुदाय) की जन्मदात्री हे जंगो माई कंकालनि! कोयमूरी द्वीप के उम्मोगुट्टाकोर, सयमाल गुट्टाकोर,अयफोकागुट्टाकोर और येरुगुट्टाकोर खण्डों के चारों वंशों के बारह सगा देवताओं, आशीष दो! तुम सबका स्मरण कर मैं कुपारलिंगो पडापेन आदि देवताओं का आह्वान कर रहा हूँ, साक्षी बनो!)

पहादी पारी कुपारलिंगो को गोण्ड समुदाय अपना आदि गुरु मानता है। इस समुदाय की मान्यता के अनुसार संसार में गोण्डी धर्म के प्रवर्तक हैं पहादी पारी कुपारलिंगो। महाराष्ट्र का कछारगढ़ इनका धाम है। इनका सुमिरण इस प्रकार किया जाता है:

पडापेन मुठवा सुमरण किया सेलाड, गौरा-महादेव नीह लेका नाकुन निओड सेलक-मर्री सिया होना। पहांदी पुंगार कुपारलिंगो निकून अमाट सेंदूर कमका पठड़क अना नावा हिन्दल अना निकून अर्पण कियातोना मावी कोया कोयतूर वंशज ता मुन्ने ताक्तूताना बिनती कियाता।

इमा नावा सुमरन पडापेन मुठवा,
बिनती मावा इमाकेंजा-केंजा।
इम्मा हर्कोटा, मुर्कोटा, पुर्कोटा डा रायाता।
मुर्टोगडोम तरिचोके आयतोडोम।
गुनना सिंधोली बिंदाली कंजाली।
इंगादा इम्मा सुलझे कीमा मावा येरकोली।
पुलशिव रायोर हिर्बानोर मर्री।
कोया पुनेम ता सीतोनी सरदा।
पहांदी पुंगार कुपार जय-जय।
इम्मा केंजा-केंजा मुन्ने मावा।
मुन्ने मावा इम्मा केंजा-केंजा।
ओड मावोड जय परसापेन,सल्लार गांगरो,लिंगो,सुयमेद वेरची।
जय सगापेन पडिंग सेरमी सगा गोंगोनुंग,
अमोट मीकुन सुमरी किया।

(हे हर्कोटा, मुर्कोटा, पुर्कोटा राज्य के अधिपति पुलशिव और माता हिर्वा के सुत कोया पुनेम के आदिगुरु पहांदी पारी कुपारलिंगो! तुम्हें सिन्दूर, हल्दी, अक्षत अर्पित कर हम नमन करते हैं। हे आदिगुरु, कोयावंशियों को समार्ग पर चलने का ज्ञान दो।)

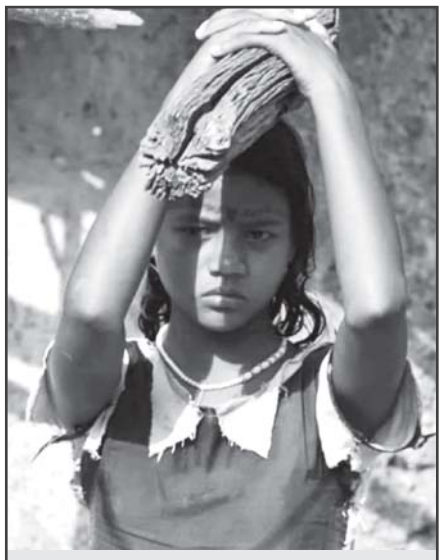

चित्र : गोपीकृष्ण सोनी

कोयतूर शिवस्वरूप लिंगोपेन को समस्त कलाओं का नायक मानते हैं। इसलिये बस्तर में घोटुलगुडी का अधिष्ठाता लिंगोपेन माना जाता है। घोटुल मुरिया किशोर-किशोरियों का कलाकेन्द्र है। मध्य और उत्तर बस्तर(विशेष रूप से कोण्डागाँव-नारायणपुर क्षेत्र) में गाँव के छोर पर घोदटुल बने होते हैं, जहाँ युवा शाम को इकट्ठे होकर देर रात तक नृत्य-संगीत के अभ्यास सहित विभिन्न पारंपरिक क्रीड़ाओं से अपना मनोरंजन करते हैं और भोर होते है घर जाकर अपने दैनिक कार्यों में लग जाते हैं। इस गुड़ी (मंदिर) में लिंगोपेन को गुरु मानकर ही कलाओं का अभ्यास किया जाता है, क्योंकि वही इनका ज्ञाता है। मान्यता के अनुसार लिंगो का अवतरण गुफ़ा में बंद कोयतूर बंधुओं की मुक्ति के लिये लोहागढ़ में हुआ था। बारह भाई गोण्ड किसानी भूलकर आखेट में रम गये थे, इसलिये पशुपति महादेव शिव के श्राप से वे गुफ़ा में बंद हो गये थे। लिंगोपेन के रूप में धवलगिरि क्षेत्र में अवतरित होकर शिव ने ही कोयतूरजनों को गुफ़ा से मुक्त कर उन्हें पूर्ववत कृषिकर्म में प्रवृत्त किया था। बस्तर के सेमुरगाँव में लिंगोपेन का ठान (गुड़ी) है। सोलह खण्ड धरती, नौं खण्ड आकाश, स्वर्ग और पाताल के अधिपति नादस्वरूप शिव के साकार रूप माने जाते हैं लिंगोपेन। मुठवा, रायलिंगो, पहांदी पारी कुपार लिंगो, पडापेन, आँगापेन-सब महादेव के रूप, जो कोया पुनेम के आराध्य हैं, आस्था के प्रतीक हैं।

वेदों में ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों की उपासना है। गोण्ड-परंपरा में भी पार्थिव, जैव और वानस्पतिक तत्वों में ईश्वरीय शक्तियों की उपस्थिति मानी जाती है। इसी मान्यता ने टोटेमवाद यानी गोत्रचिन्हों की पद्धति को जन्म दिया है।

गोण्ड जनजाति समूह के 750 गोत्र माने गये हैं। यह समुदाय मानता है कि गोत्र-व्यवस्था आदि पुरखा यानी मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो द्वारा सृष्टि के जीव-जगत की सुरक्षा के लिये की गयी है। गोत्र-व्यवस्था पुर्वा, सुर्वा, नीलू, भुई, सुक्कुम, नलेज, आरू, मेरू, भस्सूम, पुयार, मुठ, सिल्पा आदि बारह ग्रहों के आधार पर की गयी है। बारह ग्रह यानी बारह देव/और एक-एक देव के निश्चित गोत्र। जैसे-एक से सात देव तक सौ-सौ, यानी सात सौ और आठ से बारह देव तक दस-दस, यानी पचास गोत्र। इस प्रकार बारह देवों के कुल सात सौ पचास गोत्र।

गोण्ड यानी कोया अथवा कोयतूर के मुख्य चार वंश माने गये हैं - सोमवंश, सूर्यवंश, नागवंश और रावणवंश। सूर्य, चन्द्रमा, नाग और रावण इनके प्रमुख आराध्य हैं सूर्य दिवागोंगो कहा जाता है। गोंगो यानी देवता, जैसे- ताराल गोंगो, साराल गोंगो, डाराल गोंगो, जुनाल गोंगो, मुलाल गोंगो, सुकाल गोंगो, सिरमात्र गोंगो, सिरपाल गोंगो, सिरकाल गोंगो, सिरलाल गोंगो आदि। सूर्य दिवा के देवता हैं। ऊर्जा और प्रकाश के स्रोत। चन्द्रमा पड़ापेन शिव के मस्तक की शोभा हैं। नाग शेष हैं, पृथ्वी के धारक, पडापेन के कंठाभरण।

ठाकुरदेव गोण्डों के एक और प्रमुख आराध्य हैं। इस देवता को ग्राम-रक्षक माना जाता है। ये अपनी अर्द्धांगिनी खेरोमाई अथवा खेरमाई के साथ ग्रामवासियों की रक्षा महामारी जैसी भीषण आपदाओं से करते हैं। ग्राम में ये देवी- देवता पूर्व दिशा में वास करते हैं।

रावण को द्रविड़कुल शिरोमणि माना जाता है। कई क्षेत्रों में फाल्गुन पूर्णिमा को खाण्डेरा रावण की पूजा की जाती है। बस्तर में गिद्ध को हल्बी में रावणा कहा जाता है। रावण के पुत्र मेघनाद की पूजा भी खाण्डेराय के रूप में गोण्ड समुदाय द्वारा की जाती है। इस देवता के प्रतीक के लिये पास-पास खड़े सागौन के तीन सीधे वृक्षों को ढूँढा जाता है। पारंपरिक गीतों में मेघनाद की शौर्यगाथा मिलती है। उसके छल से मारे जाने का मार्मिक वर्णन भी इन गीतों में है। छिन्दवाड़ा ज़िले के उमरेठ में चैत्र मास के कृष्णपक्ष की प्रथमा को मेघनाद मेला भरता है।

मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो ने प्रत्येक गोत्र के लिये एक गोत्रचिह्न सहित तीन गोत्रदेव निर्धारित किये हैं, जो एक पशु, एक पक्षी और एक वनस्पति है। इस प्रकार सात सौं पचास गोत्रों द्वारा कुल दो हज़ार दो सौ पचास पशु, पक्षी और वनस्पतियों की गोत्रदेव के रूप में पूजा और उनकी सुरक्षा की जाती है। गोत्रचिन्ह् के रूप में

अंगीकृत पशु-पक्षी, वनस्पति की मृत्यु पर शोक मनाने की भी प्रथा है।

मुठवा रायलिंगो भी कोया पुनेम यानी कोयतूर समुदाय का सामाजिक नियंता माना जाता है। मुठवा रायलिंगो को रावेनपेन्याल के रूप में भी पूजा जाता है।

गोण्ड यानी कोयतूर जनजाति पडापेन, यानी बड़ादेव, यानी शंभू (स्वयंभू) को सृष्टिकर्ता मानते हैं। पडापेन का वास पेनकडा (देवखला) में होता है। पडापेन को कच्चीवेन भी कहा जाता है। इस देवता का प्रतीक कच्चे लोहे से गढ़ा जाता है। गोत्रों के अनुसार छह देव और सात देव की मान्यता के आधार पर लकड़ी में लगने वाले घुँघरुओं की संख्या निर्धारित की जाती है। इनके साथ गोंगरा, पालवा, सल्ला आदि पेनकडा में रखे जाते हैं। हर गोत्र-समूह का अलग पेनकडा होता है। मान्यता के अनुसार साज अर्थात् साजावृक्ष में पडापेन का वास है। इसलिये यह वृक्ष इस जनजाति समूह की आस्था का केन्द्र है। कोयतूर समुदाय द्वारा शंभू महादेव के साथ गवरा दाई अर्थात् गौरी माता की भी पूजा की जाती है। इस जनजाति की मान्यता के अनुसार गवरी दाई सृष्टि की स्वामिनी है, इसलिये कोयतूर की अधिष्ठात्री भी।

गोण्ड जनजाति समूह में पड़ापेन यानी शिव को बूढालपेन भी कहते हैं। रायसेन क्षेत्र में बड़े दाऊ कहा जाता है। यह महादेव शिव के आदिदेव या आदि पुरखा अर्थात् आदिजन यानी आदिवासीजन के प्रथम मूर्धन्य देवता होने का प्रमाण है। बस्तर के भोपालपटनम क्षेत्र में भी येरनेल्ला मुसलोडू वहाँ के कोया, गोट्टे और दोरला समुदायों के सबसे बड़े देवता हैं। उनका स्थान संड्रूपल्ली है। मुसलोडू द्रविड़ियन शब्द है, जो स्थानीय गोण्डी और तेलुगू में बूढ़े के अर्थ में समान रुप से प्रयुक्त होता है। इससे यह पता चलता है कि सम्पूर्ण गोण्ड समुदाय में महादेव शिव को विभिन्न रूपों या नामों से जाना और पूजा जाता है।

गोण्ड जनजाति समूह की मान्यता के अनुसार पडापेन के छह भिन्न स्वरूप हैं, जो परसापेन, मटियापेन, गागरापेन, पालोपेन, सल्लेपेन और चंबरपेन के नाम से पूजे जाते हैं। यह मान्यता अवतारवाद तो नहीं, परंतु अद्वैतववाद की ओर ज़रूर संकेत करती है। गोण्ड स्त्रियाँ शिव अर्थात पड़ापेन के प्रति आस्था व्यक्त करने के लिये प्रतीकस्वरूप मस्तक पर अर्द्धचन्द्र का चिह्न गुदवाती हैं। इस चिह्न को अत्यंत शुभ माना जाता है।

कोया पुनेम के देवकुल में भैंसासुर पशुरक्षक देवता है। इनका ठान (स्थान) पशुशाला में होता है। पशुओं की रक्षा की कामना से खीलामिठुआ देव की पूजा भी साल में दो बार की जाती है। किसी व्यक्ति को रोगमुक्त करने के लिये पाठदेव की पूजा की जाती है। गुनिया इस मंत्र का पाठ कर पाठदेव का आह्वान करता है:

आठ-पाठ खोदराही पाठ बिलपटी पाठ। नीचे चौंतरा ऊँचे हाट। पुरुवा के पुरुवाइन पाठ। रबदा के रबदाइन पाठ। हट्टा के मुरहा देव। खामाबीहर के गोला भारती। बन्दी छोर के बन्द भवानी। शाहकरन घोड़ा लीली। बछेड़ा मा भये असवार। आवासूत के डोर धरे। हाथ में नंगी तेगारण मा पैदल कूदे, देवभूत के भगदड़ मचाये। त्रिया भगैं छत्तिसगढ़ खा। मुर्गा के बाँसत, पौहा के इंकत। तिरिन केछिटकट, दिन के उगत। सतजुग मा देव के बिन्द पकड़े। ऐसे रोगी के बिन्द पकड़कर लान। आव पाठ खड़े हो।

मरादेव मरकाम और परतेती गोत्रों के देवता हैं। मरहीदेवी, मरखीदेवी और मराहीदेवी सदैव इनके साथ होती हैं। मरादेव की सेना में बाबा भी होता है। मरादेव हमेशा सेना के साथ चलते हैं। ये खेत-खलिहान और फ़सलों के रक्षक हैं। किसी पुराने वृक्ष या झिरिया में इनका वास माना जाता है। नागा बैगा-नागा बैगिन के प्रति भी गोण्डों का विश्वास है। गाँव की सीमा पर इनकी अदृश्य उपस्थिति मानकर उनके प्रति आस्था व्यक्त की जाती है। इनका कोई निश्चित ठान (स्थान) नहीं होता है। इन्हें ग्राम के सीमा-रक्षक के रूप में पूजा जाता है। इसी प्रकार मेड़ोपाट देवता की पूजा भी गाँव की सीमा पर की जाती है। भीमालपेन वर्षा का देवता है। बस्तर में भीमुलेपन के नाम से प्रतिष्ठित इस देवता को कृषिकर्म के लिये भी आराध्य माना जाता है।वर्षा न होने पर भीमालेपन को मिट्टी से ढँककर आराधना की जाती है। मान्यता है कि ऐसा करने से भीमालपेन अपने ऊपर की मिट्टी हटाने के लिये मूसलाधार वर्षा करते हैं।

कोया पुनेम द्वारा हरदौल की पूजा हरदूलाला केरूप में की जाती है। गाँव के बाहर किसी पुराने पेड़ के नीचे इस देवता का ठान (चबूतरा) होता है, जिस पर प्रतीकात्मक प्रतिमा स्थापित की जाती है। हरदूलाला को पटेल बाबा भी कहा जाता है। ये ग्राम प्रमुख माने जाते हैं। दीपावली को इस देवता की विशेष पूजा-अर्चना की जाती है। बारात के समय दूल्हा इनका आशीर्वाद लेने अवश्य जाता है। नारायण देव का वास घर के प्रमुख द्वार पर माना जाता है। इस देवता को प्रसतन करने के लिये दरवाज़े के सामने एक गडढा खोदकर लाइट सुरजा का विशेष अनुष्ठान किया जाता है। इसमें 'लाडू' यानी सूअर का विशेष महत्व होता है। अनुष्ठान का मुख्य पुजारी परधान होता है, जो बाना के साथ यह गीत गाकर नारायणदेव का आह्वान करता है:

तरीहरी नाना रे, नारायणदेव।
आजय निवता रे, नारायणदेव।
इगरिन में बैठे रे, नारायणदेव।
इगरिन में चढ़े रे, नारायण देव।
आयगय घुटवा के पास। घुटवा ले चढ़े है नारायणदेव।
आयगय पिडरी के पास।
पिडरी ले चढ़े है नारायणदेव।
आयगय टिघरा के पास।
टिगरा ले चढ़ी-चढ़ी देखे रे, नारायणदेव।
चढ़ गय कम्मर के पास।
कम्मर ले चढ़िके या देखे नारायणदेव।
आयगय छतियन के पास।
छतिया में चढ़के नारायणदेव,
दलदल कपायदे बरुआ ला।
आय जा आसन के पास।
तरीहरी ना...ना....रे, नारायणदेव।

रायसेन क्षेत्र के गोण्ड कारसदेव, गोण्ड बब्बा, दुर्जन दाऊ, दूल्हादेव को मानते हैं।

अनाज भंडारण के पात्रों में गोंडाबाड़ेपेन का वास होता है। अनाज की सुरक्षा और वृद्धि की कामना से इस देवता की पूजा की जाती है। गोंडाबाड़ेपेन को गोंडाबारेदेव भी कहा जाता है। गोचड़ीपेन पशुओं को गोचड़ी कीटों से रक्षा करते हैं। ये कीट पशुओं का खून चूसते हैं। कोपलपेन के ठान को कोपलभाटा कहते हैं। यह गाँव के बाहर होता है। इनकी पूजा दीपावली को की जाती है। दीपावली के तीसरे दिन खिड़कामुठवापेन के साथ मालदियालपेन की पूजा की जाती है।

घर में वैवाहिक प्रसंग होने पर दूल्हादेव-दुल्हिन देव की पूजा की जाती है। दुल्हिनदेवी को नवड़ीपेन (नवोढ़ा) भी कहा जाता है। इन्हें दूल्हादेव के घर ले जाने का विधान है। गाँव की सीमा पर चारों ओर जो पत्थर गाड़े जाते हैं, उन्हें मेंडो ता टाँगी पेन कहा जाता है। इनकी पूजा को मेंडो पूजि कहा जाता है। मात्या बाबा प्रेतबाधा से बचाते हैं।

किसी तंत्रविद्या में निपुण (तांत्रिक) की मृत्यु होने पर उसे घुर्रीदेव के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। घर के देवकुल को बिड़ंदा तंग पेन कहा जाता है। प्रत्येक परिवार के लिये एक देवखोली होती है, जिसमें केवल घर का मुखिया प्रवेशकर सकता है। लिपाई-पुताई भी मुखिया की पत्नी ही कर सकती है।

कार्तिक अमावस्या को चंडीपूजा की जाती है। मंडला ज़िले का चौगान चंडीदेवी का प्रसिद्ध स्थल है। घर के किसी कोने या आँगन में गंगाइन माई का वास होता है। मान्यता के अनुसार यह देवी बाहरी आपदाओं से रक्षा करती है। खेतों की रक्षा करने वाली वनदेवी बंजारिन माई (छाहूर) है। इस देवी की पूजा प्रति वर्ष की जाती है। गाँव के बीचो- बीच किसी वृक्ष के नीचे बूढी भवानी स्थापित होती है। यह रोगों से रक्षा करती है, इसलिये किसी के बीमार पड़ने पर इस देवी की पूजा की जाती है। नवरात्र में विशेष पूजा-अनुष्ठान किया जाता है। पनघटदाई का वास जलाशय के उस स्थान पर होता है, जहाँ स्त्रियाँ पानी भरती हैं। खोखलीदाई खाँसी जैसे रोगों से बचाती है। गांगोदाई कार्तिक अमावस्या, यानी दीपावली को छोटी टोकनी में गांगोदाई को रखकर मड़ई ले जाते हैं।

चिल्कन, चाबन, कोधन, फोड़न, रेगन, फूलन और फुलेश सात बहिनी माता यानी कोया पुनेम की सप्त मातृकाएँ हैं। इन्हें पाताल द्वीप (नागलोक) के राजा निल्हीजल की पुत्रियों के रूप में माना जाता है।

गोण्ड जनजाति समूह में पंचतत्व की अवधारणा है। इसलिये जन्म-संस्कार में पंचबंधान प्रमुख है। शिशु-जन्म के पाँचवें दिन सयटी मनायी जाती है। 'सय' यानी पाँच और 'ठी' यानी दिन। पंचतत्त्व की काया को पाँच सगा मिलकर कमरदोर यानी कमर में पाँच धागे बाँधते हैं। ये धागे पंचतत्त्व के प्रतीक हैं। मृत्यु के बाद यह कमरदोर पुरः पाँच सगाओं द्वारा ही तोड़ा जाता है।

कोया मान्यता के अनुसार मनुष्य के शरीर का निर्माण येर (जल), तोरी (मिट्टी), अद्दी (अग्नि), वरी (हवा) और पोकली (आकाश) आदि पंचतत्त्वों से परसापेन ने किया है। इसलिये इस गण्डजीव की मृत्यु के पश्चात इसके शरीर को धरती में ही दफ़्तनाया जाना चाहिए। इस क्रिया को गोण्ड 'जिवातुन तोरी सियाना' कहते हैं। गड्ढे में मृतक का सिर दक्षिण दिशा में और पैर उत्तर की ओर रखे जाते हैं। मृत्यु के पश्चात प्रत्येक को देवकुल में मिलाने का संस्कार किया जाता है। एक कटोरे में धान के कुछ बीज डालकर हिलाया जाता है और उनकी नोक परस्पर मिल जाने पर यह मान लिया जाता है कि मृतक की देवमिलौनी हो गयी है। सारे पितर देव हैं, इसलिये शुभकार्यों और विभिन्न अनुष्ठानों में उनका आह्वान किया जाता है। कोयतूर पुनर्जन्म में भी विश्वास रखते हैं। यह कितना अद्भुत है कि जीवन और जगत से गहन संलग्नता, तल्लीनता और रागात्मकता के बावजूद गोण्ड जनजाति समूह के लोग मृत्यु की आनुष्ठानिक क्रियाओं को उत्सव की भाँति करते है। सामूहिक भोज के पश्चात

पारंपरिक वाद्यों के उल्लासमय संगीत में अपने नर्तन से मृतक की आत्मा को आनंदित करने का ही तो प्रयास करते हैं। यह आचरण जीवन-मृत्यु के रहस्य को समझकर उन्हें निरपेक्ष भाव से देखने की तत्त्वदृष्टि से भिन्न तो नहीं!

यद्यपि कुछ विद्या कोयतूर शब्द की व्युत्पत्ति पूर्व में गुफ़ावासी होने के कारण अंग्रेज़ी के केव (cave) शब्द से मानते हैं, लेकिन कोयतूर समुदाय के लोग इस शब्द को कोया यानी महुआ शब्द से जोड़कर बताते के हैं। उल्लेखनीय है कि कोयतूर या गोण्ड जनजाति के समाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन में महुए का अत्यधिक महत्व है। महुआ फूल को गोण्डी में कोया पुंगार कहा जाता है। छत्तीसगढ़ के दक्षिण-पश्चिम बस्तर, विशेष रूप से बीजापुर-भोपालपटनम क्षेत्र में निवासरत गोण्ड जनजाति समूह में कोया, गोट्टे, दोरला आदि सम्मिल्नित हैं इसलिये कोया (महुआ) शब्द से कोयतूर शब्द का प्रचलन अधिक सही और तर्कसंगत लगता है।

गोण्ड जनजाति समूह पृथ्वी की उत्पत्ति जल से ही मानता है। एक लम्बी कथा के अनुसार महादेव के आदेश पर कौए ने धरती की खोज करते हुए जम्मोद्वीप की जलहरपुरी जाकर ककरामल (केकड़ा) से प्रार्थना की। ककरामल ने किचवामल (केंचुआ) के पेट से मिट्टी निकालकर कौए को दी। महादेव पडापेन ने वह मिट्टी जल पर छिड़क दी और धरती बन गयी। बची हुई मिट्टी से दो पुतले बनाये,जो कोयतूर समुदाय के आदि पुरखे हैं-पहली दंपति (स्त्री और पुरुष) इस जनजाति की एक मान्यता के अनुसार सृष्टि का वह पहला भूखंड पर्लकोट है। पृथ्वी की उत्पत्ति से सम्बन्धित एक दूसरी मान्यता बस्तर में प्रचलित है: 'संसार में जल ही जल था। उस जल पर एक तूंबा (सूखी लौकी का खोखला पात्र) तैर रहा था। तूंबे में बैठा था, डडुेबुरका कवासी बायले (औरत) के साथ। एकबार कृषि देवता भीमुल पानी में नॉगर (हल) चलाने लगे। जिधर-जिधर नॉगर चलता धरती निकलती जा रही थी और तूंबा जल में तैरकर आगे बढ़ता जा रहा था। एक जगह नाँगर का फल तूंबे से टकरा गया। तूंबा फटा और पहला पुरखा डडुेबुरका कवासी बायले के साथ बाहर निकल आया। यह स्थान बस्तर का पालनार था।

गोण्ड जनजाति समूह के लोग संसार में उपस्थित प्रत्येक रचना को सृष्टिकर्ता पडापेन का अंश मानते हैं एक प्रकार से यही उनका अद्वैत भी है। धरती, वनस्पतियाँ, जलस्त्रोत, पर्वत, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सहित समस्त जीवजगत उनके आराध्य हैं। नाग से लेकर बाघ तक सभी प्रकृति की इकाई के रूप में पूज्य होने के कारण देवता हैं और आस्था के केन्द्र भी। पर्व, त्योहार और अनुष्ठानों के माध्यम से ये उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। हर नयी फ़सल को देवता की कृपा मानकर उन्हें अर्पित करते हैं।

गोण्ड जनजाति के लोग सहज होते हैं और जीवन को उसी भाव से जीते भी हैं। बहुत संचय की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। पदार्थ के प्रति मोह भी उनमें नहीं देखा जाता। वे वर्तमान को जीने में विश्वास करते हैं, भविष्य के प्रति चिंता वे कम ही करते हैं। अपने

किसी कृत्य पर पश्चाताप का भाव भी उनमें नहीं देखा जाता। तत्काल निर्णय लेना और परिणाम के लिये तैयार रहना उनका सहज स्वभाव है।

हम यह मान सकते हैं कि गोण्ड जनजाति समूह की तत्त्वदृष्टि और जीवनदृष्टि इस प्रकार से एकाकार यानी अद्वैत हैं कि उन्हें प्राय: अलग नहीं किया जा सकता है।

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और जनजातीय संस्कृति के अध्येता हैं।)
ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बाग़मुग़लिया, भोपाल-462043
मो. नं. 8319163206

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

संगीत-चिंतन

जनजातीय संस्कृति में संगीत का समावेश

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

हमें यह बताते हुए अत्यन्त खुशी है कि 'कला समय' पत्रिका में कला-अक्ष (चित्रकला) और जनजातीय संस्कृति जैसे महत्वपूर्ण विषयो पर पिछले अंक से दो नये स्तंभों की शुरुआत की है। इस अंक से संगीत विषय पर 'संगीत-चिंतन' स्तंभ में महत्वपूर्ण आलेख संगीत विद्वान तथा संगीत पत्रिका के संपादक डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' अपने स्तंभ के माध्यम से पाठकों, शोधार्थियों की जिज्ञासाओं का समाधान करेंगे।

- संपादक

जन-जातियों को लेकर अध्ययन की दृष्टि से कुछ दशकों पूर्व तक केवल मानव-विज्ञानियों की ही दृष्टि जाती रही। बाद में इस ओर इतिहास, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान और दर्शन-शास्त्र आदि के अध्येताओं ने भी दृष्टिपात् करना प्रारंभ किया। फिर भला जन-जातियों की भाषाओं और उनकी कला विषयक रुचियों के अध्ययन की जिज्ञासा से साहित्य, कला और संगीत के अध्येता ही क्यों पीछे रहते? आज इस दिशा में अनेक शोध भी हो रहे हैं और नव-अध्येताओं का रुझान भी बढ़ रहा है।

यह भी विचारणीय है कि मानव-शास्त्रियों अथवा भाषा-विज्ञानियों द्वारा जनजातियों के कलात्मक सौंदर्य पर तो बहुत ही कम विद्वानों की दृष्टि पड़ी होगी। जिनकी दृष्टि गई भी होगी, उनसे इस तरह के अध्ययन की वैसी कल्पना करनी मुश्किल है जैसी कि एक संगीत का अध्येता कर सकता है। संगीत एक ऐसी कला है जिसमें सौंदर्य ही सौंदर्य बिखरा पड़ा दिखता है। इस दृष्टि से यदि देखें तो जन-जातियों के संगीत को लेकर अध्ययन की अनंत संभावनाएं दृष्टिगत् होती हैं। यद्यपि यह इतना दुरूह कार्य है कि इसके लिए किसी भी अध्येता का मानव-विज्ञान और भाषा-विज्ञान के साथ-साथ संगीत का सैद्धांतिक पक्ष भी मज़बूत होना अत्यंत आवश्यक है। अस्तु। जहां तक आदि-मानव की बात है, वह आज के मानव से पूर्णतया भिन्न था। वह गुफ़ाओं और कंदराओं में रहता था; वृक्षों के ऊपर रहता था। प्रकृति प्रदत्त कंद-मूल, फल आदि खाकर अपना भरण-पोषण करता था। उदर-पूर्ति के लिए जंगली पशुओं को भी मारकर खाता था। आज की तरह उसके पास न तो अपना कोई घर होता था और न ही पहनने के लिए वस्त्र होते थे। खेती आदि करने का भी उसे कोई ज्ञान न था। उसकी स्थिति 'साक्षात्पशु: पुच्छ विषाण हीन:' जैसी थी।

जब मनुष्य के पास लाखों साल तक भी कोई ऐसा ज्ञान नहीं था कि वह हिंसक पशुओं आदि से अपनी रक्षा कर सके तो उसने कितने कष्ट झेले होंगे, इसका अनुमान कर ही रूह कांप जाती है। इन लाखों वर्षों में उसने न जाने कितनी प्राकृतिक आपदाओं को झेला होगा और न जाने कितने वन्य जीवों का आहार बना होगा। उसके पास ऐसे कोई हथियार भी नहीं थे जिनसे वह अपनी रक्षा कर सके। लाखों साल तक अपनी जान को जोखिम में डालकर मानव केवल और केवल भोजन की व्यवस्था में ही जुटा रहा। उस समय पेट की क्षुधा शान्त करना ही उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता थी।

यह सोचकर भी आश्चर्य होता है इतनी दीर्घावधि तक अपरिवर्तित जीवन-पद्धति होने के बावजूद भी वह कैसे अपने अस्तित्त्व की रक्षा कर सका! इसके मूल में सबसे बड़ी बात अपने देश में प्राकृतिक भोजन की कभी भी किसी कमी का न होना है। बिना जीव-हिंसा के भी प्रकृति ने भोजन की अपार संपदा हमें दी हुई है। उसी के सहारे ही मनुष्य अपने को लाखों वर्षों तक जीवित रख सका। धीरे-धीरे उसने अपनी सुरक्षा हेतु पत्थर के अनगढ़ औजार भी बनाए और पशु-पालन करना भी प्रारंभ किया। खेती तथा कुटीर उद्योग के बारे में भी समझ विकसित की। उत्पादन के नए तरीके खोजे और उत्पाद की अदला-बदली कर आपस में एक-दूसरे का सहयोग करना भी सीख लिया।

एक बात और। अपने सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति के लिए अथवा कोई सूचना प्रेषित करने के लिए उसने भाषा के अभाव में न

जाने कितने जतन किए होंगे, यह भी विचारणीय है।

कुछ विद्वानों का मत है कि आदि मानव ने अपने सुख-दुःख की सूचना देने के लिए पहले दीवालों पर कुछ आकृतियां उकेरकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करना प्रारंभ किया होगा। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति को किसी हिंसक पशु ने घायल कर दिया तो पहले तो उसने इशारों से कहानी के रूप में अपनी बात कही होगी। उसके द्वारा अनेक बार समझाने के बाद भी जब किसी को उसकी बात समझ में नहीं आई होगी तो उसने दीवाल पर कहानी के रूप में कुछ चित्र बनाए होंगे और समझाने की कोशिश की होगी कि वह किस प्रकार गुफ़ा से बाहर निकला और अमुक जगह पर अमुक ने हमला कर दिया और वह कैसे अपनी जान बचाकर भागकर आया। इस प्रकार कहानी, चित्र और मूक अभिनय आदि विविध माध्यमों को उसने अपनाया होगा।

अब विचार करते हैं उसकी कलात्मक अभिरुचि के बनने पर। जब उसका पेट का साधन बन गया तो प्रकृति के सौंदर्य को निहारकर उसके मन में भी तरंगें उठी होंगी और अपनी भावनाओं को मूर्त्त रूप देने के लिए एक ओर उसके पैरों में थिरकन पैदा हुई होगी तो दूसरी ओर स्वर और ताल देने के लिए उसने भूमि पर गड्ढा खोदकर उसे पशु-चर्म से आच्छादित कर उसे पीटना शुरू किया होगा और मुख से हर्ष और विषाद के भाव प्रकट करने के लिए विभिन्न ध्वनियों का सहारा लिया होगा। इस प्रकार उसके जीवन में भी नृत्य और संगीत का समावेश हो गया होगा। भावनाओं के संप्रेषण के लिए आज की तरह कोई भाषा तो नहीं थी उसके पास। ध्वनि अपने विचारों के संप्रेषण का एक ऐसा सशक्त माध्यम होती है जिससे कोई भी अपने सुख-दुख आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति सहज ही कर सकता है। आज भी हम देखते हैं कि नवजात या अबोध बच्चा भाषा के अभाव में मुंह से ध्वनि करके ही अपनी भूख आदि के भाव को प्रकट करता है। धीरे-धीरे कलाओं में व्याप्त सौंदर्य की ओर भी उसका आकर्षण बढ़ा और कलात्मक सौंदर्य की भी उसे परख होने लगी। उसने अनेक वाद्य-यंत्रों का भी अविष्कार कर लिया और उनसे उत्पन्न ध्वनियों का जीवन में लाभ भी लिया।

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति से ही होती है। भारतवर्ष विविध संस्कृतियों को अपने अंक में समेटे रहा है। अनेकता में भी एकता इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है। अपनी इसी विशेषता के कारण सदा से ही यह भांति-भांति के रंग-बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित गुलदस्ते की भांति विश्व को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। संगीत भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक प्रमुख अंग है। हो भी क्यों नहीं! संगीत हृदय की भाषा जो है। इसमें मन- मस्तिष्क के साथ ही आत्मा तक को छूने की क्षमता विद्यमान रहती है। प्रकृति के कण-कण में संगीत व्याप्त है। दुनिया के संगीत का अध्ययन कर लीजिए, मात्र सात स्वरों में ही संगीत की दुनिया सिमटी हुई मिलेगी। इसके बावजूद भी यह अखिल ब्रह्माण्ड की भाषा है। इसे न देश और काल के बंधन में बांटा जा सकता है और न भाषा और बोली आदि के बंधन में। इससे तो समस्त चेतन ही क्या, जड़ जगत भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। राग मालकौंस सुनकर पत्थर के पिघलने, दीपक राग सुनकर दीपों के स्वयं प्रज्ज्वलित हो उठने, मेघ मल्हार सुनकर मेघों के बरस जाने जैसे तो तमाम ऐसे किस्से भारतीय संगीत के इतिहास में भरे पड़े हैं जिनसे साधारण जन तक भलीभांति परिचित है। अनेकानेक ऐसे भी सच हैं जिन पर साधारणतया कोई सहज ही विश्वास भी नहीं कर सकता।

हमारे जनजातीय संगीत में विगत सदी तक भी अनेक ऐसे वाद्य-यंत्र प्रयुक्त होते रहे हैं जिनका उपयोग उनके द्वारा कृषि-उत्पादन से लेकर हिंसक पशुओं के शिकार तक में किया जाता रहा है। आज ऐसे बहुत सारे वाद्य-यंत्र हैं जो पूर्णरूप से विलुप्त हो चुके हैं। बहुत से विलुप्ति के कगार पर हैं किंतु समय रहते उनको सुरक्षित अथवा संरक्षित किया जा सकता है।

मैं विगत 52 वर्षों से संगीत का एक अदना-सा सेवक होने और सैकड़ों वाद्य यंत्रों का संग्राहक एवं वादक होने के नाते दावे के साथ कह सकता हूं कि हम जिन अनेक वाद्यों को पाश्चात्य जगत की देन मानते हैं, वे हमारे प्राचीन समय में घर-घर में प्रयोग में आने वाले खेल-खिलौनों के रूप में प्रयुक्त उपकरण मात्र रहे हैं। आज उन पर विदेशी मुलम्मा चढ़ जाने के बाद वे ही हमारे सर चढ़कर बोल रहे हैं।

यह सब अपनी संस्कृति से विमुख होने के कारण हो रहा है। आज हमें मेंहदी रचे हाथों वाली अपनी सांवली-सलौनी माता की गोद से कहीं अधिक भयावह टैटुओं से खचित बाहों वाली पड़ौस की गोरी-चिट्टी विमाता की गोद भाने लगी है। संस्कृति का इससे अधिक पतन और क्या होगा?

आज आवश्यकता है कि भटकी हुई युवा पीढ़ी को हम अपनी महनीय संस्कृति से विमुख होने से बचाएं। इसके लिए उसे अपने स्वर्णिम अतीत का ज्ञान कराना बहुत आवश्यक है। इस दिशा में आदरणीय श्री भँवरलाल श्रीवास जी द्वारा 'कला समय' के इस नवीन स्तंभ 'संगीत चिंतन' का प्रारंभ निश्चय ही संगीत जिज्ञासुओं के साथ-साथ आम पाठक-वर्ग का भी संगीत की ओर रुझान बढ़ाएगा। मेरा प्रयास होगा कि इस हेतु उन्होंने जो दायित्त्व मुझे सौंपा है उसके माध्यम से मैं भारतीय संगीत की उन विशिष्टताओं को उजागर कर सकूं जिससे पाश्चात्य संगीत की ओर उन्मुख हो रही युवा पीढ़ी भटकाव से बच सके।

स्तंभकार लेखक 'संगीत' पत्रिका के संपादक है। मो. 98972 47880

शृंगार और वियोग के अद्‌भुत शायर

अश्वनी कुमार दुबे

शृंगार जीवन मूल राग है। वेद का ऋषि भी जब उषाकाल में सूर्य किरणों से आच्छादित आसमान को निहारता है और वहाँ जब वह बादलों की रंगीन अठखेलियाँ देखता है, तब ज़रूर उसे कोई नारी चेहरा ही याद आया होगा। नीरव वन-उपवन में साँझ का धीरे-धीरे उतरना। फिर एक कालिमा की चादर द्वारा समूची आभा को अपने आप में समा लेना। प्रकृति में कैसा अद्‌भुत आलिंगन है। काली घटाओं का आसमान में उमड़ना-घुमड़ना। सहसा चमकना बिजली का और उस पर तीर-सी चुभन देती ठंडी हवाएँ, ऋषि तुल्य मनुष्य को भी एक अनूठे अहसास से भर देता है। चाँद का रोज़-रोज़ अपने चेहरे को थोड़ा छुपाना। हर रात एक नई चितवन के साथ गगन से ढूँकना, किसे न मोह लेता होगा! फिर एक दिन पूरा चाँद और सर्वत्र फैली उसकी चाँदनी, उसके रूप-सौंदर्य का प्रसाद ही तो है। नाच उठती है, पूरी प्रकृति इस चाँदनी में। कैसे अछूता रहेगा कोई ऋषि? फिर पंद्रह दिनों के बाद अमावस का एक दिन होगा या 15 दिनों की अमावस कही जाएगी? अब ढूँढ़ो उस चाँद को अपने आसपास, अपनी स्मृति में। तब क्यों न फूट पड़ेंगी वेद ऋचाएँ उस रूप सौंदर्य की स्तुति में। न जाने कितनी वेद ऋचाएँ ऐसी संस्तुतियों से भरी पड़ी हैं।

धरती का यह मनुष्य अद्‌भुत कल्पनाशील है। स्त्री सौंदर्य के उच्चतम प्रतिमान उस युग के मनुष्य ने गढ़े। हमारी देवियाँ, जिनके सौंदर्य वर्णन में ऋषियों-मुनियों ने उपमाओं की झड़ी लगा दी। क्या बचा है, कुछ कहने को। परंतु जीवनधारा ठहरती कहाँ है। 'कालिदास' ने अपने शृंगार वर्णन में चमत्कार पैदा कर दिया है। जयदेव के 'गीत गोविंद' से यह ख़ूब फूला-फला। जयदेव तो रससिद्ध कवि हैं। कहते हैं श्रीमद्‌भागवत व्यास जी की अंतिम रचना है। नारद ने कहा था उनसे- 'व्यास, तुम्हारा हृदय सौंदर्य और प्रेम से आप्लावित नहीं है इसलिए प्रेम को गाओ, रस को सिद्ध करो तब हो सकेगी तुम्हारी मुक्ति।' भागवत का दशम् स्कंध उस आग्रह की

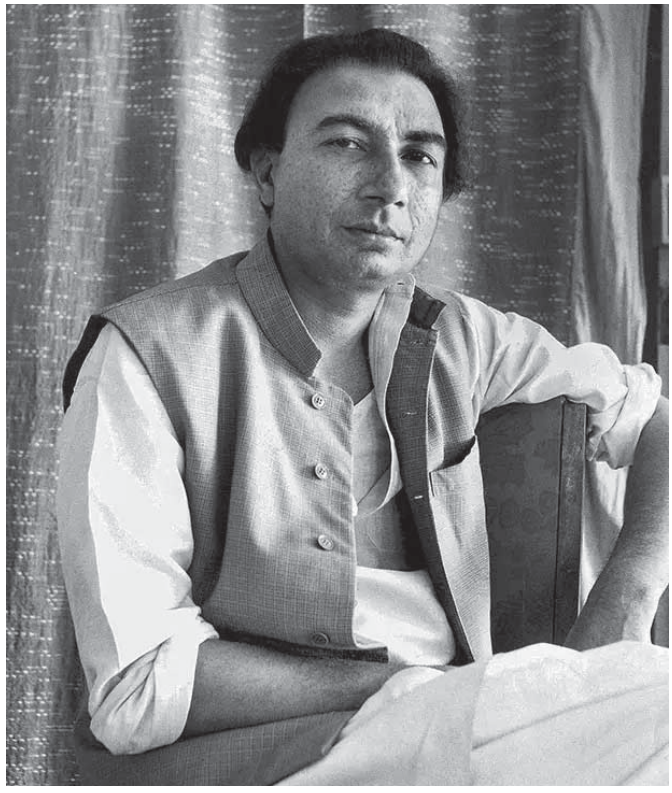

परिणति है। रास-रंग है वहाँ परंतु राधा कहाँ? राधा अपने पूरे सौंदर्य वैभव के साथ सबसे पहले 'गीत गोविंद' में आईं और वह काव्य अमर हो गया।

हिंदी में शृंगार की यह अनंत परंपरा रीतिकाल से लेकर अब तक विविध रूपों में दिखाई देती है। साहिर इससे अछूते नहीं हैं। जीवन बहुत संघर्षपूर्ण रहा साहिर का। परंतु जीवन का मूल राग तो उनके हृदय में भी तरंगित हो रहा था। तीन अवसर आए उनके जीवन में इस राग को खुलकर गाने के। कॉलेज के दिनों में महिन्दर प्रेम चौधरी नामक युवती से उनका लगाव हुआ। कई अशआर लिखे उन्होंने उसकी शान में। फिर गरीबी, अमीरी की अड़चनें। सामाजिक ऊँच-नीच की दीवारें। बाद में महिन्दर की असामयिक मृत्यु। तत्पश्चात् ईशर कौर से लगाव, इश्क़ की हद तक। यह प्रेम भी असफल हुआ। बहुत बाद में अमृता प्रीतम उनके जीवन में आईं। यहाँ भी मजहब के अड़ंगे और अमृता प्रीतम की पारिवारिक पृष्ठभूमि

ने उन्हें मिलने नहीं दिया। परंतु साहिर की कल्पनाएँ कुंठित नहीं हुईं। उन्होंने ख़ूब प्रेम गीत गाए और अद्‌भुत सौंदर्य वर्णन किया अपनी शायरी में। उनकी प्रारंभिक मन:स्थिति इस लाजवाब गीत में, जो संवादात्मक है, देखिए किस तरह उभरकर आई है–

तेरे प्यार का आसरा चाहता हूँ
वफ़ा कर रहा हूँ वफ़ा चाहता हूँ
हसीनों से अहद-ए-वफ़ा चाहते हो
बड़े नासमझ हो ये क्या चाहते हो

एक प्रसिद्ध शेर है, 'कौन कहता है, मोहब्बत की जुबां होती है। ये हक़ीक़त तो निगाहों से बयां होती है।' प्रेम व्यवहार में आँखों का अपना महत्त्व है। सबसे यही तो रिश्ता कायम करती हैं। कितने कवियों-लेखकों ने आँखों को अलग-अलग ढंग से देखा है। सूर के नेत्र तो अंधे होकर भी खंजन नयन हैं। साहिर का अपना अंदाज़ है, आँखों के वर्णन का। वे कभी नहीं भूलते प्रेमासिक्त आँखें। कहते हैं वे– 'भूल सकता है भला कौन ये प्यारी आँखें/रंग में डूबी हुई नींद से भारी आँखें।'

साहिर के लिए प्रेम एक ख़्वाब है, ख़याल है। वे इसे भीतर ही भीतर जीते हैं। कहीं अंदर गहरे में सागर की लहरों की मानिंद अपने मचलते एहसास को वे इस तरह अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं–

जैसे मुद्दत से यूँ ही साथ रहा हो अपना
जैसे अब की नहीं सदियों की शनासाई हो
काँपते होंठों से रुकती हुई आवाज़ के साथ
जो मेरे दिल में थी वो बात कही है तुम ने

और वह प्रसिद्ध गीत भी कुछ इसी अंदाज़ में है–

कभी कभी मेरे दिल में, ख़याल आता है
के जैसे तुझको बनाया गया है मेरे लिये
तू अब से पहले सितारों में बस रही थी कहीं
तुझे ज़मीं पे बुलाया गया है मेरे लिये

बार-बार वे तलाशते हैं अपने भीतर कि यह चेहरा उन्हें क्यों अच्छा लगता है ? क्यों खींचता है उन्हें अपनी ओर ? तब कह उठते हैं वे–

मेरा तुझ से है पहले का नाता कोई
यूँ ही नहीं दिल लुभाता कोई
जाने तू या जाने न
माने तू या माने न

फिर लौट-लौटकर मन वहीं आता है। याद करता है कुछ और कह उठता है–

मैंने शायद तुम्हें पहले भी कहीं देखा है
अजनबी सी हो मगर ग़ैर नहीं लगती हो
वहम से भी जो हो नाज़ुक वो यकीं लगती हो
लाख बना लो महबूबा की तस्वीर पर उससे कहाँ मन भरता है-
जो बात तुझमें है तेरी तस्वीर में नहीं, तस्वीर में नहीं
रंगों में तेरा अक्स ढला, तू न ढल सकी
दुनिया में कोई चीज़ नहीं है तेरी तरह

साहिर के शृंगारित गीतों में कई गीत अविस्मरणीय हैं। बरसते पानी में सदा सद्य:स्नाता नायिका के सौंदर्य का चित्रण 'बरसात की एक रात' के इस गीत में अद्‌भुत है। इस गीत में साहिर ने सौंदर्य, अल्हड़ता, बाँकपन और बरसात को मिलाकर जो शब्दचित्र बनाया है, वह सुनने में और 'मधुबाला' जैसी नायिका पर फ़िल्मांकन में देखते हुए बेमिसाल प्रभाव छोड़ता है। यदि आपने फ़िल्म न भी देखी हो तो भी इस गीत को पढ़कर/सुनकर ही इसकी चित्रात्मकता पर मुग्ध हुआ जा सकता है। ज़रा साहिर की शब्द योजना देखिए–

ज़िंदगी भर नहीं भूलेगी वो बरसात की रात
एक अनजान हसीना से मुलाक़ात की रात
हाय वो रेशमी ज़ुल्फ़ों से बरसता पानी
फूल से गालों पे रुकने को तरसता पानी
दिल में तूफ़ान उठाते हुए हालात की रात

आगे तो साहिर अपनी महबूबा के लिए यहाँ तक कह देते हैं कि– 'यूँ तो हमने लाख हसीं देखे हैं/तुमसा नहीं देखा/हाँ, तुमसा नहीं देखा।'

ग़ालिब कहते हैं न– 'उनके आने से जो आ जाती है मुँह पर रौनक, वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।' पर उनके आने से चेहरे पर रौनक तो आ ही जाती है। बीमार के हाल अच्छे हों न हों। साहिर इससे आगे बढ़कर कहते हैं। उनका आना तो दूर। उनका ख़याल भर आ जाने से चेहरे की रंगत बदलने लगती है। इस गीत में यह भाव देखिए कितना खूबसूरत बन पड़ा है–

चेहरे पे ख़ुशी छा जाती है आँखों में सुरूर आ जाता है
जब तुम मुझे अपना कहते हो अपने पे ग़ुरूर आ जाता है
महफ़िल में तुम्हारे आने से हर चीज़ पे नूर आ जाता है
मरने का सलीका आते ही जीने का शऊर आ जाता है
ये कौन आया ?
के मेरे दिल की दुनिया में बहार आई
ये कौन आया ?

उम्र से शृंगार का क्या ताल्लुक़ ? भाव जगत् में बुढ़ापा नहीं आता। सचमुच सौंदर्यानुभूति से उम्र का कोई ताल्लुक़ नहीं। एहसास तो सदा ताज़े हैं, उनका प्रभाव तो भीतर है। बाहर होगी उम्र कोई भी, उससे क्या फ़र्क़ पड़ता है। यह तो अंतर्मन का व्यवहार है। इस सत्य को साहिर कितने अलग अंदाज़ में उद्घाटित करते हैं 'वक़्त' के इस गीत में–

ऐ मेरी ज़ोहरा-ज़बीं
तुझे मालूम नहीं
तू अभी तक है हसीं
और मैं जवाँ
तुझपे क़ुरबान मेरी जान मेरी जान

प्रेम का व्यवहार सदा द्विपक्षीय है। प्रेमी और प्रेमिका। दोनों पक्षों का अपना मानसिक संसार है। आप प्रेम निवेदन करते हैं, यदि वह स्वीकार हुआ तो प्रेम व्यवहार बढ़ेगा। न हुआ तो ? यह स्वतंत्रता है, दोनों पक्षों की। कई तरह की बाधाएँ हैं, मुश्किलें हैं जिन्हें पार करने का दायित्व दोनों पर है। अकसर बीच में रस्ते बदल जाते हैं या कोई शुरू से अलग मार्ग पर चल पड़ता है। उस एकाकी प्रेम की अपनी व्यथा है। इन मन:स्थितियों के वर्णन भी साहिर की शायरी में ख़ूब मिलते हैं। सबसे पहले तो इज़हार की बात। साहिर की अपनी शैली है प्रेम निवेदन की– 'सलाम-ए-हसरत क़ुबूल कर लो/मेरी मुहब्बत क़ुबूल कर लो/ग़म-ए-जुदाई है जानलेवा/ये इक हक़ीकत क़ुबूल कर लो।'

इज़हार और इनकार दोनों देखिए। कारण हैं इनके। ज़माने में एक प्यार ही तो सब कुछ नहीं हो सकता। और भी ग़म है, ज़माने में मोहब्बत के सिवा। जब पहले से ही ज़िंदगी में इतने ग़म हैं तब प्यार भी कहीं एक और ग़म न ले आए। संदेहों से घिरा है मन। विचारों का ऐसा घटाटोप होता है अकसर। देखिए, साहिर इसे किस तरह व्यक्त करते हैं–

दिन हैं बहार के तेरे मेरे इक़रार के
दिल के सहारे आ जा प्यार करें
दुश्मन हैं प्यार के जब लाखों ग़म संसार के
दिल के सहारे कैसे प्यार करें ?

साहिर बार-बार प्रेम निवेदन करते हैं। यह निवेदन स्वीकार हो न हो ? उनका निवेदन, उनका आग्रह तुम्हारे मुक़द्दर की बात नहीं करता। वह तो अपनी तक़दीर का बखान कर रहा है। कितने सरल शब्दों में साहिर कहते हैं अपनी बात– 'तुम अगर साथ देने का वादा करो/मैं यूँ ही मस्त नग़मे लुटाता रहूँ।'

नहीं हुआ इश्क़-ए-इज़हार कबूल, जैसा कि साहिर की ज़िंदगी में नहीं हुआ। परंतु ज़िंदगी ख़त्म थोड़े ही हो जाती है। वह तो चलती ही रहती है। कोई बात नहीं। साहिर किसी भी हालत में ज़िंदगी का दामन छोड़ने के पक्ष में नहीं हैं। चाहे जितनी भी मुश्किलें आएँ, वे झेलेंगे। नहीं किया तुमने मेरा प्रेम निवेदन स्वीकार। कोई बात नहीं। कम से कम मेरी मोहब्बत का इम्तहान तो लो। साहिर लिखते हैं–

तुम एक बार मुहब्बत का इम्तहान तो लो
मेरे जुनूं मेरी वहशत का इम्तहान तो लो
मेरी वफ़ा की हक़ीक़त का इम्तहान तो लो
यूँ ही सही मेरी चाहत का इम्तहान तो लो

ठीक है हम रहती दुनिया तक तुम्हारा इंतज़ार करेंगे। कहते हैं, कयामत के समय सब मिलते हैं। ख़ुदा न्याय करता है, उस दिन। हम उस आख़िरी दिन तक तुम्हारा इंतज़ार करेंगे। गहन आशावाद है, इन पंक्तियों में हम इंतज़ार करेंगे...

और यदि तुमने वादा किया है तो तुम्हें आना ही पड़ेगा। फिर कोई ज़मीनी या आसमानी बाधा तुम्हें रोक नहीं सकती। एक प्रेमी की कैसी पुकार है, इस गीत में जो काल के उस पार जाकर अपनी प्रेमिका से वादा निभाने के लिए कहती है। पराकाष्ठा है, यह प्रेम की। विश्वास की। साहिर के शब्द देखिए–

जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा
रोके ज़माना चाहे रोके ख़ुदाई तुमको आना पड़ेगा

इस प्रकार साहिर के काव्य में शृंगार, प्रेम, इंतज़ार, इज़हार और एक पक्षीय लगाव के अनेकानेक शब्दचित्र हैं। साहिर ने इन तस्वीरों में अपनी कल्पना से शोख और चटक रंग भरे हैं, जो आज तक धुँधले नहीं हुए और आगे सदियों तक नहीं होंगे। साहिर का शृंगार वर्णन जहाँ कल्पना की अप्रतिम उड़ान है वहीं उनका वियोग ठोस यथार्थवाद। जीवन का पहला प्रेम सफल न हो सका, वहाँ दौलत आड़े आई। वही दौलत, जिसे वे अपनी माँ के साथ लात मारकर आए थे। साहिर प्रतिभा के धनी थे और उन्हें अपनी सामर्थ्य पर इतना तो भरोसा था कि वे अपनी माँ एवं भावी परिवार का भरण-पोषण अच्छी तरह कर सकते थे। शायद यह भरोसा उनकी पहली प्रेयसी महिन्दर प्रेम चौधरी को भी रहा होगा। परंतु न जाने क्यों हर लड़की के माँ-बाप अपनी बेटी को अधिकतम मिल जाए, इस आकांक्षा से भरे होते हैं। परंतु ऐसा होता नहीं है और हो भी जाए तो अतिरिक्त धन जीवन में दुख के सिवा कुछ नहीं लाता। साहिर का पहला प्रेम, प्रेम चौधरी के परिवार वालों की धनाकांक्षा की भेंट चढ़

गया। फिर प्रेम चौधरी को उसके परिवार वाले कहाँ सुखी कर पाए। युवा अवस्था में ही उसकी मौत हुई। तब साहिर ने एक लंबी नज़्म लिखी 'मरघट'। उर्दू अदब की दुनिया में यह 'नज़्म' बहुत प्रसिद्ध है।

साहिर अपने पिता की दौलत के बल पर, जिसके वे एकमात्र वारिस थे, अपनी प्रेमिका के लिए ताजमहल जैसा कुछ बनवा सकते थे। पर अनीति और शोषण के आधार पर जोड़ी गई दौलत से प्रेम स्मारक जैसी कोई पवित्र इमारत बन सकती है कभी? यह प्रश्न उनके मन में हमेशा उमड़ता-घुमड़ता रहा और उन्होंने लिखा- 'एक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल, हम ग़रीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मज़ाक़।'

साहिर सफलतापूर्वक अपना जीवनयापन कर रहे थे। अपनी माँ की ज़िम्मेदारी भी जीवन भर वहन करते हैं वे। फिर अतिरिक्त, बहुत अतिरिक्त पैसा जमा करने का आग्रह क्यों? उन्हें कबीर का फ़लसफ़ा पसंद है- 'साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाए। मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।' कबीर तो एक पद में यह भी कह देते हैं- 'जो चाहोगे चूपड़ी, बहुत करोगे पाप।' यहाँ धनकुबेर बनने की यह अनिवार्य शर्त है कि कुछ अमानवीय करना होगा। वह सब साहिर से भला कैसे होता? उनसे नहीं हुआ, इसलिए दो प्रेम असफल हुए। मज़हब की दीवारें अलग से। साहिर शुरू से किसी संगठित धर्म को न मानते थे। वे तो सच्चे अर्थों में मानवतावादी रहे, यह बात कम से कम अमृता प्रीतम तो भलीभाँति जानती थीं। न समझते रहे हों उनके परिवार वाले। अब तक साहिर अच्छी तरह जान चुके थे- 'ज़िंदगी सिर्फ़ मोहब्बत नहीं कुछ और भी है।'

साहिर की पूरी ज़िंदगी इसी 'कुछ और' की तलाश है। उन्होंने अपनी ज़िंदगी में जो भोगा, पाया और महसूस किया, वैसा ही लिखा। वे कहते हैं एक जगह-

अश्कों से जो पाया है वो गीतों में दिया है
इस पर भी सुना है कि ज़माने को गिला है
जो तार से निकली है वो धुन सब ने सुनी है
जो साज़ पे गुज़री है वो किस दिल को पता है
हम फूल हैं औरों के लिए लाए हैं ख़ुशबू
अपने लिए ले दे के बस इक दाग़ मिला है

ये ग़रीबी और अमीरी की दीवार उन्हें जीवन भर सालती रही। वे अपने गीतों में खुलकर इस विभेद का विरोध करते हैं और दुनिया को समझाते फिरते हैं कि आदमी वह भर नहीं है, जो दिखता है बाहर से। भीतर एक और दुनिया है। वहाँ नहीं है कोई दीवार; न धन की, न मज़हब की। साहिर लिखते हैं- 'आप दौलत के तराज़ू में दिलों को तौलें/हम मोहब्बत से मोहब्बत का सिला देते हैं।'

दौलत वालों की दुनिया भी साहिर ने ख़ूब देखी है। उनका व्यवहार। उनके विचार और व्यापार के खेल को साहिर अच्छी तरह जानते हैं। कैसा दोगलापन है उनकी ज़िंदगी में। पर जीना पड़ता है, कभी उनके साथ पागल कहलाकर। साहिर की पीड़ा इन शब्दों में देखिए-

तुमने ढूँढ़ी सुख की दौलत, मैंने पाला ग़म का रोग
कैसे बनता कैसे निभता, ये रिश्ता और ये संजोग
मैंने दिल को दिल से तोला, तुमने माँगे प्यार के दाम
तुम दुनिया को बेहतर समझे, मैं पागल ख़ारख़ार हुआ

एक गीत में और कहते हैं वे-

सोने-चाँदी में तुलता हो जहाँ दिलों का प्यार
आँसू भी बेकार वहाँ पर आहें भी बेकार
दुनिया के बाज़ार में आख़िर चाहत भी व्यापार बनी
तेरे दिल से उनके दिल तक चाँदी की दीवार बनी

साहिर का वियोग वर्णन, उनका भोगा हुआ यथार्थ है। वे अपनी ही व्यथा-कथा कई जगह, कई रूपों में गाते हैं। इस गीत में उनका करुण क्रंदन देखिए- 'जाने वो कैसे लोग थे जिनके/प्यार को प्यार मिला/हमने तो जब कलियाँ माँगी।'

आगे इसी भाव का एक और प्रसिद्ध गीत ये देखिए- 'मैंने चाँद और सितारों की तमन्ना की थी, मुझको रातों की सियाही के सिवा कुछ न मिला।'

न जाने कितने गीतों में साहिर ने अपने वियोग पक्ष को विविध रूपों में व्यक्त किया है। मैंने शुरू में ही कहा कि शृंगार पक्ष तो साहिर की भावनात्मक उड़ान का शिखर है, परंतु उनका वियोग पक्ष, जो उन्होंने अंतिम साँस तक जिया, वह अत्यंत मार्मिक है। उनके शृंगार पक्ष की व्याख्या करनी हो तो यह लाइन काफ़ी है- 'कभी-कभी मेरे दिल में ख़याल आता है...।' दिल में ख़याल आता है, यह ख़याल ही तो उनके सारे शृंगारित गीतों में फैला हुआ है। अपने जादुई करिश्मे के साथ। यह ख़याल बहुत मधुर है। सम्मोहक है। परंतु सिर्फ़ ख़याल के सहारे ज़िंदगी तो नहीं बिताई जा सकती है। वे बार-बार जीवन के यथार्थ से टकराते हैं और समझाते हैं ख़ुद को और ज़माने को भी- 'जीवन के सफ़र में राही, मिलते हैं बिछड़ जाने को/और दे जाते हैं यादें, तनहाई में तड़पाने को।'

रहीम की एक उक्ति है- 'रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोए।' साहिर इस सत्य को भलीभाँति जानते हैं। इसलिए उन्हें अपने लिए, ज़माने से कोई अपेक्षा नहीं है। वे तो अपने गीतों से अपने

आप को ही समझाते हैं। लोगों का दर्द उनके दर्द से मिल जाए, यह अलग बात है। फिर इस ज़माने में किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता, तो ऐसे बहुसंख्यक लोगों के लिए साहिर के गीत अपने गीत हो जाते हैं। उन गीतों में लोग ख़ुद को ढूँढ़ लेते हैं। पर साहिर तो निज मन की व्यथा अपने ही मन में गोय रहे हैं। कुछ इस तरह– 'लाख यहाँ झोली फैला ले/कुछ नहीं देंगे ये जग वाले/पत्थर के दिल मोम न होंगे/चाहे जितना नीर बहा ले।'

साहिर हमेशा ज़िंदगी में विश्वास रखते हैं और वह सदा आगे बढ़ती रहती है। जो बात ज़िंदगी की गति को अवरुद्ध करे, उसे छोड़ना ही अच्छा। साहिर इस ख़याल को कितनी अच्छी तरह से व्यक्त करते हैं– 'तआरूफ़ रोग हो जाए, तो उसको भूलना बेहतर, ताल्लुक़ बोझ बन जाए तो उसको छोड़ना अच्छा। वो अफ़साना जिसे अंजाम तक लाना न हो मुमकिन/उसे इक ख़ूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना अच्छा।' जान–पहचान है अच्छी। ख़ूब साथ रहे हैं दोनों। परंतु अब एक–दूसरे को पहचानना संभव नहीं है तो साहिर स्पष्ट करते हैं– 'चलो एक बार फिर से अजनबी बन जाएँ हम दोनों।'

तमाम अनुभवों से गुज़रते हुए साहिर ठोस यथार्थ के धरातल पर तल्ख होकर लिखते हैं–

किताबों में छपते हैं, चाहत के क़िस्से
हक़ीक़त की दुनिया में चाहत नहीं
ज़माने के बाज़ार में, ये वो शह है
के जिसकी किसी को, ज़रूरत नहीं है

जीवन में कितने झंझावात हैं और आदमी का मन एक कँपती हुई लौ। इस लौ को बचाना है विश्वास के सहारे। वह विश्वास कवच साहिर के पास है। वे कहते हैं–

दिल जले तो जले, ग़म पले तो पले
किसी की न सुन, गाये जा

स्वयं साहिर किस दुनिया से निकलकर आए और अदब की किस ऊँचाई पर पहुँचे। समझौता कर लिया होता तो एक ज़मींदार की मौत मरते, जैसे उनके पिता मर गए। उनके पिता के नाम का उल्लेख भी सिर्फ़ साहिर के बाप होने के कारण है। कितने ज़मींदार और दौलतमंद न रहे इस जहां में, कौन नाम लेता है उनका, उनके नौकर–चाकर तक नहीं। कितनी नाकामयाबियों के बाद भी कितने लबरेज हैं, वे ज़िंदगी के प्रति। लिखते हैं वे–

शरमाना कैसा, घबराना कैसा
जीने से पहले, मर जाना कैसा

इस प्रकार साहिर का संयोग और वियोग का काव्य, ख़याल से यथार्थ तक की यात्रा है। ख़याल भी उनके गहरे हैं। बेमिसाल हैं। वास्तविक जीवन में उन्हें अपनी नायिका का सान्निध्य भले ही न मिला हो, परंतु ख़यालों की उनकी नायिका अप्रतिम सुंदर है। संस्कृत साहित्य से लेकर आधुनिक उर्दू–हिंदी साहित्य तक सौंदर्य के प्रतिमान बिखरे पड़े हैं, लोग उन्हें पढ़कर आह्लादित होते हैं। साहिर की नायिका सुंदर तो है ही, इतनी कि– 'तुम हुस्न की ख़ुद एक दुनिया हो, शायद ये तुम्हें मालूम नहीं।' साथ ही वह ज़बरदस्त साहसी और कर्तव्यपरायण भी है। तब तो वह कहती है– 'तुम अपना रंजो–गम अपनी परेशानी मुझे दे दो।' साहिर के शृंगार वर्णन में सिर्फ़ आलंकारिक सौंदर्य, कसमे–वादे और नायिका का वैसा कोमलांगी स्पर्श नहीं है, जैसा कि उस समय के फ़िल्मी गीतों में दिखाई देता है। वे तो अपनी नायिका से कह देते हैं– 'इतनी नाजुक न बनो...।' नाजुकता और कोमलांगी होना यहाँ शृंगार वर्णन की विशेषता बनकर नहीं उभरता। साहिर का बार–बार अपनी नायिका से आग्रह है, वह साहसी बने। यहाँ साहस और आत्मविश्वास नारी में एक नए सौंदर्य का प्रतिमान बनकर उभरता है। साहिर की नायिका ख़याली ही सही परंतु अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह सजग है। वह तो साफ़–साफ़ कहती है– 'ग़ैरों के थिरकते शानों पर, ये हाथ गवारा कैसे करें/हर बात गवारा है लेकिन, ये बात गवारा कैसे करें?' इस प्रकार साहिर अपनी नायिका में सौंदर्य के नए प्रतिमान गढ़ते हैं, जो समकालीन शायरों–गीतकारों से कहीं आगे हैं।

वहीं उनका वियोग वर्ण है, पूरी तरह यथार्थवादी। आदमी जो चाहता है, वह होता कहाँ है। परंतु वह चाहना बंद तो नहीं कर देता और ऐसी चाहत बंद भी नहीं होनी चाहिए भले ही यथार्थ कितना ही कटु क्यों न हो। सचमुच यथार्थ बहुत आहत करता है, आदमी के मन को। पंत ने यूँ ही नहीं कहा– 'आह से उपजा होगा गाना।' वियोग का वह गान, जो साहिर की आह से उपजा है फ़िल्म गीत–संगीत की अनमोल धरोहर है– 'तेरे प्यार का आसरा चाहता हूँ...' और 'जाने वो कैसे लोग थे, जिनके प्यार को प्यार मिला...।'

वे निराश नहीं हैं। जानते हैं, कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता। जो चाहा, जो हुआ और जो हो रहा है उसका सटीक चित्रण हमें साहिर की शायरी में दिखाई देता है। वे कह तो रहे साफ़–साफ़– 'दिल से भुला के रुसवाइयों को/जन्नत बना ले तन्हाइयों को...' और 'एक रास्ता है, ज़िंदगी, जो थम गए तो कुछ नहीं...।'

शेष अगले अंक में...

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार है। संपर्क– 326 बी/आ महालक्ष्मी नगर, इंदौर–452010 (म.प्र.), मो. 9425167003

■

भाषा, साहित्य व कला पर आधारित 'मेला' आयोजित

मेला की 'रूह' (राजस्थानी, उर्दू, हिंदी) ने दी आयोजन को नई ऊंचाइयाँ
स्थानीय साहित्य-कला प्रेमियों को मिला बड़े साहित्यकारों-कलाकारों से रूबरू होने का मौका

उदयपुर। उदयपुर में 23 से 26 मार्च तक एक विशिष्ट आयोजन 'मेला' (मर्जिंग एलिमेंट्स ऑफ लेंग्वेज, लिटरेचर एंड आर्ट) आयोजित किया गया। तीन भाषाओं का साहित्य, संगीत, नाटक, चित्रकला, शिल्पकला एक ही छत के नीचे विभिन्न सत्रों में स्थानीय साहित्य-कला प्रेमियों को देखने-सुनने का अवसर मिला। देशभर के विभिन्न हिस्सों से आये साहित्यकारों-कलाकारों से मिलने और उनके अनुभव जानने का भी यह माध्यम बना। मौलिक ऑर्गेनाइजेशन ऑफ क्रिएटिव एंड परफॉर्मिंग आर्ट तथा मोहनलाल सुखाड़िया विवि के राजस्थानी विभाग के साझे में राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर, उर्दू अकादमी व उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, पटियाला के सहयोग से यह आयोजन हुआ।

प्रथम दिवस: 'प्रणवीर प्रताप' के मंचन से शुभारम्भ

मौलिक के संस्थापक शिवराज सोनवाल ने बताया कि चार दिवसीय आयोजन 'मेला' का शुभारम्भ शूरवीर राणा प्रताप के जीवन की मुख्य घटनाओं पर आधारित नाटक 'प्रणवीर प्रताप' के सुखाड़िया विवि के विवेकानंद सभागार में मंचन से हुआ।

'जब तक अपनी मातृभूमि के समूचे भाग को मुगलों के चंगुल मुक्त नहीं करवा दूं, कोई राजसी सुविधा नहीं भोगूंगा।' शूरवीर प्रताप ने जब दृढता के साथ तलवार की मूठ पर हाथ रखते हुए रक्ताभ आंखों से आकाश की ओर देखकर यह कठिन प्रण का उद्घोष किया तो मोहन लाल सुखाड़िया विवि का विवेकानंद सभागार

तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। साढ़े चार सौ साल पहले के दृश्य को जब कलाकारों ने मंच पर सजीव कर दिया तो हर कोई इनके अभिनय की तारीफ कर उठा।

मौलिक के संस्थापक शिवराज सोनवाल के निर्देशन में 'प्रणवीर प्रताप' के मंचन के साथ महाराणा प्रताप के संघर्ष, स्वाभिमान, शौर्य, त्याग एवं स्वतंत्रता के प्रति मर मिटने की ललक को रेखांकित किया गया।

नाटक में एक विशेष प्रयोग करते हुए मेवाड़ के दृश्यों को मंच पर लाइव अभिनीत किया गया वहीं पहले से फिल्मांकित अकबर दरबार के दृश्य एलईडी स्क्रीन पर दिखाए गए। इस प्रयोग से दर्शक नाटक से जुड़े रहे वहीं दृश्य बदलने पर आने वाले अंतराल नहीं होने से तारतम्य बना रहा। दृष्यों का प्रवाह ऐसा बहा कि दर्शक एकटक मंच को निहारते रहे। उदयसागर की पाल पर राजा मानसिंह, कुंवर अमरसिंह और भीमसिंह डोडिया के बीच हुई कहासुनी का दृश्य अत्यधिक प्रभावी बन पड़ा

उद्घाटन अवसर पर अतिथियों के रुप में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के पूर्व उपाध्यक्ष अर्जुन देव चारण, राजस्थानी के बड़े साहित्यकार डॉ आईदान सिंह भाटी, पुरुषोत्तम पल्लव, महेन्द्र मोदी, राजवीर सिंह चलकोई, मोनिका गौड़, डॉ सुरेश सालवी, गौतम राठौड़, आशीष हरकावत, अली असगर, शब्बीर हुसैन उपस्थित रहे।

इन्होंने मनवाया अभिनय का लोहा

नाटक का निर्देशन शिवराज सोनवाल ने किया। स्टार प्लस के धारावाहिक महाभारत में विदुर का चरित्र निभाने वाले नवीन जीनगर अपने अभिनय से मुख्य पात्र प्रताप जैसे मंच पर साकार ही कर दिया। रानी सा के किरदार में काजल वर्मा, शक्ति सिंह के रुप में अमित व्यास, किशन सिहं के रुप में अनिल दाधीच, भीम सिंह के रुप में सतीश आशी ने अपनी अभियन प्रतिभा का लोहा मनवाया। भूपेन्द्र चौहान ने हकीम खां, रवि सेन ने अमर सिंह, फतेह सिंह ने भीलू राणा, लक्ष्यराज सिंह ने जेत सिंह, रमेश नागदा ने मान सिंह सोनगरा शुभम आमेटा ने आमेर राजा मानसिंह, विजय लाल ने झाला मान सहित राहुल जोशी, सौम्य जोशी, आदित्य जोशी, सुखदेव सिंह राव, मुकुल जीनगर, खुशूब व नक्षत्रा ने विभिन्न किरदार निभाए।

पांच शख्सियतों को किया मौलिक सम्मान से सम्मानित

इस अवसर पर डॉ सोनल कंठालिया को मौलिक शिक्षा गौरव सम्मान, पुरूषोत्तम पल्लव व महेंद्र मोदी को मौलिक मेवाड़ साहित्य सम्मान, विजय लक्ष्मी आमेटा को मौलिक लोक कला गौरव सम्मान तथा कनिष्का वर्मा व काव्या हरकावत को मौलिक अंकुर कला सम्मान से सम्मानित किया गया। जीआर पोर्टफोलियो की ओर से इन्हे उरपना, प्रशस्ति पत्र एवं नकद राशि प्रदान कर सम्मानित किया गया।

द्वितीय दिवसः राजस्थानी रंग

'मेला' के दूसरे दिन राजस्थानी भाषा को लेकर विमर्श हुआ। मौलिक के संस्थापक शिवराज सोनवाल ने बताया कि सुखाड़िया विवि के बप्पा रावस सभागार में पहले सत्र में 'मायड़ भाषा री महता' विषय पर बोलते हुए साहित्य अकादमी दिल्ली में राजस्थानी के संयोजक अर्जुन देव चारण ने कहा कि हिंदी भाषा का प्रारम्भिक इतिहास मूल रूप से राजस्थानी का इतिहास ही है। दुनिया के किसी भी क्षेत्र की मायड़ भाषा (मातृभाषा) वहां के नागरिकों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अथर्ववेद की ऋचा में ऋषि ने मातृभाषा को अपने अनुकूल होने की प्रार्थना की है। जोधपुर से आए राजस्थानी के बड़े साहित्यकार आईदान सिंह भाटी, बीकानेर से आए राजस्थानी भाषा के पूर्व संयोजक मधु आचार्य आशावादी, पुरूषोत्तम पल्लव, जयपुर से आए प्रमोद शर्मा ने शर्म छोड़कर दैनिक जीवन में मायड़ भाषा का प्रयोग शुरू करने की आवश्यकता पर बल दिया। सत्र का संचालन डॉ सुरेश सालवी ने किया।

दूसरे सत्र में राजस्थानी की मान्यता के लिए आंदोलन को नई धार देने की बात कही गई। सत्र का संचालन करते हुए बीकानेर के वरिष्ठ पत्रकार व साहित्यकार हरीश बी शर्मा ने कहा कि नई पीढी को समय निकाल कर बुजुर्गों के सानिध्य में रहना चाहिए। इससे वे अपनी भाषा व संस्कार से जुड़े रह सकेंगे। राजवीर सिंह चलकोई, चेतन औदिच्य, जगदीश गुर्जर ने सत्र में भाग लिया।

राजस्थानी कविताओं की महफिल में बहे विभिन्न रस

दोपहर बाद राजस्थानी कविताओं के सत्र में मोहन लाल जाट ने 'भालो भड़क्यो रे...' कविता से मेवाड़ी सपूतों की वीरता का बखान किया। नरेन्द्र सिंह रावल ने हल्दीघाटी के युद्ध के बाद घायल चेतक और प्रताप के काल्पनिक संवाद के माध्यम से 'हंस के सीख देवो राणाजी ....' कविता से करुण रस की धार बहा दी। विमला महरिया ने गणगौर और मायड़ भाषा के गीतों से श्रृंगार रस से सबको

सराबोर कर दिया। छत्रपाल शिवाजी ने बालिका पर वागड़ी कविता 'डिकरी बना दुनिया में हरते चालेगा....' सुनाकर दाद लूटी। संचालन कर रही बीकानेर की कवयित्री मोनिका गौड़ ने रिसाणे चांद जैसी नए तेवर की कविताएं सुनाई। वरिष्ट कवि पुरुषोत्तम पल्लव ने 'अरे चितारा एक-एक चितर थूं असो वणाजे रे...' और मेवाड़े के व्यंजन दाल-ढोकला पर मधुर गीत सुनाकर समा बांध किया।

सोनवाल ने बताया कि साहित्य अर आध्यात्म जातरा सत्र में डॉ श्री कृष्ण जुगनू, पुष्कर गुसेश्वर, डॉ लोकेश राठौड़ व रेखा शर्मा ने विचार रखे। संगीत सत्र में तनिष्क राजदान, रूचिता पालीवाल, रूद्रादित्य पालीवाल ने अपनी प्रस्तुतियों से मन मोहा। वहीं प्रथम पाठक ने हारमोनियम व त्रीजल पालीवाल ने तबला पर अपने हुनर का प्रदर्शन किया। शाम को राजस्थानी सांस्कृतिक जलसा हुआ जिसमें मारिषा दीक्षित जोशी व नारायण गंधर्व ने गायन व विजय लक्ष्मी आमेटा ने लोक नृत्य से दर्शकों का मन मोह लिया।

तृतीय दिवसः उर्दू का अंदाज़

'मेला' का तीसरा दिन 'गज़ल संग केनवास' सत्र में सुरों

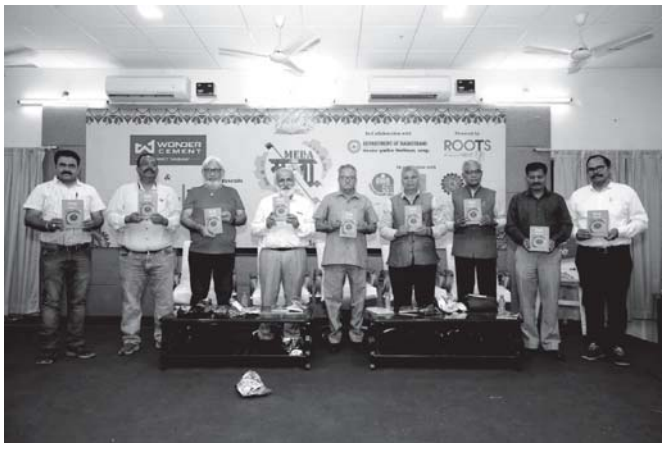

और रंगो के अद्भुत संगम के नाम रहा। बप्पा रावल सभागार में गायकों ने गजल के सुर बहाए तो चित्रकारों ने केनवास पर कूंची से रंग बिखेरे। मौलिक के संस्थापक शिवराज सोनवाल ने बताया कि इस सत्र में चित्रकारों की ओर बनाए गए चित्रों की नीलामी करेंगे और उससे प्राप्त होने वाली धनराशि शिक्षा के क्षेत्र में वंचित बच्चों की सहायतार्थ प्रशासन को भेंट किया जाएगा। भूपेंद्र पंवार व कोमल बारेठ ने गज़लें गायीं और चित्रकार हेमंत जोशी, चेतन औदिच्य, सुनील लड्ढा, डॉ चित्रसेन , अर्चना मिश्रा, दर्शना राजवैद्य, नमित कड़िया, नीलोफर मुनीर ने पेंटिंग और मृण शिल्पी भावेश सुथार ने कालकृति बनाई।

मुखबिर सीरीज के निर्माता ने बांटे अनुभव

प्रसिद्ध वेब सीरीज के निर्माता वैभव मोदी ने सिनेमा में हिंदीङ्कउर्दू की नजदीकियों पर विस्तार से चर्चा की। उनसे रजत मेघनानी ने बात की। शायरी कल, आज और कल विषय पर महेंद्र मोदी, अश्विनी मित्तल, अब्दुल जब्बार, हदीस अंसारी, एम आई ज़ाहिर व डॉ सरवत खान ने अपने विचार रखे।

'दिल से दिल तक' सत्र में अश्विनी मित्तल ने 'एक दूजे के सामने काटे जाते हैं, हम इंसान भी बिल्कुल पेड़ों जैसे हैं..' से शुरुआत कर अपने शेर और मिसरों से श्रोताओं का दिल जीत लिया।

सांयकालीन सत्र में प्रसिद्ध शायर, पत्रकार आलोक श्रीवास्तव के सफर पर आधारित 'आलोकनामा' में प्रेरणा प्रताप ने उनसे बातचीत की। कवि, गायक कपिल पालीवाल ने अपनी रचनाओं से श्रोताओं को प्रभावित किया।

चतुर्थ दिवसः हिंदी को समर्पित

'मेला' का चौथा व समापन दिवस हिंदी को समर्पित रहा। साहित्य के मायने सत्र में प्रसिद्ध रंगकर्मी भानु भारती, भोपाल से आए भंवर लाल श्रीवास, महेन्द्र मोदी ने अपने अनुभव साझा किए। चेतन औदिच्य ने संचालन किया। समापन सत्र के मुख्य अतिथि सुखाड़िया विवि के कुलपति प्रो आई वी त्रिवेदी थे। अतिथि के रूप में मानविकी संकाय अध्यक्ष व सह अधिष्ठाता, कला महाविद्यालय प्रो प्रदीप त्रिखा, भूगोल के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो पी आर व्यास, राजस्थानी विभागाध्यक्ष डॉ सुरेश सालवी उपस्थित रहे।

कविता संग्रह पानी व कहानी संग्रह गिर्वा का विमोचन

प्रो आई वी त्रिवेदी एवं अन्य अतिथियों ने चेतन औदीच्य के कविता संग्रह 'पानी' व गौरीकान्त शर्मा के कहानी संग्रह 'गिर्वा' का विमोचन किया। दोनों पुस्तकें राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुई है।

चौथे व अंतिम दिन 'दलित व आदिवासी लेखकों के समक्ष चुनौतियाँ' सत्र में विचार व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार रत्न कुमार सांमरिया ने कहा कि जब तक हाशिये पर पड़े समाज की पीड़ा की अनुभूति नहीं करेंगे तब तक उनके साहित्य की रचना सम्भव नही है। प्रसिद्ध आलोचक व कवि कुंदन माली, जयपुर से आए गजाधर भरत, पन्ना लाल मेघवाल व गौरीकांत शर्मा ने भी विचार रखे। स्त्री शक्ति एवं अभिव्यक्ति में संगीत नाटक अकादमी से सम्मानित विजय लक्ष्मी आमेटा से आरजे दामिनी से वार्ता की। जतिन भारवानी ने लघु नाट्य प्रस्तुति दी।

राष्ट्रीय कला शिविर का समापन

मेला के कला निदेशक हेमन्त जोशी ने बताया कि मेला के दौरान लगे राष्ट्रीय कला शिविर का समापन भी हुआ। शिविर में चित्रकार चेतन औदीच्य, सुनील लड्ढा, डॉ चित्रसेन, दर्शना राजवैद्य, नमित कड़िया, अर्चना मिश्रा, मिंटू कुमार, नीलोफर मुनीर और मृण शिल्पी भावेश सुथार ने अपने हुनर का प्रदर्शन करते हुए अपनी कलाकृतियां बनाई।

रपट : गौरीकान्त शर्मा, उदयपुर (राज.)

■

सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन शोधपीठ भोपाल का प्रथम वार्षिक अलंकरण समारोह सम्पन्न

''सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन शोध पीठ'' द्वारा आयोजित दो दिवसीय वार्षिक अलंकरण समारोह के प्रथम दिवस का प्रथम सत्र बाल कलाकारों पर केंद्रित रहा, जिसमें श्री अटल बिहारी वाजपेयीजी के जन्म दिवस पर आयोजित बाल चित्रकला प्रदर्शनी के विजेता बाल कलाकारों को 'अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, के कुलाधिपति डॉ.प्रकाश बरतुनिया द्वारा पुरस्कार प्रदान किए गए।

द्वितीय सत्र ''राजाराम रूपध्वनि कला दीर्घा'' में प्रदर्शित राष्ट्रीय चित्र कला प्रदर्शनी.2022, का उदघाटन एवं कला-पुस्तक ''कलाआलोचना के आयाम'' के लोकार्पण के साथ प्रारंभ हुआ। इस सत्र के सम्मानित अतिथि ''माखनलाल चतुर्वेदी विश्व विद्यालय'' के कुलपति डॉ.के.जी.सुरेश, रामेश्वर मिश्र पंकज, श्री मनोज श्रीवास्तव, एवं श्री अभिलाष खांडेकर ने 'राजाराम रूप ध्वनि कला दीर्घा' का अवलोकन किया और प्रदर्शित चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। आमंत्रित विद्वान वक्ताओं ने प्रो.राजाराम के कला-क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान पर प्रकाश डाला। डॉ.सुरेश ने प्रो.राजाराम के गंभीर आलेखों की चर्चा करते हुए सार्थक सारगर्भित कला-आलोचना के विस्तार पर अपने मंतव्य व्यक्त किये श्री मनोज श्रीवास्तव ने प्रो. राजाराम के चित्रों में छिपे गंभीर व्यंग्याभिव्यक्ति को रेखांकित किया श्री अभिलाष खांडेकर ने डॉ. बिनय राजाराम को प्रो. राजाराम की पुस्तक। कला आलोचना के आयाम को संजोने के लिए साधुवाद दिया। डॉ. अंजलि पांडे ने अपने गुरु प्रो. राजाराम की पुस्तक का विस्तृत विवेचन किया। प्रमुख वक्ता प्रसिद्ध चिंतक प्रो. रामेश्वर मिश्र 'पंकज' ने परंपरागत चित्रकला से आधुनिक चित्रकला तक की यात्रा की सारगर्भित जानकारी प्रदान की।

तृतीय सत्र में विद्वान अतिथि डॉ.राजन मिश्र श्री ऋषि कुमार, डॉ.रघुवीर गोस्वामी तथा डॉ.अनुपमा चौहान ने 'कला एवं साहित्य का अन्त: सम्बन्ध: विषय पर अपने प्रेरणादायी तथा सार गर्भित विचार प्रस्तुत किए !

राजाराम रूपध्वनि कला दीर्घा के दो दिवसीय अल्लंकरण समारोह के अंतिम सत्र में मुख्य अतिथि मध्यप्रदेश के माननीय चिकित्सा शिक्षा मंत्री श्री विश्वास सारंग ने सभी प्रतिभाशाली

कलाकारों का शॉल-श्रीफल मानपत्र आदि के साथ अभिन्दन किया।

डॉ.बिनय षडंगी राजाराम के पिता की स्मृति में प्रो.राजाराम दवारा स्थापित 'श्री उमावल्लभ षडंगी ओड़िया-हिंदी सेतु सम्मान 2022' से डॉ मंजू शर्मा महापात्र तथा डॉ अमूल्य रत्न महान्ति दोनों का 25 हजार रु.की सम्मान राशि मानपत्र शॉल-श्रीफल के साथ सम्मान किया गया।

'राजाराम रूपध्वनि कला प्रदर्शनी-2022' के लिए 'वरिष्ठ षडंग साधना सम्मान, (रू 35 हजार) से चित्रकार श्रीमती शोभा घारे को तथा 'कनिष्ठ षडंग संस्कार सम्मान' (31हजार) से सुश्री शुभ्रा श्रीवास्तव को सम्मानित किया गया इस अवसर पर मंचासीन सारस्वत अतिथि डॉ देवेन्द्र दीपक, मुख्य वक्ता डॉ. विकास दवे और विशेष आमंत्रित अतिथि श्री मनोज मिश्रा के सारगर्शित उदबोधन ने कार्यक्रम को सार्थक बनाया।

संस्था की निदेशक डॉ. बिनय राजाराम एवं उनके सहयोगियों के अथक प्रयासों से समायोजित, कला-साहित्य एवं समावेशी संस्कृति से समृद्ध इस महति आयोजन की सफलता के 'साक्षी-समाज' के रूप में अनेक गणमान्य अतिथि, कलाकार तथा प्रबुद्ध जन उपस्थित थे।

- डॉ. बिनय राजाराम

■

कोकिल कंठी गायिका लक्ष्मी शंकर

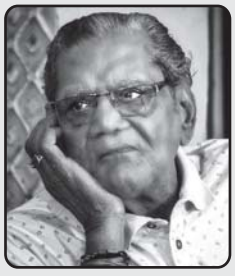

जगदीश कौशल

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की अग्रणी और ख्यातिप्राप्त गायिकाओं में लक्ष्मी शंकर एक ऐसा नाम हैं जिन्होंने ठुमरी और भजन गायन के क्षेत्र अपना विशिष्ट स्थान बनाया हैं। मै भाग्यशाली हूँ कि मुझे ऐसी महान गायिका से मिलने और उनका साक्षात्कार एंव फोटो लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आज से लगभग 55 वर्ष पूर्व मेरी उनसे पहली मुलाकात हुई थी। विन्ध्य संगीत समाज रीवा के वर्ष 1968 के वार्षिक अखिल भारतीय संगीत समारोह में उन्हें गायन के लिये विशेष रूप से गायन किया गया था, मै इस संस्था में प्रचार सचिव के पद पर था। जैसा मैंने उन्हें देखा लक्ष्मीशंकर जी एक बेहद सरल, विनम्र, आकर्षक और पूरी तरह से व्यवहारिक संभ्रान्त महिला थी, शुद्ध दक्षिण भारतीय साड़ी में मधुर मुस्कान वाले ललाट (मस्तक)पर बड़े आकार की बिन्दी उनकी मुखाकृति को और गरिमा प्रदान कर रही थी, औपचारिक सादर अभिवादन के पश्चात् उनसे साक्षात्कार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

- **अपने जन्म, परिवार और बचपन की शिक्षादीक्षा के बारे में आपका क्या कहना हैं ?**

– मेरा जन्म 16 जून 1926 को जमशेदपुर में हुआ, मुझे बचपन से ही अपने परिवार में संगीतमय वातावरण मिला जिसके कारण मै नृत्य और संगीत की ओर झुकी आठ वर्ष की उम्र से ही मैंने भारतनाट्यम सीखना प्रारंभ कर दिया था, कण्डप्पा पिल्ले मेरे नृत्य गुरु थे जिनसे शिक्षा प्राप्त कर मैंने नृत्य में पूर्ण दक्षता प्राप्त की।

- **आप उदय शंकर जी के नर्तक दल में कब शामिल हुई ?**

– मैं सन् 1940 में आदरणीय उदयशंकर जी के विश्व विख्यात मर्तक दल में शामिल हुई थी, जहाँ 4 वर्ष तक दल की सदस्य नर्तकी एवं अध्यापक के रूप में मैंने काम किया।

- **फिल्मी दुनिया में भी आपका योगदान रहा हैं, कृपया उस के बारे में भी कुछ बताएं ?**

– सन् 1944 में मैं बम्बई आ गई थी, वहाँ मैंने कई फिल्मों में वार्श्व–गायिका एवं नृत्य निर्देशिका के रूप में काम किया पार्श्व–शूल से पीड़ित होने के कारण मुझे नृत्य छोड़ना पड़ा, इस प्रकार मेरा नृतकी बनने का सपना चकनाचूर हो गया।

- **नृत्य छोड़ने के बाद आप गायन की ओर कैसे आई कृपया अपने गायन गुरु के बारे में कुछ बतलाएँ ?**

– सुप्रसिद्ध फिल्म संगीत निर्देशक श्री मदन मोहन जी की

प्रेरणा से मैं ठुमरी और भजन गायन की ओर अग्रसर हुई, सन् 1954 में मैंने उस्ताद अब्दुल रहमान खाँ साहब से शास्त्रीय गायन सीखना प्रारम्भ किया, सन् 1957 में आकाशवाणी पर मेरा पहला शास्त्रीय गायन का कार्यक्रम प्रसारित हुआ था इस प्रकार गायन ही मेरा एकमात्र लक्ष्य बन गया।

- **गायिका के रूप में आपने भारतीय शास्त्रीय संगीत की**

किन-किन विद्याओं में गायन किया हैं और आपकी सबसे प्रिय विद्या कौन सी हैं ?

– बचपन में कर्नाटक संगीत में गायन का प्रशिक्षण प्राप्त करने के कारण मुझे हिन्दुस्तानी गायन सीखने में बहुत मदद मिली, दोंनो प्रणालियों का ज्ञान प्राप्त करने से मुझे कई भारतीय भाषाओं को सीखने और गाने का सुअवसर प्राप्त हुआ, यही कारण है कि मैं संस्कृत, हिन्दी, तमिल, बंगला, मराठी, गुजरात, कन्नड और तेलंगू भाषाओं में भजन बहुत आसानी से प्रभावशाली ढ़ंग में सफलतापूर्वक गा लेती हूँ, वैसे तो मैंने रव्याल, दादरा, ठुमरी, भजन आदि अनेक विद्याओं में गायन किया हैं, लेकिन मेरी विशेष रूचि भजन और ठुमरी गायन में हैं।

- **महान नृत्यक उदयशंकर और विश्व विख्यात सितार वादक पं. रविशंकर जी के परिवार से जुड़ने के बाद में आपके क्या विचार हैं ?**

– मेरे विचार से संगीत को भौगोलिक सीमाओं में बांधकर नही रखा जा सकता हैं, संगीत का प्रभाव तो सार्वभौमिक होता हैं, वह चाहे भारतीय हो या फिर पाश्चात्य यही कारण हैं कि आज विश्व के अनेक देशों में हमारा भारतीय संगीत अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

- **आपका अपने आलोचको के बारे में क्या विचार हैं ?**

– मैं आलोचको के बारे में कभी चिन्ता नही करती क्योंकि आलोचकों को ईमानदारी से अपनी राय देने का अधिकार हैं, आलोचना यदि पक्षपात् पूर्ण नहीं हैं तो मैं उसका स्वागत करती हूँ, क्योंकि इससे मुझे खुद को सही करने में मदद मिलती हैं।

- **अंतिम प्रश्न आप अपनी परमप्रिय विद्या भजन के माध्यम से आप श्रोताओं को क्या संदेश देना चाहती हैं ?**

– मेरा भजन संगीत मुझे शांति को प्राप्त करने में मदद करता हैं, अपने भजनों के माध्यम से मैं भक्तिरस का संचार करने की कोशिश करती हूँ, श्रोताओं को संगीत की ओर आकर्षित करने और इसे भावनात्मक रूप से प्रभावी बनाने के लिए भक्ति रस गान एक महत्वपूर्ण तत्व हैं, मेरे पास जो कुछ भी हैं, उसके लिऐ मैं भगवान और अपने श्रोताओं के प्रति आभारी हूँ, मैंने जो हासिल किया वही पर्याप्त है क्यों कि उपलब्धियों का तो कोई अन्त नहीं है।

सम्पर्क सूत्र:- ई 3/320 अरेरा कालोनी भोपाल
मो. 9425393429

■

कला समय के संबंध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक घोषणा पत्र
फार्म-IV

1. प्रकाशन का स्थान	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
2. प्रकाशन की अवधि	–	द्वैमासिक
3. मुद्रक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
4. प्रकाशक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
5. संपादक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016

मैं भँवरलाल श्रीवास घोषणा करता हूँ कि ऊपर दी गई विशिष्टयाँ मेरे सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के साथ सही हैं।

तारीख- 1 मार्च 2023

भँवरलाल श्रीवास
प्रकाशक के हस्ताक्षर

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

लक्ष्मी शंकर

जन्म: 16 जून, 1926 **निधन: 30 दिसम्बर, 2013**

एक दक्षिण भारतीय हिन्दू परिवार में जन्मी लक्ष्मी शंकर ने अपने केरियर की शुरूआत नृत्य से की थी लेकिन बीमारी के कारण उन्हें नृत्य छोड़ना पड़ा कर्नाटक संगीत की पृष्ठभूमि होने के कारण उन्होंने उस्ताद अब्दुल रहमान खान से कई वर्षो तक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त कर ख्याल, ठुमरी और भजन गायन के क्षेत्र में विशेष महारथ हासिल की वह पहली भारतीय शास्त्रीय गायिका हैं जिन्होंने पश्चिमी देशों में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई आपने ख्याल, ठुमरी और भजन गायन के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई हैं। संस्कृत, हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड, तमिल, तेलगू आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं में भजन गाये हैं। जिनके वीडियों, केसिट आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। लक्ष्मी शंकर जी का यह दुर्लभ फोटो आज से लगभग 55 वर्ष पूर्व सन् 1968 में उनके रीवा प्रवास के समय उनसे साक्षात्कार करते समय वयोवृद्ध वरिष्ठ छायाकार भी जगदीश कौशल द्वारा क्लिक किया गया था।

पत्रिका के बहाने

कला समय के नवीन अंक पर टीप

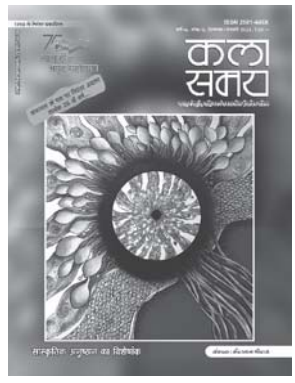

समय की कला और कला के समय को उद्बोधित करता 'कला समय' का दिसम्बर-जनवरी 2023 अंक बीते-नये वर्ष का संधि अंक देख राष्ट्रकवि गुप्तजी की ये पंक्तियां सजह स्मरण हो आईं-

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ।
किन्तु समझो रात का जाना हुआ।।

इस अंक के कुछ महत्वपूर्ण आलेखों ने मेरा स्मृति-पटल खोल उस समय विशेष की यादें बहुरंगी करदीं। रामवीर शर्मा ने ब. व. कारंत के कई अनछुए पक्षों को बड़ी आत्मीय चेतना से उकेरा। जब वे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक थे तब नई दिल्ली में छात्रों के चयन के लिए मुझे बुलाया था। मेरा काम राजस्थान के लोकनाटकों पर था। उस दौरान उनसे उनकी नाट्य-रचनात्मक प्रयोगधर्मिता को लेकर बेबाक बातचीत हुई। लगा कि बड़े ही सरल चित्त के सहज एवं सौम्य पर बड़ी लगन और गंभीरता से न केवल स्वयं अनुशासित हैं अपितु छात्रों में भी वे अपने ज्ञानानुभव के संस्कारों से बड़े लोकप्रिय हैं। बाद में उनसे उदयपुर में भी जब अशोक बांठिया के बुलावे पर आये तब भी स्नेहिल भेंट हुई।

जगदीश कौशल की संस्मरणात्मक टीप ने हबीब तनवीर को भी जगा दिया। भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी के आयोजन पर उन्होंने अपने कलाकारों के साथ 'चरणदास चोर' नाटक का मंचन करवाया था। प्रारम्भ में और बीच-बीच में भी वे उद्घोषणा करते कहते रहे- 'अभी-अभी ये जुम्ले मैंने लिखे हैं। अब मेरे कलाकार मंच पर लोकनाट्य की प्रस्तुति देंगे।'

दूसरे दिन सुबह हमने लोकनाट्य संगोष्ठी आयोजित की थी। संयोजन करते मैंने कहा, राजस्थान के लोकनाट्य किसी लेखक विशेष की रचना नहीं हैं। छत्तीसगढ़ में यह परम्परा हो तो मैं तनवीर साहब से स्पष्टीकरण चाहूंगा कि लोकनाट्य की रचना और प्रस्तुति तथा दर्शक समाज की भूमिका से मुझे लाभान्वित करें। तनवीर साहब चुप बैठे रहे। उन्होंने कोमल कोठारी से गुफ्तगु की। शायद मुझ छोकरे के बारे में कुछ जानने का यत्न किया और कोठारीजी ने मेरा परिचय दिया होगा पर तनवीर बाबू उस गोष्ठी से ही किनारा कर गये। उस संगोष्ठी में स्थानीय तथा अन्य प्रान्तों के रंगकर्मी भी हमारे बुलावे पर आये थे। वह संगोष्ठी बड़ी सफल रही और उससे सम्बन्धित एक पुस्तक भी प्रकाशित की।

रघुवीर होल्ला के आलेख को भी पढ़ा। कारंतजी और भारत भवन की उन्होंने यादें उकेरीं मगर अपनी कहनी ही अधिक कही। जब भारत भवन में अशोक वाजपेयी थे तब राजस्थान से कुछ साहित्यकार साथी राजस्थान साहित्य अकादमी से गये थे। उनमें मैं भी था। दूसरे दिन हम लोगों ने सांची का स्तूप भी देखा। इस अंक में आदरमना नर्मदाप्रसादजी उपाध्याय ने सांची के शिल्प पर बड़ी शोधपरक जानकारी से पाठकों को समृद्ध किया। राजस्थान में भी तोरण के विविध रूप हैं। लोकदेवता मामादेव का भी काष्ठ निर्मित तोरण ही पूजान्तर्गत हैं।

डॉ. सुमन चौरे लोकजीवन की ख्यात लोकविज्ञा हैं। सूरजदेव को लेकर राजस्थान में अनेक गीत, कथाएं, प्रवाद और पर्व-उत्सव में, माण्डनों में एवं विविध संस्कारों में उनकी अनिवार्य उपस्थिति शकुन देती है। विवाह पर प्रातः सूर्योदय पूर्व सूर्यदेवता को जगत जगाने के आह्वानपरक गीत 'कूकड़ा' यहां भी गाये जाते हैं। कूकड़ा से तात्पर्य मुर्गा से है जो प्रातर्वेला में 'कुकडूं कूं' वाणी से सबको जगाता है। उसी को सम्बोधित कर परभांतियां गाई जाती हैं।

इन गीतों में विवाह परिवार के प्रमुख पुरुषों के नाम ले-लेकर उन्हें भी कर्मशील होने हेतु सूर्योपासना का स्मरण कराया जाता है। होली के बाद दस दिन की व्रतकथाओं में डाड़ा बावजी का रविवार का व्रत और कहानी सूर्य की ही उपासना है। डाड़ा का अर्थ ही दिन का है। उसके स्वामी सूरज हैं। लेकिन राजस्थान में गणगौर अर्थात् गौरी और उसके पति शिव का सूरज से कोई सरोकार नहीं मिलता। और फिर सांझी को भी डॉ. चौरे ने सूरज यानी संध्या को बालिकाओं द्वारा श्राद्ध में बनाये जाने वाले अंकनों को 'संज्या फूली' बताते खेल लिखा। दरअसल सांजी से संध्या का वह सम्बन्ध नहीं है जो सूर्यास्त के बाद का लिया जाता है। यह तो पूरा-का-पूरा व्रतानुष्ठान है। इसके उद्भव-विकास की लोककथा से ऐतिहासिक पुष्टि भी होती है।

यह उत्सव बालिकाओं द्वारा अपनी सहेली संज्या का श्राद्धपक्षीय सुमिरण है। इस पर वर्षों पूर्व मैंने एक पुस्तक लिखी फिर मेरी बिटिया डॉ. कहानी भानावत ने इसी विषय पर शोधप्रबन्ध लिखा। दशामाता व्रतकथाओं पर भी विषद शोध मेरी बिटिया डॉ. कविता मेहता ने प्रबन्ध लिखा। दोनों ही प्रकाशित हैं।

अंक के और भी लेख बड़े महत्व के हैं जो हम जैसों को भी ओजस्वी बनाते हैं। प्रत्येक अंक जिस समझ और सूझ से निकाल रहे हैं उसके लिए शब्द गौण हैं। भावना रहती है- 'चल हंसा उस देश, समद जहां मोती है।' यहां हंसा मेरा मन, देश भोपाल, समद कला समय और मोती उसमें प्रकाशित सामग्री है।

- डॉ. महेन्द्र भानावत, मो. 9351609040

उपलब्धियां तीन वर्ष की

लाड़ली बहना योजना
23 से 60 वर्ष की महिलाओं को प्रतिमाह ₹ 1,000 की आर्थिक सुरक्षा

बढ़ती विकास दर
16.43% की औसतन आर्थिक विकास दर के साथ समृद्ध राज्यों में शामिल

मुख्यमंत्री कौशल अप्रेंटिसशिप योजना
1 लाख युवाओं को प्रशिक्षण के साथ ₹ 1 लाख तक का स्टाइपेंड

सशक्त अन्नदाता
मध्यप्रदेश गेहूँ निर्यात में नंबर 1, कृषि विकास दर 2022 में 18.89%

लाड़ली लक्ष्मी योजना 2.0
44.50 लाख से अधिक लाड़ली बेटियाँ हुईं लाभान्वित

सुराज कॉलोनियां
भू-माफियाओं से मुक्त कराई गई 23 हजार एकड़ भूमि पर बनेंगे गरीबों के लिए आवास

मुख्यमंत्री इंटर्नशिप योजना
4,600 से अधिक युवाओं को दी गई पेड इंटर्नशिप

सीएम राइज़ स्कूल
₹ 6,300 करोड़ से बन रहे 9,000 आधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण विद्यालय

उद्योग-व्यापार की उन्नति
ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट से ₹ 15,42,514 करोड़ के निवेश प्रस्ताव, औसत प्रति व्यक्ति आय 2003 में ₹ 11,718 से बढ़कर अब ₹ 1,40,583 हुई

सांस्कृतिक गौरव की पुनर्स्थापना
उज्जैन में श्री महाकाल महालोक का लोकार्पण, ₹ 2200 करोड़ की लागत से ओंकारेश्वर में 'एकात्म धाम' की स्थापना, ओरछा में राम राजा लोक, चित्रकूट में दिव्य वनवासी रामलोक और सलकनपुर में श्री-देवी महालोक मंदिर प्रस्तावित

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

D-19923/22

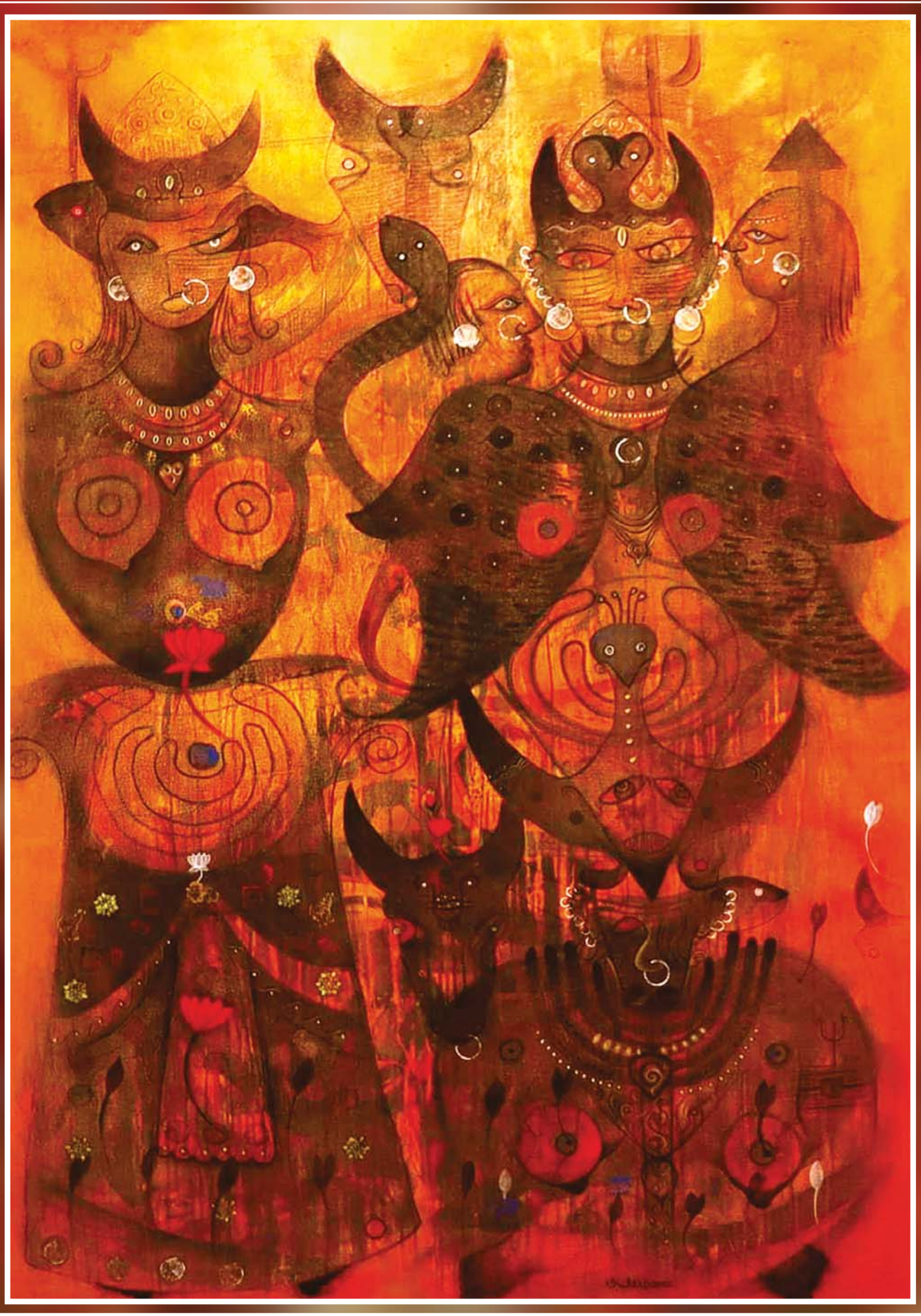

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास